वीरचरितावली, २ रा चरित।

परशुराम

सास्यवाद-प्रतिपादक सचित्र पौराणिक उपाख्यान।

"क्षत्रिय रुधिरमये जगदपगत पापम्,
स्नपयसि पयसि शमित भव-तापम्।
केशव धृत भृगुपति रूप;
जय जगदीश हरे॥"
—गीत गोविन्द।

लेखक—
पण्डित नरोत्तम व्यास।

प्रकाशक—
निहालचन्द एण्ड कम्पनी।
१, नारायणप्रसाद बाबू लेन, कलकत्ता।

पौष शुक्ला ८
सम्वत १९७१

मूल्य सादी ३)
रेशमी जिल्द ३॥)

प्रकाशक—

निहालचन्द वर्म्मा।

मालिक—निहालचन्द एण्ड कम्पनी।

१, नारायणप्रसादबाबू लेन, कलकत्ता।

प्रथम संस्करण २०००

मुद्रक—दयाराम बेरी।

"श्रीकृष्ण प्रेस"

२०।२१, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता

समर्पण

प्रसिद्ध साहित्य-शिल्पी,

श्रीमान् बाबू रामलालजी वर्मा

महोदयकी सेवामें

भय्या !

आज हिन्दीजगत्में सर्वत्र आपकाही आदर्श ग्रहण किया जारहा है, यह देखकर आपसे तनिकसा भी सम्बन्ध रखनेवाले प्रेमीको, भला क्यो न अपार हर्ष होगा? इसी नाते—केवल इसी नातेसे प्रेरित हो, आज मैं आपको यह उपहार दे रहा हूँ। सुदामाके तण्डुल समझकर, कृपया प्रेमसे अपनाइये।

—नरोत्तम व्यास।

প্রমোদবিহার

चित्र-सूची

विषय-सूची



भूमिका

प्रत्येक मनुष्यके लिये संसार एक अनोखा परीक्षास्थल है। प्रकृति जीवके आगे सदा दो ऐसे पदार्थोंको उपस्थित करती रहती है, जिनका वाह्य स्वरूप और परिणाम भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। पुरुष उन्हें अपने इच्छानुसार चुनता और उपयोगमें लाता है। किन्तु उसके पदार्थ-चयनकी योग्यता, रुचि, दूरदर्शिता तथा बुद्धिमत्ताका पता समझदार लोग उसी समय लगा लेते हैं, जब कि वह सामने रखे पदार्थोंका वरण करता है।

वास्तवमें समझदारी, दूरदर्शिता तथा सात्विक बुद्धि संसारके गिने-चुने व्यक्तियोंमें ही होती है। मतलब यह कि, यद्यपि परमात्माने अपनी दिव्य विभूतियोंका दान, अपनी सन्तान मनुष्योंको समान भावसे ही दिया है, पर किसीमें किसी गुणकी प्रधानताकर, वह सदा इस बातकी परीक्षा लिया करता है कि, देखें, ये संसारके सुपरिणाम शून्य, निःसार वैभवोंपर जय प्राप्तकर, सार पदार्थका संचय करते हैं या नहीं। तदनुसार सारपदार्थका संचय करनेवाले पुरुष प्रत्येक युगमें उँगलियोंपर गिनने लायकही

रहे हैं एवं इन्हींका नाम परीक्षा-सफल महात्माओंकी श्रेणीमें सदा-सर्वदाके लिये स्वर्णाक्षरोंमें लिखा गया है।

सृष्टि होनेके बादसे, प्रत्येक युगमे, संसारकी सारी सुव्यवस्थाओंसे लोक समाजको व्यवस्थित रखनेवाला एक-न-एक महात्मा अवश्य रहा है। अपनी चिरकाल-व्यापिनी एकान्त साधना, प्राणान्तकारी परिश्रम तथा विविध विकट विपत्तियोंसे युद्धकर, उसने समाजको सदा एक सुख-शान्तिदाता आदर्श दिया और लोग उसका उपयोगकर उन्नतिके शिखरपर चढ़ गये। पर "इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः" "बे-लगामके घोड़े सुदृढ़ रथकाभी सत्यानाश कर देते हैं।" उन्नतिके शिखरपर चढ़, वहाँसे नीचे खड़े लोगोंको देख, उन्नतिशील व्यक्तियोंके मनोंमें तत्काल अहंकार उत्पन्न हो जाता है और आँखोंमें भी चर्बी छा जाती है। बस, यहींसे अपने पैरों अपने आप कुल्हाड़ी मारी जाती और नीचे गिरनेकी बारी आजाती है। और जो समाज अपने नायकके दिये आदर्शका उपयोग सावधानीसे कर, उन्नत होकर अपनेको नम्र, मनको अधीन और परिणामकी ओर दृष्टि-रेखा बाँधे रहता है, उसका पतन प्राणान्त तकभी नहीं होता। पर ऐसे समाज नहीं होते, वरन् विरले पुरुषही होते हैं।

सृष्टिकर्त्ताने मानव-जातिका सृजनकर सत्व, रज, तम आदि गुण, सदसत्कर्म-प्रवृत्ति और अपरिवर्त्तनीय स्वभावके अनुसार कार्यों का विभागकर, उनका सम्पादन करनेवाले तीन वर्ण बनाये। उस समय सत्त्वगुण प्रधान लोगोंको ज्ञान-भाण्डार, रजोगुण

प्रधान व्यक्तियोंको शक्ति-सामर्थ्य और तमोगुण प्रधान आदमियोंको धन प्रदान किया। साथही सबको उनके उपयोग और रक्षणके उपाय भी बता दिये। तदनुसार जबतक ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य नामक मानव-जातिके वर्ण-समुदायने साम्य भावसे सहयोग रख, संसारके समस्त कार्यों का निर्वाह किया, तब तक संसार-शृंखला बनी रही और जभी उक्त तीनों वर्णों-मेंसे किसी वर्णके व्यक्तियोंमें अधिकार-मद व्याप गया, बस, तभी विषमताका प्रादुर्भाव होगया।

एक समय ऐसा आया था, जब ज्ञानाधीश ब्राह्मणोंके मस्तिष्कोंमें विषमताका भूत समा बैठा था। समाजमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त होनेके कारण, उनके मस्तिष्क आकाशसे बातें करने लगे थे। उन्होंने हिन्दू-समाजमें यह नियम प्रचारित कर संसारमें विषमता पैदा करदी थी, कि शतापराध करने-परभी ब्राह्मण अवध्य हैं। इस नियमने धीरे-धीरे बड़ा भयानक रूप धारण किया! यद्यपि ब्राह्मण लाख अपराध करते, तथापि अवध्य होनेके कारण, अबाध भावसे सदा मन-मानी करते थे। उन्होंने संसारके अनेक अनिष्ट किये, पर अन्य किसीको ऐसा अधिकार प्राप्त न था, जो वह उनका कोई अनिष्ट कर पाता! तत्कालीन अन्य वर्णों को ब्राह्मणोंके चरणोंकी धूलि अपने मस्तकपर चढ़ानी पड़ती थी। उन दिनों ऐसा माना जाता था, कि ब्राह्मण जो कुछ कह दे, यदि वही काम किया जाये, तब तो मनुष्यकी सद्गति होगी, अन्यथा नहीं। ब्राह्मण जो कुछ करना चाहते थे, वही काम परलोकको सुधारनेवाला माना जाता था।

उसके विपरीत जो कुछ होता, वही परलोक बिगाड़नेवाला समझा जाता था। यानी वेद और शास्त्र सबपर पानी फिर कर ब्राह्मण-वाक्यही ईश्वर-वाक्य होगये थे।

इस भीषण वर्ण विषमतासे संसारकी अत्यन्त अवनति होने लगी। क्षत्रिय और वैश्यवर्णके लोग इन बातोंसे बेहद दुःखी, व्यस्त और शंकित होगये। वे सोचने लगे, यहाँ तो ब्राह्मणोंकी मर्जीके खिलाफ़ काम करनाही पाप है और उस पापका प्रायश्चित्त ब्राह्मणोंकी मनमानीको चरितार्थ करना है। अब वे क्या करें? कहाँ जायें? इस धर्म-पीड़ासे उनका कौन उद्धार करेगा? सभी सुखोंसे वञ्चित रखनेवाले ब्राह्मणोंके हाथोंसे उन्हें कौन बचायेगा?

पृथ्वीपर यह अत्याचार फैलही रहा था, कि उस समय विशुद्ध ज्ञानी, भगवान् दत्तात्रेय अपनी चिरस्थायिनी महिमाका विस्तार करते हुए, भारतके उच्चाकाशमें उदित हुए और दिशा-विदिशाओंको प्रतिध्वनित कर देनेवाली, अपनी दिव्य वाणीसे बोले— "क्षत्रियादि संसारके मनुष्यो! मैं तुम लोगोंका इस अन्यायसे उद्धार करूँगा। तुम सब लोग समान हो। अपने-अपने अधिकारानुसार न कोई छोटा है, न बड़ा, सब लोग पापी हैं और वह पाप केवल सदाचारसे दूर होगा।"

विषमतासे सताये क्षत्रिय और वैश्यगण इस मन्त्रको सुनकर प्रसन्न हो उठे। उन्होंने अब अपना जीवन साधु और सदाचारशील बनाना शुरू किया। अपने अधिकारोंका उचित उपयोग तथा कर्त्तव्योंका भली भाँति पालन किया। दत्तात्रेयके वर-प्रभावसे क्षत्रियोंका सितारा बुलन्द हो गया और वे फिर ब्राह्म-

णोंके समान हो गये। इस प्रकारका संसार कई युगोंतक साम्यके सुखोंका संभोग करता रहा। समाजकी शासन शृंखला बहुत दिनोंतक मङ्गलमयी और कल्याण-भरी बनी रही।

दत्तात्रेयका अन्तर्द्धान हुआ। उनके समकालीन क्षत्रियगण स्वर्ग-सिधार गये और नव युवकोंके हाथोंमें संसारकी प्रभुता आयी। अतएव अंकुश-हीन होने तथा इतिहासमें ब्राह्मणोंकी उन्नतिका वृत्तान्त पढ़नेसे, उनके मनोंमें यह बात उठी, कि परमात्माने निःशक्त ब्राह्मणोंको ज्ञान जैसी सर्वश्रेष्ठ वस्तु देकर महा अन्याय किया है। ज्ञानपर अधिकार शक्तिवानोंका रहना चाहिये! यद्यपि हम संसारके कर्त्ता-धर्त्ता-विधाता हैं; तथापि कोई भी नया काम करनेसे पहले हमें ब्राह्मणोंका मुँह ज़रूर जोहना पड़ता है। वे यदि उस काममें तनिक भी अपनी हानिको गन्ध पाते हैं, तो तत्काल निषेध कर देते हैं। बल-शालियोंके लिये ऐसी बाधकता किस कामकी? आओ, हम सब एकमत हो, ब्राह्मणोंको इस पदसे हटा दें और गुरुके पदसे भ्रष्टकर इन्हें निकम्मे नीचोंकी श्रेणीमें बैठा दें। ज्ञानका पद हमें मिल जायेगा, अतएव फिर धन-बल ज्ञान-पूर्ण क्षत्रिय जातिका सामना और कोई जाति कभी न कर सकेगी!

यह विचार था, विधिके विधानपर आक्रमण करनेका! सृष्टि-क्रमको उलट देनेका! ब्राह्मणोंकी अनाचारितामें तो विधि-योंकी बाढ़ आयी थी, जिनके न माननेमेंही कल्याण था, अवि-श्वास करनेसे ही विजय मिलती थी। वे किसी वर्णको मेटना नहीं चाहते थे। किन्तु क्षत्रियोंकी यह चेष्टा पूरा ईश्वर-विद्रोह

था। क्योंकि उन्होंने ज्ञान-गुरु बनने या सर्व श्रेष्ठ कहलानेके लिये, ब्राह्मण-वर्णको पशुबलसे मेटना शुरू कर दिया था। वे इस पृथ्वीपर ब्राह्मण वर्णको रहने देनाही न चाहते थे। रजो गुणको प्रधान सिंहासनपर बैठाकर, सत्वगुणको उसका दास नहीं, वरन् फांसी देना चाहते थे! इस तरह भगवान्‌की सृष्टिमें उस समय पूर्ण विकार पैदा हो गया था।

ब्राह्मण मारे जाने लगे, अतएव संसारसे ज्ञानका भी लोप होने लगा। ज्ञानके लुप्त होनेसे शासनमें विशृंखलता आगयी। अज्ञानके अन्धकारने परमात्माकी दिव्यवाणी वेद और दर्शनोंको अपने आवरणमें छिपा लिया। अतएव सारे संसारमें विषमताके साथ घोर विशृंखला भी फैल गयी। यानी पूरे नाशके लक्षण दिखाई देने लगे।

इस धर्म-ग्लानिसे धर्मराजका आसन डिगा। देवगणभी अनादृत हुए। अतएव उस ग्लानिको दूर करनेके लिये अमित पराक्रमी भगवान् परशुरामका ब्राह्मण-कुलमें जन्म हुआ।

विश्वामित्रकी पुत्र-वधू विजया क्षत्रियोंके हाथों सतायी जाकर, राज-रानीसे पथकी भिखारिणी होकर, प्रतिहिंसासे पागल बनी, दर-दर मारी फिरती थी कि, इसी समय उसका परशुरामसे साक्षात् होगया। कुछही देरके वार्त्तालापके बाद विजयाने जान लिया, कि "मेरा भक्त यही है। इसीसे मैं अनाचारी क्षत्रियोंका नाश कराऊँगी।" उसने परशुरामसे अपनी दुःख-गाथा कही, फिर अत्याचार-त्रस्त ब्राह्मणोंकी कुदशाका वर्णन किया और समय-समयपर वह ब्राह्मण-हितैषी क्षत्रियोंसे

मिल तथा उनकी सहायता द्वारा ब्राह्मणोंको परशुरामके पास पहुँचाती रही। एक दिन भारतके समस्त ब्राह्मणोंने परशुरामसे अपनी दशाका सविस्तर वर्णन किया और उससे उत्तेजित हो, जातिभक्त परशुराम उन्हें इस दुःखसे छुटानेका प्रण कर बैठे। समय आनेपर उन्होंने अपने उक्त प्रणको पूरा किया और २१ लड़ाइयोंमें सारे वैषम्यवादी क्षत्रियोंका नाशकर संसारमें साम्य भावकी प्रतिष्ठा की।

अतएव सिद्ध हुआ, संसारके कल्याणके लिये साम्यभाव ही उपयुक्त है। जब इस साम्यभावमें विषमता आ जाती है, तभी क्रान्तियाँ हुआ करती हैं। और इतिहास बताता है कि, ये क्रान्तियाँही संसारके समाजोंका नव जीवन-लाभ है।

भारतमेंभी आजकल अधिकार-प्राप्तिके लिये क्रान्ति मच रही है। उस क्रान्तिमें सफलता लाभ करनेके लिये लोगोंको उत्तेजन मिले, इसीलिये आज हम "वीर-चरितावली" के पाठकोंके आगे 'परशुराम' का उपाख्यान प्रस्तुतकर, उपस्थित हुए हैं। आशा है, इससे यदि उनका कुछ मनोरथ सिद्ध न होगा, तो कुछ-न-कुछ मनोरञ्जन अवश्य होगा।

परशुरामके जीवन-वृत्तान्तका वर्णन पुराणोंमें अति संक्षेप से पाया जाता है। अतएव हमने कितनीही नवीन कल्पनाएँ कर तथा पण्डित तुलसीदत्तजी शैदा रचित 'परशुराम' और श्री मनिलाल घोष प्रणीत 'कार्त्तवीर्य्य-संहार' नामक नाटकोंके अभिनयोंको देख कर ही इस पुस्तककी रचना की है।

सन् १९२२
कलकत्ता-प्रवास } नरोत्तम व्यास

पुरुषार्थ

प्रस्तावना

१

एक दिन प्रकृतिके सुरम्य लीला-निकेतन, कैलास पर्वत-पर, भगवान् शिव ब्रह्मके ध्यानमें लीन हुए बैठे थे और अध्यात्मचिन्ता द्वारा जीवको भाँति-भाँतिके उपदेश दे रहे थे। कह रहे थे—"हे मोहसे मतवाले, अज्ञानसे अन्धे और भ्रमसे भ्रान्त जीव! यद्यपि विराट् पुरुषका विश्वरूप अति सुन्दरता और सुविधासे प्रकाशित हो रहा है, तब भी तू उसका सरल तत्त्व हृदयङ्गम नहीं कर पाता। सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परमाणुसे लेकर सुविशाल हिमालय-श्रेणीतक सब भगवान्के विराट् स्वरूपका ज्ञान करा रहे हैं, सबमें वे समान रूपसे वर्त्तमान हैं, सबमें समान भावसे विद्यमान हैं और सबमें समान भावसे प्रकाशमान तथा विराजमान हैं। वे जड़में चैतन्य, चैतन्यमें तेज, तेजमें शक्ति और शक्तिमे



पुरश्चरण

प्रस्तावना

१

एक दिन प्रकृतिके सुरम्य लीला-निकेतन, कै पर, भगवान् शिव ब्रह्मके ध्यानमें लीन हुए अध्यात्मचिन्ता द्वारा जीवको भाँति-भाँतिके उपदेश दे रहे थे। कह रहे थे—"रे मोहसे मतवाले, अज्ञानसे अन्धे और भ्रमसे भ्रान्त जीव! यद्यपि विराट्-पुरुषका विश्वरूप अति सुन्दरता और सुविभासे प्रकाशित हो रहा है, तब भी तू उनका सरल तत्व हृदयङ्गम नहीं कर पाता। सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परमाणुसे लेकर सुविशाल हिमालय-श्रेणीतक सब भगवानके विराट् स्वरूपका ज्ञान करा रहे हैं, सबमें वे समान रूपसे वर्त्तमान हैं, सबमें समान भावसे विद्यमान है और सबमें समान भावसे प्रकाशमान तथा विराजमान हैं। वे जड़में चैतन्य, चैतन्यमें तेज, तेजमें शक्ति और शक्तिमें

प्रत्यक्ष स्वरूपमें व्याप्त हो रहे हैं—विश्वमय स्वयं विश्वरूप होकर विराज रहे हैं; इतनेपर भी हे भ्रान्त जीव! तू उनको न पहचान सका! एक सर्वव्यापी शक्ति-सूत्रमें सारा ब्रह्माण्ड बँध रहा है। उसमें तिलमात्र भी व्यतिक्रम नहीं होता। पक्षीके एक क्षुद्र पङ्ख और लताके एक छोटे पत्तेसे लेकर चन्द्र, सूर्य, ग्रह और नक्षत्रोंकी ओर देख, भगवान्‌की अनन्त महिमा अक्षर-अक्षरमें लिखी हुई है। अहो! कैसी अनन्त महिमा है! कीचमें कमलिनी, बालूमें मल्लिका, श्याम शाखामें रक्तवर्णी जवा, कृष्णवर्ण अङ्गारमें उज्ज्वल अग्निकी शिखा, निविड़ घोर मेघोंमें चञ्चल सौदामिनी, घृणित मल-मूत्राशयमें सुन्दर सुकुमार बालकका जन्म! अन्धजीव! आँख उठाकर देख,—भगवान्‌की अनन्त महिमा कैसी सुस्पष्ट है। हियेकी आँखोंसे देख, उसमें कैसा चमत्कार है।

"संसारके मनुष्यो! तुम सबकी अपेक्षा अधिक अन्धे हो। तुम्हारे जैसी हिंसा-वृत्ति तो और किसी जीवमें नहीं है। कितनेही जन्मोंमें किये हुए शुभ कर्मोंके प्रतापसे तो मनुष्य-देह मिलता है। फेर उन्ही कर्मोंके प्रतापसे, कोई ब्राह्मण, कोई क्षत्रिय, कोई वैश्य और कोई शूद्र होकर जन्म लेता है। ब्राह्मणोंका वेद-प्रचार, क्षत्रियोंका मानव-समाज-शासन, वैश्योंका कृषि, शूद्रोंका तीनों वर्णोंकी सेवा करना,—इस प्रकार प्रत्येकका वर्णगत धर्म है। दयामय भगवान्‌की कृपासे सब अपनी साधनामें सिद्धि-लाभ करना चाहते हैं, किन्तु मायाकी छलनासे कोई न कोई बखेड़ा उठ खड़ा होता



महादेव और विश्वामित्र।

"शिवके ध्यानस्थ होनेके कुछ देर बाद वहां राजर्षि विश्वामित्र आये। उन्होंने आते ही विविध स्तोत्रोंसे शिवकी स्तुति करनी आरम्भ की"। (पृष्ठ ९)

है। ऐश्वर्य्यके मदसे मतवाले होकर सभी हिंसा-वृत्तिका अवलम्बन किये हुए हैं। अस्त्रजीवी क्षत्रियकुल शौर्य्य-वीर्य्यके बाह्य बलसे-सर्वविजयी होकर ऐश्वर्य-मदसे मतवाला हो गया है। ऐश्वर्य्य मत्तता-का प्रधान लक्षण है, उच्च जीवसे ईर्षा करना। ब्राह्मण-कुल क्षत्रिय-कुलका उच्च वर्ण है। अतएव ब्राह्मण-हिंसा इस समय ऐश्वर्य्य-मत्त क्षत्रिय-कुलका एकान्त उद्देश्य हो गया है। क्षत्रिय-जाति इस समय ब्राह्मण-पूजासे विमुख है। ब्राह्मण-कुल बाह्यबलसे दुर्बल है, अतएव दुर्बलके बल, भगवान् नारायण, क्षत्रियोंका दमन करनेके लिये मानवकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। हे ज्ञानातीत लीलामय हरि! क्षत्रिय होकर ब्राह्मणोंकी हिंसा करनेवाले भी आप हैं और ब्राह्मण होकर क्षत्रियोंका दमन करनेवाले भी आप ही हैं। आप हन्ता हैं, आपही हत हैं, आप ही विजयी हैं, आपही जित हैं; आपही एक हैं और आप ही अनेक हैं—आपही बीज और आपही विश्व हैं। नमस्ते विश्व-रूपाय विश्वात्मने नमोनमः।"

इतना कहते-कहते भगवान् विश्वनाथ फिर ध्यानस्थ हो गये। शिवके ध्यानस्थ होनेके कुछ देर बाद, वहाँ राजर्षि विश्वामित्र आये। उन्होंने आते ही विविध स्तोत्रोंसे शिवकी स्तुति करनी आरम्भ की। वे बोले—"हे विश्वनाथ! हे व्योमकेश! आप सदय होकर इस पतित, अधम विश्वामित्रका प्रणाम ग्रहण कीजियेगा। ब्राह्मण चरणोंके दास, क्षत्रियाधम कौशिकके लिये ऐसा सर्व वाञ्छित देव-सौभाग्य प्राप्त होगा, ऐसी कल्पना मैंने कभी स्वप्नमें भी नहीं थी। आज मैंने इच्छासे ही देवेन्द्र-दुर्लभ विश्वेश्वरके चरण-

कमलोंका दर्शन कर लिया । मैं धन्य हूँ । मेरे पूर्वार्जित कर्म-फल धन्य हैं । मेरा तपोव्रत भी परम धन्य है ।"

महादेवकी समाधि टूट गयी । वे विश्वामित्रको आशीर्वाद देते हुए बोले—"हे राजर्षे ! तुम्हारी इस महापुरुषोचित सरल विनयको धन्य है । मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि, तुम अपने इष्टदेवकी नित्यप्रति प्रसन्नता प्राप्त किया करो । तपोबल-द्वारा सारी सिद्धियाँ पाया करो । कहो राजर्षे ! तुम सब प्रकारसे कुशल तो हो ?"

विश्वामित्रने हाथ जोडकर नम्रतासे कहा—"भगवान्‌के कृपा-बलसे इस दासकी जीवन स्वरूपिणी तपस्याका सर्वांगीन कुशल है, किन्तु योगेश्वर ! मेरा राजर्षि नाम-रूप कलङ्क क्या इस जीवनमें नहीं मिटेगा ?"

महादेव—वत्स ! राजर्षि नाम विश्वामित्रका कलङ्क नहीं है । सात प्रकारके ऋषियोंमें राजर्षि होना कठोर साधना-साध्य है । ऋषिके औरससे जन्म ग्रहणकर, बाल्यकालसे ऋषि-समाज में वयःप्राप्त हो, ऋषि-धर्म-पालन करना बहुत कुछ सहज साध्य है, किन्तु राज-शुक्र-शोणितसे शरीर धारण कर, स्वयं राजा होकर, राज सम्पद्, भोग-विलासोंमें वैराग्य-धर्मका पालन करना अति कठोर साधना-साध्य है । परमर्षि, महर्षि, ब्रह्मर्षि और देवर्षि अनेक हैं, किन्तु जनक और विश्वामित्रके सिवा और कोई भी राजर्षि नहीं है । अच्छा वत्स ! तुमसे एक बात पूछते हैं, उसका उत्तर दोगे ?

विश्वामित्र—पूछिये ।

महादेव—राजर्षे ! तुम तो तपोबल द्वारा ब्राह्मण्य-प्राप्तिकी साधना कर रहे हो और न मालूम कितने आदमी तुम्हारे ब्राह्मण-विद्वेषकी कल्पना कर रहे हैं। बताओ तो, तुम्हारे राज-सिंहासनके भावी अधिकारी वंशधरोंके मनोंमें किसी प्रकारका अज्ञानसंभूत ब्राह्मण विद्वेष तो-नहीं है ?

विश्वामित्र—देवादिदेव ! इस प्रश्नके समाधानके लिये मेरे कुलकर्मोंका आरम्भसे इतिहास सुनिये । मैं ब्राह्मण विद्वेषी नहीं हूँ। ब्राह्मणजातिकी श्रेष्ठता भगवान्‌की इच्छा है, इस बातको मेरा रोम-रोम अनुभव कर रहा है। यही कारण है, जो स्वर्गवास—वैकुण्ठधाम—पानेकी अपेक्षा ब्राह्मणत्व पानेकी ओर मेरा विशेष आग्रह है। मैंने ब्राह्मणत्वके लिये सर्वस्व त्याग किया है। इस समय भी मैं कौशलसे औरस-जात पुत्रकी उपेक्षाकर एक ब्राह्मणको राजपाट देकर आरहा हूँ। अतः मैं पूर्ण विप्र-सेवी और विप्रदास हूँ।

महादेव—तो क्या तुमने वंश-प्रतिष्ठा नहीं की ? वत्स ! अबतक तो हम लोगोंने यही सुन रखा था कि, राजर्षि विश्वामित्रने वंशधर पुत्रको सारा राज-पाट देकर, संन्यासाश्रम ग्रहण किया है। वंशप्रतिष्ठाकी अवहेलाकर पितृ पुरुषोंका जलपिण्ड लोप करना तो किसी भी दृष्टिसे उचित नहीं।

विश्वामित्र—भवनाथ ! सुनिये, मेरे दो पुत्र थे। बड़ा देवदत्त और छोटा मधुच्छन्द । मैंने संन्यास लेते समय, अपने बड़े पुत्रको, सारा राज-पाट दिया है। किन्तु देवदत्त मेरा औरस-जात

पुत्र नहीं है। देवदत्त जमदग्नि ऋषिका कनिष्ट भ्राता और ऋचीक मुनिका कनिष्ट पुत्र है। राजा अम्बरीषने उसे यज्ञमें उत्सर्ग करनेके लिये ऋचीक मुनिसे खरीद लिया था। इस मुनि-कुमारका जन्म-नाम था शुनःशेफ। शुनःशेफ मेरा भाञ्जा था। क्योंकि ऋचीक मुनिका विवाह मेरी सगी बहन सत्यवतीके साथ हुआ था। अम्बरीष राजाके यज्ञमें मैंने तपोबलसे शुनःशेफका-उद्धार किया था। उस समय उसकी पूर्व स्मृति लुप्त होगयी थी। मैंने उसे देवदत्त नाम रख, अपने बड़े पुत्रके रूपमें स्वीकार किया था। अब मैं संन्यासी हो गया हूँ। मेरी इच्छा थी कि, मैं अपना सर्वस्व किसी योग्य ब्राह्मणको दान कर दूँ। किन्तु आशंका यही थी कि, पवित्र वंशमें उत्पन्न हुआ ब्राह्मण शायद क्षत्रिय-राजाका दिया राज्यदान स्वीकार न करे। अतः मैंने अपने भाञ्जेको पुत्ररूपमें ग्रहणकर अब उसेही राज-पाट दे दिया है। इस प्रकार मेरा ब्राह्मणको सर्वस्वदान करनेका संकल्प पूर्ण हो गया।

ब्राह्मण ईश्वरके अंशसे उत्पन्न हैं। वे भारतकी हिन्दूजातिमें शिरोमणि समझे जाते हैं। मैंने इस जन्ममें दुर्लभ ब्राह्मण-पद पानेके लिये महा कठोर साधनाएँ की हैं, तिसपर भी मुझे कोई ब्राह्मण नहीं कहता। अब ससारके मुखसे पूर्ण ब्राह्मण कहलानेके लिये ही मैं सर्वत्यागी हुआ हूँ, मेरा नाम यद्यपि विश्वामित्र है, पर मैं अपने कर्मोंसे विश्वमित्र बनना चाहता हूँ।

महादेव—अच्छा वत्स! जब तुम अपना सारा राज-पाट देव-दत्तको देने लगे, तब मधुच्छन्दने तो उसमें कोई आपत्ति नहीं की?

विश्वामित्र—भगवन्! यह ठीक है कि, मधुच्छन्द मेरा औरस-जात पुत्र है, किन्तु उसमें एक भी राजोचित गुण नहीं है। वह कुटिलप्रकृति और भोग-विलासी है। देवदत्त भुवनमोहन रूपवान्, गुण-संपन्न तथा उच्चस्वभाववाला है। मेरे इस दानकर्मसे दो उद्देश्य सिद्ध हुए हैं। मैंने तपोबलसे सर्वपार्थिव सम्पद् दायिनी एक कामधेनुकी सृष्टि की थी; संन्यास ग्रहण करते समय मैंने सारी राज्य-सम्पदाएं एक ओर और वह कामधेनु एक ओर रख, मधुच्छन्दसे कहा कि, तुम जिस ओरकी वस्तु चाहो, ग्रहण कर सकते हो। मधुच्छन्दने विलासिता-सुलभ अवस्थाके वशमें होकर बिना परिश्रम पायी, ऐश्वर्य-भोग-लालसासे कामधेनुको ही ग्रहण किया, अतएव कौशिकराज्यका राजा इस समय मेरा प्रिय पुत्र देवदत्त ही है।

महादेव—विश्वामित्र! आजकल क्षत्रिय राजगण देवता और ब्राह्मणोंसे द्वेषकर अधोगतिको प्राप्त हो रहे हैं। तुमने अपने पुत्र देवदत्तका विवाह उन अधोगतिप्राप्त किसी राजकन्याके साथ तो नहीं कर दिया?

विश्वामित्र—नहीं प्रभो! मैंने किसी क्षत्रियकन्या या मानव-शुक्र शोणित-संभूता कन्याके साथ देवदत्तका विवाह नहीं किया, वरन् मैंने तपोबलसे अपनी विजया विद्याको नारीरूपमें अवतारित कर, उसीके साथ कुमारका विवाह किया है। अतएव श्रीमती विजया मेरी पुत्रवधू और कौशिक-राज्यकी राजरानी बनी हैं।

महादेव—वत्स! यह शुभ सम्मिलन तो बड़ा सुन्दर हुआ है।

किन्तु एक बड़ी भारी भूल हुई। यद्यपि विजया तुम्हारी तपोबल-लब्धा विद्या है, तथापि वह ब्रह्मविद्या है। ब्रह्मविद्याके सहवाससे राजकुमारकी ब्राह्मण-स्वभाव-सुलभ वैराग्यधर्ममें रुचि हो जायेगी।

विश्वामित्र—यदि ऐसा भी होगा, तो हे दयामय! उसमें दोषही क्या है? राजर्षि-कुमारके लिये वैराग्य परम सौभाग्य है। मेरे वंशधर मेरे पथका ग्रहण करें, इससे अधिक सौभाग्यका विषय और क्या होगा!

महादेव—अच्छा वत्स! परमज्ञानी महातपस्वी जमदग्निके घरमें भगवान् अनादिदेव नारायण, क्षत्रिय-कुलान्तकारी परशुराम नामसे अवतीर्ण हुए हैं, इसके तत्वको भी समझे?

विश्वामित्र—आदिज्ञानपुरुष! इस गभीर ज्ञानमय अवतार-तत्वको हृदयंगम करना मेरे जैसे क्षुद्र बुद्धि मनुष्यके लिये कठिन है। तथापि इतना अनुमान कर सकता हूँ कि, जब भगवान् मानव-रूपमें अवतीर्ण हुए हैं, तब उन्हें स्वयं मानव-धर्म-परायण होना होगा। वर्त्तमान अवतारमें भगवान्‌को एक ओर जिस प्रकार आदर्श तपस्वी जमदग्निकी भांति देवोचित ज्ञान-विद्या प्राप्त करनी होगी, दूसरी ओर उसी प्रकार भुवन-मथन कारी क्षत्रिय कुला-न्तक शौर्य्य-वीर्य्य प्राप्त करना होगा। अतएव इन दोनों विषयोंका एकत्र समावेश जैसा महर्षि जमदग्निमें है, वैसा अन्य किसी भी ऋषिमें नहीं है। जमदग्नि स्वयं क्षत्रिय-कन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। जमदग्निकी स्त्री रेणुका भी क्षत्रिय-कन्या है।

जमदग्निके पिता ऋचीक अति पवित्र उच्च ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए थे। ऐसे अति विशुद्ध, उन्नत ब्राह्मण और क्षत्रियके शुक्र-शोणितसे जन्मग्रहण करनेके लिये भगवान् नारायण जमदग्निके पुत्र हुए हैं। विशेषकर वे ब्राह्मण-द्वेषी क्षत्रिय-कुलका नाश करेंगे। क्षत्रिय-कुलमें जन्मग्रहण करनेसे पिता, पुत्र, भ्राता अथवा जातिवधके पाप-भयसे कर्त्तव्य-पालनमें अनेक त्रुटियोंके होनेकी आशंका रहती है। संभवतः इन्हीं सब कारणोंसे परशु-रामका जमदग्निके घरमें जन्म हुआ है।

महादेव—वत्स! तुमने भगवान्के इस अवतारका यथार्थ तत्व अनुभव किया है। भगवान्का लीला-महत्व अति सुन्दर है। वे कार्य हैं और कारण भी हैं, वे शत्रु हैं और शत्रुओंका अन्त करनेवाले भी हैं।

विश्वामित्र—भवनाथ! आपकी यह बात सम्पूर्ण सत्य है। प्रमाण देखिये, भगवान्ने पहले दत्तात्रेय मुनिका अव-तार धारणकर वर-प्रभावसे कार्त्तवीर्य्यार्जुनको सर्वश्रेष्ठ, संसारमें अकेला वीर बनाया था। अब उसीका दमन करनेके लिये वे परशु-राम रूपमें अवतीर्ण हुए हैं।

महादेव—वत्स! भ्रमसे अन्धे हुए मनुष्य भगवान्की प्रस-न्नताका सद् व्यवहार करना नहीं जानते। भगवान्की प्रसन्नतासे कार्त्तवीर्य्यार्जुन आज महापराक्रमशाली, अजेय, अद्वितीय और महावीर बना हुआ है। पृथ्वीका एकच्छत्र चक्रवर्त्ती महाराज है। इसका फल तो यह होना चाहिये कि, समस्त पृथ्वीपर शान्ति-

राज्य स्थापित हो, अकाल और अनावृष्टि दूर हो जाये, भारतकी समस्त जातियाँ निर्विघ्नतासे अपना धर्म-पालन करें। किन्तु ऐसी व्यवस्था न कर, कार्त्तवीर्य्यार्जुन आजकल एक दुर्जेय, पशु-बल-शाली, प्रजा पीडक, परस्वापहारक, ब्राह्मण-विद्वेषी तथा जीव-शत्रु बन रहा है।

विश्वामित्र—उसी दुरात्मा कार्त्तवीर्य्यसेही पृथ्वीपर क्षत्रिय-कुलमें ब्राह्मण-विद्वेष फैला है। उसकी इच्छा है कि, संसारके सब विषयोंमें एकमात्र वही श्रेष्ठ साबित हो। ब्राह्मण-धर्मका लोप करना ही उसका उद्देश्य है। ज्ञानबल, धर्मबल, और देव-बल—इन सब बलोंको वह अकेले बाहुबलसे जीतना चाहता है। पृथ्वीपर नरक-राज्य विस्तारकर वह नरकेश्वर होना चाहता है।

महादेव—राजर्षे! उस पापीका बारम्बार नामोच्चारणकर अपनी रसनाको अपवित्र न करो। उसके पापोंका घड़ा अब पूर्ण रूपसे भर गया है। दर्पहारी मधुसूदन, विशाल कुठारको हाथमें लेकर इस जगत्में अवतीर्ण हुए हैं। अब किसमें सामर्थ्य है, जो उसकी रक्षा कर सके। वत्स! तुम कुछ दिनों संसारमें भ्रमण करो। तुम इस युगमें सर्व श्रेष्ठ भगवद्-भक्त हो। भगवान्की लीलाका विस्तार करना भगवद्-भक्तका प्रधान कर्म है। आशा है, तुम इस कर्त्तव्यका-यथेष्ट पालन करोगे।

विश्वामित्र—भूतभावन भगवान्की आज्ञा शिरोधार्य्य है।

मैं इसी क्षणसे भगवान्‌के कार्य्य-साधनके लिये पृथ्वी-पर्य्यटनके कार्य्यमें प्रवृत्त होता हूं। आशीर्वाद दीजिये कि, मेरा संकल्प पूर्ण रूपसे सफल हो। अच्छा प्रणाम।

इतना कहकर राजर्षि विश्वामित्र वहांसे उठकर चले गये। भगवान् विश्वनाथ फिर अपनी समाधिमें लीन हो गये।

कार्त्तवीर्य्यार्जुन

१

भारतके सौन्दर्य्यकी समता करनेवाला देश, जगत् भरमें नहीं है। बड़े-बड़े विद्वान् और महात्मा प्रकृतिदेवीका प्रिय क्रीड़ास्थान कहकर इसकी महिमा-घोषणा कर गये हैं। गगन स्पर्शिनी पर्वत-श्रेणियाँ, पहाड़ोंकी चोटियोंके समान ऊँची लहर लेता हुआ नीलाम्बु पूर्ण अथाह समुद्र, मधुर सलिला बड़ी-बड़ी नदियाँ, अनन्त वालुकामयी, मृत्युभीषणा-मरुभूमि, वृक्ष लता-पुष्प-चित्रिता उद्यान-भूमि, वन्य जन्तुओंसे भरे गहन कानन, बड़े-बड़े प्रासादोंसे सुशोभित नगर, शस्य-श्यामल कृषिक्षेत्र, ताल-तमाल एवं कदली-नारिकेल-वेष्टित ग्राम, ऋषिमुनियोंके योगाश्रम, देव-देवियोंके मन्दिर तथा तीर्थस्थान आदि किसी भी दृश्यका यहाँ अभाव नहीं है। भारत देश मानों जगत्की विचित्रताओंका प्रदर्शन-स्थल है। संसारके उत्तमसे उत्तम पदार्थ इसी देशमें उत्पन्न होते हैं। यह है भारतकी पार्थिव श्रेष्ठता।

रही आध्यात्मिक श्रेष्ठता; सो भारतभूमि जगत्के ज्ञान

सभ्यता और धर्म-तत्वकी आदि जननी है। हमारे प्राचीन शास्त्र-कार कहते हैं—"पुण्यैः देहभिः जायन्ते भारते जन्म-मनवाः"—अर्थात् जिनलोगोंके पूर्वकृत पुण्योंकी संख्या, अत्यधिक होती है, वेही लोग इस पवित्र कर्मभूमि, भारतमें मानव-जन्म ग्रहण करते हैं।

जिस समयकी हम कथा कहेंगे, उस समयके भारतके वैभव-का तो कुछ ठिकाना ही न था। कुबेरकी सम्पत्तियाँ, इन्द्र पुरीको शोभाएँ, और स्वर्गके सुख—भारतके प्रत्येक गृहमें मूर्तिमान् रूपसे विराजमान थे। अष्ट सिद्धियाँ और नव निधियाँ भारतके बच्चे-बच्चेपर प्रसन्न रहती थीं। सर्वत्र पुण्यके फव्वारे छूटते रहते थे। पापका नाम भी न सुनायी पड़ता था। योगियोंका योग और तप-स्वियोंकी कठिन तपस्याएँ केवल भारत-हितमें काम आते थे। राजा लोग अपने पुत्रकी तरह प्रजाको प्रसन्न रखना अपना प्रधान कर्म समझते थे। प्रजा ईश्वरांश-युक्त राजाको परमात्माके जैसाही पूजती थी। सारांश यह कि,उस समय भारत संसार भरके देशों-की अपेक्षा, सर्वाधिक सुखी, सर्वाधिक समृद्ध और सर्वाधिक गौरवशाली था। क्या ज्ञान और क्या विज्ञान—सब विषयोंमें इसे अलौकिक महिमा प्राप्त थी। संसारके लोग—यदि स्वर्गके सुखोंकी कहीं उपमा देने लग जाते थे, तो उदाहरणके लिये भारतकी ओर सङ्केत किया जाता था।

यह बात थी त्रेताकी। त्रेतायुगमें भारतका साम्राज्य हैहय वंशीय राजाओंके शासनाधीन था। उनकी राजधानीका नाम था महिष्मती।

महिष्मती उस समय दूसरी अमरावती थी। उस समय जो सुख और सम्पत्तियाँ समस्त भारतमें अपरिपाट्यरूपमें देख पड़ती थीं, महिष्मतीमें उन सबका एकत्र समावेश था! इसका कारण? कारण यही था कि, राजासे लेकर प्रजा तक, सब अपने कर्त्तव्यों-का पूर्ण पालन करनेवाले थे। धर्मकी ध्वजाएँ प्रत्येक घरकी चोटीपर फहराती थीं। ब्राह्मणोंका समतान वेद-गान, क्षत्रियोंकी मल्ल-क्रीड़ा और प्रजा-रंजन, वैश्योंका पण्य विक्रय, और शूद्रोंकी सेवा-वृत्तिसे प्रसन्न होकर भारतलक्ष्मी, वर्षके बारहो महीने यहीं निवास करती थीं। राजा भी परम धार्मिक थे। नाम था कार्त्तवीर्य्यार्जुन। उन्होंने तप द्वारा अजेय पराक्रम, शुभ कर्मों द्वारा निःसीम यश और प्रजारञ्जन द्वारा यथेष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। उनके बाहुबलका सिक्का केवल भारत ही नहीं, संसारके अन्यान्य देश तथा स्वर्गमें भी जमा हुआ था। उनकी तीव्र तपस्यासे सन्तुष्ट होकर भगवान् दत्तात्रेयने विजय-लक्ष्मी उन्हें सेवा करनेके लिये दे दी थी। सारांश यह कि, महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुनके पास यश, पराक्रम और स्वर्गके सुख, सभी कुछ अनुपम था।

उनके वसुमती और विष्टिभद्रा नामकी दो रानियाँ थीं। रानियाँ रूप और गुणमें दूसरी इन्द्राणियाँ थीं। तिसपर भी वसुमतीमें गुण और विष्टिभद्रामें रूपका प्राधान्य था। वसुमती स्वर्गीय गुणोंके भारसे अवनत और विष्टिभद्रा रूपके गर्वसे उन्नत थी। उन्नतताया अहङ्कार अवगुणोंकी खानि है, और अवन-

ता या नम्रता गुणोंकी जननी है। यही कारण था कि, राजमह-लोंमें यदि वसुमतीकी प्रतिष्ठा प्रेमसे प्रतिष्ठित थी, तो विष्टिभद्राकी भयसे।

विष्टिभद्राका एक भाई था। उसका नाम था धूमकेतु। धूम-केतु उद्धतस्वभाव और कुटिल प्रकृतिका था, तिसपर महाराजने उसे अपना सेनापति बनाकर और भी अभिमानी बना दिया था। महा-राज स्त्रैण थे। अतएव वे विष्टिभद्राको अत्यन्त चाहते थे। विष्टिभद्रा धूमकेतुके हाथकी कठपुतली थी, अतएव कहना चाहिये कि, उन दिनों भारतका शासन एक प्रकारसे धूमकेतु द्वारा होता था। कार्त्तवीर्य्यार्जुन तो नामके राजा थे। सच है—ऐश्वर्य्यमें अनेक सुख हैं, तथापि उसके मदमें आँखोंका वास्तविक प्रकाश जाता रहता है। कौन धर्म है, कौन अधर्म है, कौन सत्य है, और कौन असत्य है—ऐश्वर्य्यशालीको यह कुछ भी दिखायी नहीं देता। ब्राह्मणोंका आशीर्वाद, बड़ोंके उपदेश और सज्जनोंका परामर्श, इनमेंसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता; किन्तु स्वार्थ-परायण धूर्तोंकी खुशामदोंमें ऐसा नशा है कि, इस खुशामदपसन्द राजाओंका मन हरदम मदमें मतवाला रहता है। उन्हें सिवा खुशामदके उस समय दूसरी चीज़ भली ही नहीं मालूम होती।

मदोन्माद।

२

ऐश्वर्य्य तृष्णा और मदको बढ़ाता है। महाराज कार्त्त-वीर्य्यार्जुन भारतका साम्राज्य और इन्द्रकेसे सुखोंको पाकर भी तृष्णा और मदका दमन न कर सके। ऐश्वर्य्यके मदसे मत्त होकर उन्होंने दिग्विजयके बहाने अनेक स्वतन्त्र राज्योंका ध्वंस करडाला था। जैसे-जैसे वे दूसरोंकी राज्यलक्ष्मियाँ लूट-लूटकर अपने धनभण्डारमें जमा करते रहे, वैसे-ही-वैसे उनकी धन-पिपासा बढ़ने लगी। और दुर्दमनीय आशाओंका कभी अन्त भी नहीं होता। जो व्यक्ति आशाओंको, दमन न कर बढ़ाता है, उसकी आशाएँ ही अन्तमें उसके सर्वनाशका कारण बन जाती हैं। कार्त्तवीर्य्य सदा इस बातकी खोजमें लगे रहते थे, कि कब किसी स्वतन्त्र राज्यका पता लगे और मैं उसे पराजितकर अपने अधीन करूँ। उनकी यह आदत पुरानी नहीं। आज भी यही दशा है, आज भी वे इसी चिन्तामें मग्न हैं, जिन पाठकोंको हमारे इस कथनपर विश्वास न हो, वे तनिक कष्ट उठाकर हमारे साथ महिष्मतीके महलोंमें

चलें, और देखें, वे इस समय भी अपने प्रधान मन्त्रीसे क्या वार्त्तालाप कर रहे हैं।

* * * * * *

राजाने कहा—"मन्त्रिन्! भगवान् दत्तात्रेयके प्रसादसे मैंने असाधारण शौर्य्य-वीर्य्य, अजेय बाहु-बल, अगण्य सैन्यबल, अदमनीय क्षत्रिय-तेज, असीम राज्य, अनन्त ऐश्वर्य्य और अक्षय्य सम्पत्तियाँ पा ली हैं, किन्तु दुर्दमनीय दिग्विजयकी आशा शान्त नहीं होती। मुझे पहले यह मालूम न था, कि, संसारभरके क्षत्रिय इतने निस्तेज हो गये हैं। आशा थी कि, एक-एक प्रबल पराक्रमशाली, दुर्जेय महावीरके साथ, प्रज्वलित समरानलमय अस्त्र-शस्त्रमें, रण-रंगसे मत्त होकर मृत्यु-क्रीड़ा करूँगा;—किन्तु कहाँ, मेरी यह आशा तो एक दिन भी पूरी नहीं हुई। केवल एक बार किये हुए सिंहनादको सुनकर क्षत्रियराजगण, भेड़ोंकी तरह झुण्ड बाँधकर, प्राण-रक्षाके लिये न मालूम कहाँ भाग जाते हैं। सुना है, श्वेतद्वीपका राज्य और विश्वामित्रका कौशिक राज्य—ये दोनों अभीतक स्वाधीन बने हुए हैं। मन्त्रिन्! मैं इन दोनों राज्योंको भी अपने अधीन करना चाहता हूँ, आप इसमें क्या सम्मति देते हैं?"

मन्त्री—महाराज! डाका डालना और दिग्विजय करना—ये दोनों भिन्न-भिन्न बातें हैं। न्याय पूर्वक राज्य-विस्तार करना राजधर्म है। प्रजा-पीड़क, साधु-विद्वेषी, धर्म-भ्रष्ट और शत्रु-स्वरूप राजाको शासनके लिये बलात्कार राज्य-विस्तार करनेका नाम

सच्चा दिग्विजय है; समयोगी क्षत्रियवीरको पराजितकर स्वराज्यमें पुनः प्रतिष्ठित करनेका नाम भी दिग्विजय है और स्वधर्म-रत, प्रजा-रक्षक, निर्विरोधी राजाको छल पूर्वक राज्यच्युतकर, बलपूर्वक उसके शान्तिमय सुखके राज्यको अपहरण करनेका नाम डाका डालना है। महाराज! क्षत्रियोंकी वीरता पाप-पूर्ण अभिसन्धियोंको सिद्ध करनेके लिये नहीं है। मेरे अनुरोधसे आप इस पाप-विचारको त्याग दीजिये।

राजा—मन्त्रिन्! तुम्हारे धर्मशास्त्रके पाप-पुण्योंकी व्यवस्थासे मैं बड़ा अस्थिर हो चुका हूँ। स्नान, भोजन और विहारमें पाप, सोने-जागने और स्वप्न देखनेमें पाप, शिकार, युद्ध और सन्धि करनेमें पाप एवं राज्य जीतने, राज्य-विस्तार करने और राज्य-पालनमें पाप—इस प्रकार यदि सबमें पापका निवास है, तब मैं पुण्यको कहाँ पाऊँ? यदि गार्हस्थ्य-धर्मके पद-पदमें पाप है, तो क्या संन्यास लेलूँ?

मन्त्री—संन्यास लेनेकी क्या ज़रूरत? आपके पास क्या इस समय थोड़ा राज्य है? इस समय आप ससागरा पृथ्वीके अधीश्वर हैं। इतनेमें ही सन्तोष कीजिये। तृष्णा तो जितनी बढ़ायी जाती है, उतनी ही बढ़ती है। सन्तोषः परमो लाभः। सन्तोषही परम लाभ है।

राजा—मन्त्रिन्! इस प्रकारके विचार पशु-जीवी और आलसियोंको करने चाहिये। उद्यमी लोग सदा परिश्रम करके भोजन किया करते हैं। आप आजकल यह कैसा परामर्श देने लगे हैं!

पहले तो कभी निरुत्साह नहीं दिखलाते थे, बड़ा आश्चर्य है!"

"महाराजाधिराज, हैहयराज-कुल-तिलक भूपति! राजर्षि विश्वामित्रके पुत्र कौशिक-राज-कुमार मधुच्छन्दका साष्टांग प्रणाम स्वीकार कीजियेगा।"

इतना कहते-कहते राजभवनके उस कमरेमें, सेनापति धूम-केतुके साथ, एक पच्चीस वर्षके युवकने प्रवेश किया।

महाराज कार्त्तवीर्य्य युवकको आशीर्वाद देते हुए बोले—"आओ वत्स! तुम्हारी अभीष्ट-सिद्धि हो। कहो, तुम क्या कहना चाहते हो?"

युवकने कहा—"महाराज! आप ससागरा पृथ्वीके एक-छत्र सम्राट् हैं। मैं आपके पास न्याय-विचार करानेके लिये आया हूं। सुनिये, मैं राजर्षि विश्वामित्रका पुत्र हूं। मेरा नाम मधु-च्छन्द है। तपोबलसे अग्निके समान तेजस्वी, मेरे पिताने इस समय संसारका परित्यागकर संन्यास ले लिया है। उनके पास दो सम्पत्तियाँ थीं—एक कौशिकराज्य, दूसरी काम-धेनु। मेरे और एक बड़ा भाई है। उसका नाम देवदत्त है। देवदत्त मेरे पिताका औरसजात पुत्र नहीं है;—खरीदा हुआ लड़का है। ज्येष्ठभ्राता देवदत्तको पिता अधिक चाहते रहे हैं। अतएव संन्यास लेते समय वे मुझे राज्य-लाभसे वञ्चितकर देवदत्त-को ही सारा राज्य दे गये हैं। मैं केवल कामधेनुका ही अधिकारी हुआ हूं। मैंने एक दिन अपने भाईसे पिताके इस पक्षपातकी निन्दा की थी; उसे सुनकर देवदत्त मुझे काम-

मैं तुम्हें बदलेमें सारा राज्य देनेके लिये तैयार हो गया। किन्तु महाराज! न्याय-दृष्टिसे तो मैं ही उन दोनों चीजोंका अधिकारी हूँ।"

राजा—भाई! यह आपत्ति तुमने पितासे क्यों न की? उस समय तुम उनके प्रस्तावपर क्यों राजी हो गये थे?

मधुच्छन्द—पिताके तप-प्रभावसे उस समय मैं किसी प्रकारका प्रतिवाद न कर सका।

राजा—इस समय तुम क्या चाहते हो?

मधुच्छन्द—महाराज! इस समय मैं यह चाहता हूँ कि, जब दोनों सम्पत्तियोंका मैं ही एकमात्र अधिकारी हूँ, तब मैं उन दोनों वस्तुओंको आपकी सहायतासे प्राप्त करूँ और राज्य-प्राप्त करलेपर कामधेनु आपको प्रीति-उपहारमें समर्पण करूँ। ऐसा होनेसे मेरे और आपके बीचमें मित्रता हो जायेगी।

राजा—वत्स! तुमने जब एकबार अपने पिताकी आज्ञाका बिना प्रतिवाद पालन किया, तब—

"तब क्या? कुपुत्रोंके लिये तो आज्ञा-पालन और आज्ञा-उल्लंघन दोनों समान हैं। महाराजकी जय।"

राजा—आइये राज-पुरोहित! मैं आपकी बाट बड़ी देरसे जोह रहा था।

धूमकेतु—राजपुरोहित! अच्छा होता, यदि आप थोड़ी देर बाद पधारते। हमलोग यहाँ एक आवश्यक परामर्श कर रहे हैं।

राजपुरोहित—क्या महाराजको प्रणयमन्त्र सिखा रहे हो?

धूमकेतु—राजपुरोहित! यह स्थान सबके आनेके लियेनहीं है।

राजपुरोहित—तो क्या यह आपका ज़नानख़ाना है? सेनापति! एकान्त परामर्श करना छोड़ दो। राजसभा प्रकाश्य-स्थान है। राज-कार्य्य सर्वसाधारणका कार्य्य है। यहाँ कानाफूसीकी क्या ज़रूरत! कानाफूसी ही करनी है, तो जाओ मंत्रणागृहमें चले जाओ।

धूमकेतु—महाराज! हरवक़्त की दिल्लगी अच्छी नहीं! जाओ, थोड़ी देर बाद आना।

राजा—सेनापति! राजपुरोहित ग़ैर आदमी नहीं हैं। उनके सामने मधुच्छन्दके विषयमें वार्त्तालाप करनेमें कुछ हानि नहीं। हाँ राजकुमार! इस समय तुम्हारा मूल उद्देश्य क्या है, संक्षेपमें कह डालो।

मधुच्छन्दने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज! मेरी सहायता कीजिये! मैं कौशलसे कौशिक राज्यको आपकी अधीनतामें दे दूंगा। आप देवदत्तको वशमें कीजिये।"

राजा—राजकुमार! बड़े भाईसे इतना गहरा द्वेष क्यों रखते हो?

मधुच्छन्द—महाराज! मैं पिताका औरसजात पुत्र हूँ और देवदत्त ज़रख़रीद है, तिसपर भी पिताकी सम्पत्तिका अधिकारी वही हुआ। इस प्रकारके अविचारसे भ्रातृ-विद्वेष तो साधारण बात है, देवता-विद्वेष भी पैदा हो सकता है।

राजा—वत्स! तुम तो क्षत्रिय-कुमार हो, तुम्हारे पास वीरत्व है, बाहुबल है। स्वयं युद्ध करके, पिताकी सम्पत्तिपर अधि-

धार क्यों नहीं कर लेते ? अपना प्राण अधिकार क्यों न लेते ?

मधुच्छन्द—महाराज ! मैं उसकी बराबरीका योद्धा नहीं हूँ। पिता अपने तपोबलके प्रभावसे उसे अतुल रूप गुण, असीम शौर्य्य और अजेय वीरत्व दे गये हैं। विशेषकर कौशिकराज्यके समस्त राजपुरुष, राजसेना और प्रजा उसके अत्यन्त अनुगामी हैं।

मंत्री—कौशिक-राजकुमार ! आपकी बातोंसे मालूम होता है कि, आपके भाई, देवदत्तमें सभी राजोचित गुण वर्त्तमान हैं। यही देखकर शायद आपके पिता, महात्मा, राजर्षि विश्वामित्रने उन्हें अपना राज्य-दान किया है। इतने पर भी जब वे आपको कामधेनुके बदलेमें राज्य देना चाहते हैं, तब तो वे बड़े ही आत्म-त्यागी, भ्रातृवत्सल, महानुभाव और राजर्षि विश्वामित्रके सच्चे सुपुत्र हैं। आप ऐसे देव जैसे भाईके साथ हिंसा-भाव क्यों रखते हैं ?

मधुच्छन्द—मन्त्रिवर ! आप इस बातका गूढ उद्देश्य नहीं समझ सकते। देवदत्तका इस समय रूपमय नवीन यौवनका मध्याहृकाल है। उसकी स्त्री विजया अतुलनीया रूपवती सुन्दरी है। अग्निशिखासे ज्वलन्त, यौवनके मद-गर्वसे अति गर्विता है। वह मुझे कामधेनुके बदलेमें जो राज्य देना चाहता है, वह बहुत थोड़े समयके लिये। उस बीचमें निर्विघ्नतासे यौवन-सुखोंका संभोग करना ही उसके राज्य-दानका उद्देश्य है। इन्द्रियोंकी तृप्ति होते ही, कुछ दिनों बाद, वह मेरे जीवनके साथ राज्य ग्रहणकर

निश्चिन्ततासे निष्कण्टक राज्य-भोग करेगा।

मंत्री—राजकुमार! पिशाच कभी देवता नहीं होते और देवता भी कभी पिशाच नहीं होते। आप इस सन्देहको दूर करें। देवदत्त देवता हैं। वे कभी हिंसा न करेंगे! आप परमात्माके नामपर, इष्टदेवकी भाँति ज्येष्ठ भ्राताकी पद-सेवाकर अपने जीवनको पवित्र कीजिये। उनके विनाशका संकल्प अपने हृदयसे एकदम दूर कर दीजिये। जाइये, मनके सारे विकार दूरकर अपने भाईके पास लौट जाइये।

मधुच्छन्द—मन्त्रिवर! आप सरल स्वभावके व्यक्ति हैं। कुटिल लोगोंकी कूट अभिसन्धियोंको आप सरलतासे नहीं समझ सकते।

धूमकेतु—राजकुमार! सावधान, सारी बातें अभी न उगलो। समय और विश्वसनीय पात्र देखकर ही अपने घरका भेद देना चाहिये।

राजपुरोहित धूमकेतुसे चिढ़ते थे। वे धूमकेतुकी उक्त बात सुनकर, मन-ही-मन कहने लगे—"हाय! हाय! आजकल स्वर्गमें भी देवताओंका काल पड़ गया दीखे है। संसारमें तो देवता रहे ही नहीं। पुराने जमानेके देवताओंमें बहुतसे देवता वीर होते थे। कोई महिषासुर, कोई दुर्गासुर, और कोई शुम्भ-निशुम्भको मार कर अधर्मके बोझसे पिच मरनेवाली पृथ्वीको हलका करते थे; किन्तु आजकलके खोखली देवता इस विकट शत्रु धूमकेतुकी मूँछका बाल भी नहीं उखाड़ सकते। हा धर्म! इस युगमें तुम्हें भी अन्धा होना पड़ा।"

मन्त्रीने कहा—"महाराज ! मैंने खूब विचार करके देख लिया है कि, कौशिकराजकुमार, मधुच्छन्दका उद्देश्य नितान्त अधर्म मूलक है। आप इस अधर्मकी दलदलमें न फँसे। आप इस युगके आदर्श राजा हैं। आपके अधर्म करनेसे पृथ्वीपर अधर्मका स्त्रोत ही वह निकलेगा।"

राजा—मन्त्रिन्! तुम असली बात नहीं जानते। किसी विषयकी, अंशमात्र देखकर ही समालोचना न कर डालनी चाहिये। पहले मुझसे सच्चा-सच्चा हाल जानलो, जानकर उसे हृदयमें बैठालो, हृदयमें बैठानेके बाद कहीं उसकी आलोचना करना। साधारण, कमसमझके आदमी जानते हैं कि, ब्राह्मण लोग हिन्दू-समाजके नेता हैं—इष्टसाधक और सर्वगुरु हैं, किन्तु यह संस्कार एकदम भ्रम है। स्वार्थ-परायण ब्राह्मण-जातिसे ही दिन दिन हिन्दू-समाजका अधः पतन हो रहा है, एवं भविष्यमें भी होगा और क्रमशः नष्ट-भ्रष्ट होकर यह एकदम लय हो जायेगा। ब्राह्मण लोग पहले अन्य वर्णोंको पढ़ाया करते थे, इसीलिये उनका सब जातियोंमें उच्चासन था। शास्त्र उनके हाथमें थे। अतः उन्होंने स्वकपोल कल्पित, स्वार्थ-साधक व्यवस्थाका प्रचार किया कि, ब्राह्मण श्रेष्ठ वर्ण हैं, वे सदा निरुपद्रवतासे धर्मालोचना करेंगे। क्षत्रिय लोग उनके दरवान बनकर नाममात्रके राजा हो, उनके सब प्रकारके अभावोंकी पूर्त्ति किया करेंगे। वैश्य उनके लिये खेती करके अन्न उत्पन्न किया करेंगे, और शूद्र अधमाधम बनकर सबकी सेवा किया करेंगे। देखा—

कितनी घोर स्वार्थ-परता है! युद्ध-क्षेत्रमें-प्राण देनेकी आवश्य-कता है—जाओ क्षत्रिय, तुम जाओ। खुले मैदानमें, जेठकी कड़ी धूप और भाद्रकी मूसलधार वर्षामें, भूख-प्यासकी ज्वाला सहकर खेती करनेवालोंकी ज़रूरत है। जाओ वैश्य! तुम जाओ। तीनों वर्णोंकी सेवा करनेवालेकी आवश्यकता है। जाओ शूद्र! यह काम तुम्हें करना होगा, और ब्राह्मण क्या करें? वे निर्विघ्न, निश्चिंत, निर्विकार और परम सुख-शान्तिके साथ, आहार-विहारादि कर, सुखसे जीवन व्यतीत करें। कितनी भयानक स्वार्थ-परायणता है!"

राजपुरोहित महाराजकी उक्त बातको सुनकर मन-ही मन हँसे और बोले—"महाराज! और भी देखिये। ब्राह्मण लोग कैसा अन्याय करते हैं! वे स्वच्छन्दतासे तीनों वर्णोंकी सुन्दरी कन्याके साथ विवाह कर सकते हैं, पर अपनी कन्याको तीनो वर्णोंकी माता बना कर साफ़ बचा लिया।

राजा—मन्त्रिन्! ब्राह्मण-जातिकी स्वार्थ-परताकी इतनी वृद्धि केवल विश्वामित्रके कारण ही हुई है। विश्वामित्रने एक श्रेष्ठ क्षत्रिय-राजा होकर, ब्राह्मण बननेके लिये सर्वस्व त्याग किया, कठोर तपस्या की, उससे तत्त्व-सिद्ध महापुरुष कहलाये, संसारमें नवीन सृष्टिका प्रचार किया, तथापि वे पूर्ण ब्राह्मण अब-तक न होसके। कैसा घोर अन्याय है! विश्वामित्रके इस आद-र्शको देखकर ब्राह्मण-जातिका गर्व और भी बढ़ गया है। अत एव विश्वामित्र क्षत्रियजातिके प्रधान कुलांगार हैं। उस दुष्ट

कुलांगारके चिह्न-स्वरूप, देवदत्तको क्षत्रिय-समाजसे लुप्त कर देना हमारा परम कर्त्तव्य है।

मंत्री—महाराज! आपके जैसे हिन्दू-कुल-गौरव महापुरुष के मुखसे ब्राह्मणोंकी निन्दा—महात्मा, राजर्षि और क्षत्रिय कुल-शिरोमणि विश्वामित्रकी निन्दा—अच्छी नहीं लगती। आप अपना चित्त स्थिर कीजिये और लोक-परलोकका ख़याल कर अधर्म पूर्ण कार्य्यमें हाथ न दीजियेगा।

राजा— इस मामलेमें मैं किसीकी भी सलाह नहीं लेना चाहता। मुझे किसीके भी उपदेशकी आवश्यकता नहीं। मेरे सामने युक्ति-विरुद्ध अनुरोधकी कुछ इज़्ज़त नहीं है। जाओ सेनापति! उद्यानवाटिकामें राजकुमार मधुच्छन्दको वासस्थान दो। श्वेतद्वीप और कौशिकराज्यके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दो! वत्स मधुच्छन्द! निडर होकर महिष्मतीमें निवास करो। जब तुमने मेरा आश्रय ग्रहण किया है, तब मैं निश्चय ही तुम्हें शत्रु-हीनकर कौशिकराज्यके राज-सिंहासनपर अभिषिक्त करूंगा। नीचाशय विश्वामित्रके दुष्कर्मका प्रतिविधान करूंगा।

राजाके इतना कहते ही मधुच्छन्द और सेनापति धूमकेतु मुस्कुराते हुए उठे और उद्यानवाटिकाकी ओर चले। राज-पुरोहित मधुच्छन्दके भ्रातृ-विद्रोहको देखकर मन-ही-मन बड़े दुःखित हुए। वे रसिक थे। अतः उन्होंने व्यङ्गभरे स्वरमें मधुच्छन्दको सम्बोधन कर कहा—"बेटा! मेरी एक बात तो सुनते जाओ। पर देखो, मेरी बातको स्थिर और ध्यानके साथ

सुनना। सुनकर वृथा क्रोध न करना। क्या तुम सचमुच विश्वामित्रके लड़के हो? ओह! तभी पिताकी निन्दा सुननेके लिये इतनी दूर कष्ट उठाकर आये हो! औरस जानते हो, किसे कहते हैं? औरस नाम मलमूत्रका है। नहीं, नहीं, औरस मल-मूत्रको भी नहीं कहते, मल-मूत्रमें तो कीड़े पैदा हुआ करते हैं; वे उस मल और मूत्रमें ही परम सुखसे निवास करते हैं। वे किसीकी हिंसा नहीं करते, सदा मिल-जुलकर रहा करते हैं; किन्तु बेटा! तुम जैसे सपूतकी करतूतोंसे तो औरस मल-मूत्रसे भी गया-बीता हो गया। बेटा! जानते हो, अधमसे उच्च उत्तमकी उत्पत्ति हुआ करती है,—कीचमें कमल, सीपमें मोती और कोयलोंमें हीरे पैदा होते हैं—मनुष्यके औरससे गधे पैदा होते तो कभी नहीं देखे गये, तुम न मालूम इसके पहले उदाहरण कैसे हुए! अच्छा बेटा! जाओ; जियादः क्या कहूँ, उद्यान-वाटिकामें जाकर राजसुखोंका उपभोग करो।"

मधुच्छन्द राजपुरोहितकी इस तीखी चुटकीसे तलमला उठा। वह क्रोधसे काँपता हुआ बोला—"मेरे साथ इतनी ढीठता का व्यवहार करनेवाले तुम कौन हो जी? तुममें इतनी गुस्ताखी! महाराजकी राज-सभाका अपमान होनेका भय है। अन्यथा मैं अभी तुम्हारा सिर काट लेता।"

धूमकेतु—महाराज! कृपाकर अपने इन पुरोहितजीके मुँहमें लगाम दीजिये। इनकी हिम्मत अब हद लाँघती जाती है।

राजा—मधुच्छन्द! शान्त हो। दुर्बलके पास सिवा गालि-

योंकि दूसरा बलही क्या होता है? दुर्बलके प्रति क्रोध करना राजकुमारके लिये शोभा नहीं है।"

यह सुनकर मधुच्छन्द और धूमकेतु चले गये। राजपुरोहितने महाराजसे कहा—"महाराज! अब तो धूमकेतु अस्त हो गया। अब तो पूर्णचन्द्रका उदय होना चाहिये। सुमतिका नाम पूर्णचन्द्र है। महाराज! उस पूर्णचन्द्रके उदय होनेसे, उसकी विमल चाँदनीमें आप भले-बुरेकी पहचान अच्छी तरहसे कर लेंगे।"

मन्त्री—हाँ महाराज! राजपुरोहित ठीक कहते हैं। अब भी आप अपने उस पाप-संकल्पका परित्याग कर दीजिये।

राजा—छिः मन्त्रिन्! तुम बड़े कमअक्ल हो। तुममें अभी इतनी भी बुद्धि नहीं आयी कि, मेरी नीतिको हृदयंगम कर सको? विश्वामित्र वास्तवमें क्षत्रियकुलका कलंक है। उस पापीने संसारके समस्त क्षत्रियोंके मुखपर कायरताकी कालिख पोत दी है। मुझे इससे बड़ा दुःख हुआ है। खैर, विश्वामित्रने तो पृथ्वीपर क्षत्रियोंकी अपेक्षा ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन किया है, किन्तु मैं—प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ—ब्राह्मणोंकी अपेक्षा क्षत्रियोंकी श्रेष्ठता प्रतिपादित करूँगा।

मन्त्री—महाराज! हिन्दुओंके समस्त शास्त्रोंमें ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठता प्रतिपादित हो रही है, आप किस तरह क्षत्रियोंकी श्रेष्ठता-प्रतिष्ठा करेंगे?

राजा—मन्त्रिन्! मेरा शास्त्र मेरा बाहुबल है। मैं बाहुबल द्वारा संसारमें क्षत्रिय-गौरवकी प्रतिष्ठा करूँगा। बस, अधिक

वाद-विवादकी ज़रूरत नहीं। मैं जाता हूँ, अब सभा-भङ्ग हो।

इतना कहकर महाराज वहाँसे चले गये। राजपुरोहित उनके पीछे-पीछे गये। सबके चले जानेपर मन्त्री महोदयने भी अपने घरका रास्ता लिया।

महाराजने रास्तेमें जाते-जाते राजपुरोहितसे पूछा—"राज पुरोहित! तुम्हीं बताओ, इस पृथ्वीपर कौन जाति सर्वश्रेष्ठ है?"

राजपुरोहितने हँसकर कहा—"चाण्डाल जाति सर्वश्रेष्ठ है।"

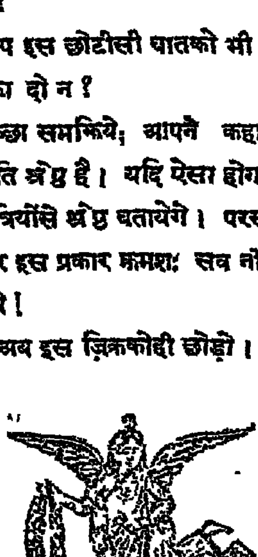
राजा—कैसे?

पुरोहित—आप इस छोटीसी बातको भी न समझ सके?

राजा—समझा दो न?

पुरोहित—अच्छा समझिये; आपने कहा कि ब्राह्मणोंकी अपेक्षा क्षत्रियजाति श्रेष्ठ है। यदि ऐसा होगा, तो कल वैश्य-लोग अपनेको क्षत्रियोंसे श्रेष्ठ बतायेंगे। परसों वैश्योंकी अपेक्षा शूद्र श्रेष्ठ होंगे और इस प्रकार क्रमशः सब नीच होकर चाण्डाल ही श्रेष्ठ हो जायेंगे।

राजा—ख़ैर, अब इस ज़िक्रकोही छोड़ो।



आदर्श दम्पति

४

राजर्षि विश्वामित्रके पूर्ण ब्राह्मणत्व प्राप्तिके लिये संन्यासलेलेनेपर, उनकी श्रेष्ठ सम्पत्ति—कौशिक राज्यके—अधिकारी हुए महातेजस्वी महाराज देवदत्त। देवदत्त परम धार्मिक, परम विद्वान् और महा शक्तिशाली थे। यही कारण था, जो उनके शासनाधीन होते ही कौशिकराज्य अत्यन्त महिमाशाली हो उठा। महाराजके सद्व्यवहारसे क्या तो राजपुरुष और क्या साधारण प्रजा,—सब उनके परमभक्त होगये। यहाँ तक अनुरक्त हुए कि, जहाँ महाराजका पसीना गिरता, वहाँ वे अपना खून बहानेके लिये तत्पर हो जाते थे।

महाराजकी महारानी, विजया भी गुणोंमें साक्षात् सरस्वती थीं। उनकी मधुर वाणी और परिजन-भक्तिने तो राज्यभरसे नाम पायाही था, पर अपने पातिव्रतके माहात्म्यवश उन्होंने सावित्रीकी सी प्रसिद्धि पाली थी। राजभवनका बच्चा-बच्चा उन्हें दिलसे चाहता था। दास-दासियोंके चोचलोंका तो कुछ ठिकानाही नहीं।

वे तो अपनी महारानीके लिये प्राण देती थीं। सारांश यह कि, भगवान्‌ने देवदत्त और विजयाकी आदर्श जोड़ी बनायी थी। कौशिकके महाराज और महारानी क्या थे, मानो दूसरे विष्णु-लक्ष्मी थे।

दोनोंमें पारस्परिक प्रेम भी कम न था। मानो दो देह एक आत्मा थे। जबतक महाराज राजकार्य्योंसे निवृत्त होकर, राजमहलोंमें नहीं आजाते थे, तबतक महारानीका मन निरन्तर अनमनासा रहता था। महाराज भी वैसे तो दिनके बारहो घण्टे राज-कार्य्य करते थे, पर प्राण उनके महारानी विजयामेंही पड़े रहते थे। सायंकालके समय जब महाराज आते और आतेही अपनी प्राण-प्रतिमासे चार प्रेमकी बातें न कर लेते थे, तब तक उनकी शिथिल नाड़ियोंमें शक्ति-संचार न होता था। विश्वास न हो तो पाठक आयेपाँव अभी हमारे साथ राजमहलोंमें चलें और दम्पतिमें होनेवाले प्रेम गुण-गानको श्रवणकर अपने कानोंको पवित्र करें।

देवदत्तने कहा—"प्रिये! प्रेम और मोह ये दोनों कभी एक नहीं हैं। दोनोंमें स्वर्ग-नरकका भेद है। क्यो कि, प्रेम ईश्वरीय है, स्वर्गीय है, और मोह—पाशव या पार्थिव है। प्रेम वस्तु है, मोह छाया है। प्रेम दुर्लभ मणि है, और मोह सर्व सुलभ काच है।

विजया—आर्य्यपुत्र! आप तो मेरे प्रेममय देवता हैं। मै आपकी प्रेमाधीना दासी हूँ। बताइये नाथ! प्रेम किसे कहते हैं और मोह किसे कहते हैं?

देवदत्त—सति! तुम मेरी प्रेममयी प्रेमिका और मोहमयी मोहिनी, दोनोंही हो। अब प्रेम और मोहके अर्थको सुनो,—प्रेम चिर-कालका और मोह दो दिनका होता है। प्रेम चिरस्थायी है, मोह क्षणस्थायी है। जिस आसक्तिके सूत्रमें दो आत्माएँ चिर कालके लिये सम्मिलित हो जाती हैं, उसी आसक्तिका नाम प्रेम है। और जिस आसक्ति-सूत्रमें दो मनका क्षणकालके लिये मुग्धभ्रमसे निकट सम्बन्ध हो जाये, उस आसक्तिका नाम मोह है। रूपसे मोह और गुणसे प्रेम पैदा होता है।

विजया—प्रेममय! क्या मोहसे प्रेम उत्पन्न नहीं होता?

देवदत्त—हाँ, अवश्य होता है। क्योंकि महा अपकृष्ट कुरूप गुड़से चीनी बनती है, अङ्गारेसे हीरा पैदा होता है। अतः मोहसे प्रेम भी उत्पन्न होता है।

विजया—हृदयेश्वर! आप तो मेरे प्रेममय देवता हैं। मैं हीन बुद्धि अबलानारी; आपकी पूजा करनेके लिये मैं प्रेमका उपहार कहाँसे लाऊँगी?

देवदत्त—सति! इसीलिये दयामय भगवान्ने तुम्हारे शरीरमें रूपका भाण्डार हृदयमें सरलता तथा गुणोंकी राशिभर दी है। तुम इस संसारमें प्रेमकी मोहिनी प्रतिमा हो।

विजया हँसकर बोली—"तो क्या आप मुझे वास्तवमें प्यार करते हैं।"

देवदत्त—क्या करूँ? बिना किये काम भी नहीं बनता।

विजया—इसमें लाचारीकी कौनसी बात है? मैं आपके पीछे

तो नहीं पड़ती कि, आप मुझे ज़बर्दस्तीही प्यार किया करें।

देवदत्त—सबके सामने पीछे नहीं पड़ती, तो इससे क्या? छिपे-छिपे तो पीछे पड़तीही हो। तुम्हारे मनमें इतना ज़बर्दस्त आकर्षण है कि, फन्देमें फँसा हुआ शिकार किसी तरह रक्षा पाही नहीं सकता।

विजया—मनचोर! बिना ऐसा किये काम भी नहीं चलता। आप केवल मुझे ही तो प्यार नहीं करते? आप मेरे सिवा राज-कार्य्य, मृगया, देश-भ्रमण, युद्ध-यात्रा और प्रजा-पालन आदि कितनीही सौतोंको भी तो प्यार करते हैं। मेरे तो एकमात्र आपही हैं। यदि आपको हर समय अपनी ओर न खींचती रहूँ, तो काम कैसे चले?

देवदत्त—प्रिये! यदि ऐसा है, तो तुम्हें अपनी इन सौतोंके प्रति डाह भी होता होगा। बताओ, तुम्हारी वह डाह मेरे द्वारा कैसे शान्त हो सकेगी?

विजया—डाह मैं क्यों करूँगी प्रियतम? यदि आप उनके सामने मुझे न चाहते होते, तो डाह करनेका मौका मिल सकता था। अब तो आप मुझे उनसे भी अधिक प्यार करते हैं। आप जैसे देवोपम पतिकी पत्नी होकर तो मैंने इन्द्राणीके जैसा सौभाग्य प्राप्त किया है। फिर मैं क्यों तो मान करूँगी और क्यों अभिमान! डाह तो नरकात्माएँ किया करती हैं।

देवदत्त—सति! इसीका नाम प्रेम है। प्रेम निःस्वार्थ होता है। निःस्वार्थ प्रेममें मान या अभिमानको स्थान प्राप्त नहीं है। जिसमें

अभिमान रहता है, उसका नाम मोह है। मोह अति तुच्छ है।

विजया—प्राणेश्वर! आप तो मेरे प्रेममय देवता हैं। आपके हृदयमें विशुद्ध प्रेमकी खान है। वह प्रेम निःस्वार्थ है। निःस्वार्थ प्रेमका परिणाम अभिमान नहीं है। क्यों ठीक है न?

देवदत्त—मान लो ठीक है। ठीक होनेपर क्या होगा?

विजया—इच्छानुसार कार्य्य करूँगी। मेरे प्रति आपका जो प्रेम है, वह तो निःस्वार्थ प्रेम है। उस प्रेममें न तो अभिमान है, न हिंसा है और न ईर्षा। यदि ऐसा है, तो मैं निश्चिन्त हुई। अब मुझे तनिक भी डर नहीं।

देवदत्त—क्यों?

विजया—मनके आनन्दमें स्वेच्छाहारिणी हो जाऊँगी। फिर आप मुझसे कुछ थोड़े ही कह सकते हैं? देखूँगी कि, आपके मनमें अभिमान पैदा होता है या नही?

देवदत्त—तब यों क्यों न कहो कि, मेरे इस सामान्य प्रेमसे तुम्हारी समुद्र ग्रासिनी मोह-पिपासा शान्त नहीं होती।

विजया—क्यों, होती क्यों नही? आपका प्रेम यदि निःस्वार्थ है, तो मेरा प्रेम समुद्र-ग्रासिनी मोह-पिपासा क्यों हुआ? ज्योतिर्मय सूर्य्यदेवके सामने अन्धकारकी छाया कहीं छिपी रह सकती है?

देवदत्त—सच्ची बात कहूँ, सुनोगी?

विजया—कहिये।

देवदत्त—युवावस्थामें पति-पत्नीके मनमे पहले निःस्वार्थ

प्रेमका सञ्चार नहीं होता। पहले रूपात्मक प्रेम उत्पन्न होता है। उस मोह से क्रमशः प्रेमका संचार होता है। तुम निःस्वार्थ प्रेम हृदयमें धारणकर, संसारको प्यार करो, उसमें कुछ भी पाप नहीं है। दृष्टान्तके लिये एक बात पूछता हूँ। जब तुम सन्तानवती होगी, तब अपनी सन्तानको प्रेम करोगी या नहीं? यदि करोगी, तो मैं उसे देखकर क्यों जलूँगा? तुम अपने भाई और पितासे प्रेम करती हो, उसे देखकर मेरे मनमें क्या हिंसा पैदा होगी? कभी नहीं। इसका कारण? कारण यह है कि, वह स्व-विशुद्ध प्रेम है, रूप-जनित मोह नहीं है। तुम किसी रूपवान् परपुरुषको क्या पुत्र-भाव, पितृ-भाव और भ्रातृ-भावसे प्यार कर सकती हो? यदि कर सकती हो, तो मेरे मनमें अभिमानका भाव भी पैदा न होगा। किन्तु ऐसा होता नहीं। कारण यह कि, वह सच्चा प्रेम नहीं कहा जाता। वह इन्द्रिय-भोग-लालसासे पैदा हुआ मोह है।

विजया—दोहाई महाराजकी। आप अपने इस प्रेमके न्याय-शास्त्रको उठा रखिये। मैं जैसा प्रेम करती हूँ, वैसाही निरन्तर करती रहूँगी। मैं उससे अच्छा भी प्रेम नहीं चाहती और न बुराही। कृपाकर आप मेरे सुख-स्वप्नको नष्ट न करें।

देवदत्त—तब तुम क्या चाहती हो? भविष्यमें प्रेमपर शास्त्रार्थ भी न करोगी?

विजया—तो क्या गाली-गलौज या मार-पीटपर शास्त्रार्थ हुआ करेगा?

देवदत्त—गार्हस्थ्य-धर्मपर वार्त्तालाप किया करो।

विजया—आर्य्यपुत्र! खूब याद आया! आपके द्वारा मेरी समस्त इच्छाएं पूर्ण होचुकी हैं। केवल एक इच्छा मनमें छिपा रखी है। वह है गार्हस्थ्य-धर्म विषयक। मैंने एकान्तमें बैठकर, मनही मन जैसे गृहस्थका चित्र अङ्कित किया है, यदि आप उसे सजा दें, तो आपका गुण मैं कभी न भूलूंगी।

देवदत्त—मुझे समझाओ। मैं प्राण-प्रणसे उसे सजादूंगा।

विजया—प्रेममय! कृपाकर मेरे लिये प्रेमकी गृहस्थी सजा दीजिये। उस गृहस्थीमे विरहका शोक-ताप न होना चाहिये। अदर्शनकी हा-हताश न होनी चाहिये। अभिमानका दारिद्र्य न होना चाहिये। वरन् दिन-रात मिलनके अतुल ऐश्वर्य्यसे ऐश्वर्य्य-शालिनी हो, राजरानियोंकी तरह मैं आपके साथ सारा जीवन आनन्द और शान्तिके साथ काट सकूं।

देवदत्त—सति! ऐसी गृहस्थी तो तुम अपने आप सजा सकती हो। सहायतार्थ जो काम लेना चाहो, मुझसे लो।

विजया—यदि ऐसा है, तो आइये; इस हिंसा-द्वेषमय संसारको त्याग दें, इन असार राज्य-सम्पत्तियोंका परित्याग कर दें। आइये नाथ! दोनों जने इस नव यौवनमें, योगी और योगिनी बनकर, निर्जन शान्तिमय तपोवनमें कबूतर और कबूतरीकी भाँति समस्त जीवन परम सुखसे व्यतीत करें। क्योंकि, इस संसारमें केवल विरह, विछोह, शोक, ताप और रोदनही भरा हुआ है।

देवदत्त—विजये ! सति ! आज तुमने मेरे जीवनकी गुप्तसाधनामें सिद्धि-दान कर दिया। मेरे पिता राजर्षि विश्वामित्रने जिस दिनसे मुझे युवराज बनाकर गृहस्थाश्रम त्यागा, जिस दिनसे अपने छोटे भाई मधुच्छन्दकी हताश-कुटिल मूर्तिको देखा, उसी दिनसे मेरी राज्य-भोगनेकी लालसा जाती रही। मेरी इच्छा, सारा राज-पाट त्यागकर, इस अन्तःपुरोद्यानमें चिर जीवनके लिये कोई अच्छासा निवासस्थान स्थिरकर तुम्हारे साथ परमानन्दपूर्वक दिन व्यतीत करनेकी है ! सति ! क्या तुम राज-भोग-विलासकी लालसा त्याग कर सकोगी ?

विजया—महाराज ! उत्तम सम्पत्तियाँ पानेपर क्या कोई सामान्य सम्पत्तियोंकी इच्छा कर सकता है ? आपने अपने प्रेममय हृदयमें मुझे स्थान दिया है; यही मेरा आनन्दमय महाराज्य है ! मैं उसी राज्यकी ईश्वरी हूँ। फिर मेरी इस असार राज्यमें क्यों लालसा रहेगी ? आइये नाथ ! इस विशाल महाराज्यको किसी ब्राह्मणको दान करदें।

देवदत्त—विजये ! श्रेष्ठ ब्राह्मण कभी क्षत्रियका दिया राज्य ग्रहण न करेंगे। मैंने एक और उपाय स्थिर किया है। और वह उपाय यह है कि, हम दो भाई हैं। मैं ज्येष्ठ हूं, छोटा मधुच्छन्द है। मैं पिता राजर्षि विश्वामित्रका औरसजात पुत्र नहीं हूँ। मैं ब्राह्मण कुमार हूँ। पिता विश्वामित्रका भान्जा हूँ। मेरा पहला नाम शुनःशेफ है। महाराज अम्बरीषने मुझे यज्ञके लिये पिता ऋचीकसे ख़रीद लिया था। राजर्षि विश्वामित्रने मेरा वहाँ-

से तपोबल द्वारा उद्धार किया और तबसे मुझे अपना बड़ा लड़का करके माना। संसार त्याग करते समय उन्होंने अपनी सम्पत्तिके दो विभाग किये। एक विभाग, यह कौशिकका राज्य हुआ और दूसरा अंश उनकी तपोबल द्वारा प्राप्त कामधेनु। मधुच्छन्द आलस्य स्वभावका है, उसने अनायास लभ्य सम्पत्तिक आशासे कामधेनुको ले लिया, किन्तु अब उसके मनमें हिंसा प्रवेश कर गयी है। इसी लिये कामधेनुकी गुण महिमा कम हो गयी। मेरे हाथोंसे—पिताकी कृपासे—कौशिकराज्य सुशासित और शान्तिमय है। यह देख मधुच्छन्दके मनमें राज्य-लोभ समा गया है और आजकल मुझे कौशलसे राज्य-च्युत करनेका षड्यन्त्र कर रहा है। अतः मेरी इच्छा है, कि कनिष्ट मधुच्छन्दके हाथोंमें राज्य दे, बदलेमें कामधेनु ले लूँ। मेरा विचार है कि, कामधेनु लेकर मैं किसी सुयोग्य ब्राह्मणको दूँगा। ऐसा होनेसे उस ब्राह्मणके तपोबल द्वारा कामधेनु फिर फलवती हो जायेगी और मेरा राज्य-दान भी सफल हो जायेगा।

विजया—आश्चर्य! देवर मधुच्छन्दके मनमें इतनी कपटता और इतनी भ्रातृ-हिंसा भरी हुई है; इसका तो मुझे कभी स्वप्नमें भी अनुमान न हुआ था। वह तो सदा हँस हँसकर बोलता रहा—सदा मीठी-मीठी बातें करता रहा है। हाय रे कुटिल संसार! क्या मनका पाप ढकनेके लिये इतनी अधिक पापमयी कपटता की आवश्यकता होती है?

देवदत्त—सरले! तुम सरलताकी प्रतिमा हो। कपटताके चित्रको तुम कैसे पहचानोगी?

विजया—तब तो महाराज! मैंने अत्यन्त उत्तम सङ्कल्प स्थिर किया है। चलिये, अब इस संसारमें अधिक रहनेकी आवश्यकता नहीं है।



दिव्यादेश।

५

रात्रिका सुखमय समय था। सर्वत्र निस्तब्धता थी। सर्वत्र शान्तिका राज्य था। पशु-पक्षी और जन-मानव सभी विश्रामनिद्रामें सो रहे थे। किसीको इस बातका पता नहीं था कि, कहाँ क्या हो रहा है; किन्तु महाराज देवदत्त और महारानी विजया इस समय भी अनालस्य भावसे जाग रहे थे। उनके मुखपर स्वाभाविक शान्तिकी आभा, नेत्रोंमें स्वर्गीय ज्योति और ओष्ठाधरोंपर मन-मोहिनी मुस्कान थी। दोनों अध्यात्म-विचार द्वारा सच्चे सुखकी मीमांसा कर रहे थे। भगवान्‌की अचिन्तनीय लीलाओंका कीर्तन कर रहे थे कि, सहसा उनका शयन-कक्ष एक मधुर प्रकाशसे भर गया। उस प्रकाशकी कान्तिसे नेत्र झँपते थे। तेज दृष्टि भी कुण्ठित थी; किन्तु महाराज और महारानीने आसानीसे देख लिया कि, उस प्रकाशके मध्य भागमें, एक-सुन्दर सिंहासनपर, चार सुरलोक-वासिनी अप्सराएँ विराजमान हैं। एकके हाथमें वीणा, एकके हाथमें मृदंग, एकके हाथमें



दिव्य प्रकाशमें अप्सराएं ।

'महाराजने उन सबके पृथ्वीपर उतर आनेपर पूछा—" तुम लोग कौन

[पृष्ठ ४१]

बाँसुरी और एक मधुर-कोमल कण्ठसे स्वर्गीय संगीतका गान कर रही है।

महाराजने उन सबके पृथ्वीपर उतर आनेपर पूछा—"तुम लोग कौन हो?"

एक अप्सराने कहा—"सुरलोक वासिनी अप्सराएं।"

देवदत्त—तुमलोगोंका नाम क्या है?

अप्सरा—रूपमयी, गुणमयी, प्रेममयी और सुखमयी।

देवदत्त—वाह! रूप, गुण, प्रेम और सुखका अच्छा सम्मेलन है। तुम लोग तो सुरबाला हो, इस लोकमें क्यों आयीं?

अप्सराएं—प्रेमिकका मनोविनोद करने और प्रेमिकाकी सेवा करने।

देवदत्त—कौनसे प्रेमिक-प्रेमिका? वे कहाँ हैं?

अप्सराएं—आप दोनों।

विजया—स्वर्गकी देवियाँ मर्त्यलोकवासी मानवोंकी सेवा करने क्यों आयीं?

अप्सराएं—जो सच्चे प्रेमिक और प्रेमिकाएं हैं, वे देवदेवी हैं, साधारण नरनारी नहीं हैं।

देवदत्त—हमें यह गौरव किस पुण्यबलसे प्राप्त हुआ?

अप्सरा—आपके पुण्य, आपके प्रेम और राजर्षि विश्वामित्रके तपोबलसे।

विजया—मालूम होता है, तुम लोग प्रेमके तत्वको भले प्रकारसे जानती हो?

अप्सरायें—प्रेम तो हमारी जीविका है।

देवदत्त—अच्छा विजया! तुम इन्हें अपने अन्तःपुरमें ले जाओ; विश्रामादिकी अच्छी व्यवस्था करा देना। देखना, इनके सत्कारमें किसी प्रकारकी त्रुटि न हो।

विजया अप्सराओंको लेकर उद्यान-गृहकी ओर चल दी। महाराजको अपनी पुण्यवती पत्नीके चले जानेपर तन्द्राने आघेरा। कुछ देर बाद उन्होंने अस्फुट स्वरमें कहना आरम्भ किया कि, यद्यपि पिताके तपोबल-प्रतापसे आज मैं समस्त देव-सम्पत्तियोंका अधिकारी हूँ, किन्तु विजयाके रूपमय गुणोंके सामने ये देव-सम्पत्तियाँ कोई चीज़ नहीं। उसका रूप गुणमय है, उसका हृदय प्रेमभरा है और प्रेमभरा हृदय है। यही मेरी नित्यस्थायी सम्पत्तियाँ हैं। मैं इन अपनी समस्त पार्थिव सम्पत्तियोंका विनिमयकर जीवनभर उन अक्षय सम्पत्तियोंका उपभोग करूँगा। छोटे भाई मधुच्छन्दको राज्य देकर उसके बदलेमें कामधेनु लूँगा और कामधेनुको किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणको देकर निर्जन शान्तिमय तपोवनमें प्रेममयी देवी विजयाके साथ सुखसे जीवन व्यतीत करूँगा। शान्ति-भोग मानव-जीवनका उद्देश्य है। यद्यपि संसाराश्रम शान्तिका प्रशस्त क्षेत्र है, किन्तु जब मैंने संसार सर्वस्वरूपिणी मूर्तिमती शान्ति विजयाको पा लिया है, तब अधिक संसार-निवासकी क्या आवश्यकता है?

इस प्रकार बर्राते-बर्राते महाराजने एक स्वप्न भी देखा। उस स्वप्नमें उनके पिता राजर्षि विश्वामित्र देख पड़े। उन्होंने

आशीर्वाद देकर कहा—"प्रियतम पुत्र! मैं इस समय तुम्हारे जीवनके एक विषम सन्धि-स्थलमें उपस्थित हुआ हूँ। तुम्हारे जीवनके वर्त्तमान मुहूर्त्तमें मेरे उपदेश अत्यन्त आवश्यक हैं। अच्छा लो, मेरे कमण्डलुसे दो अञ्जलि जल-पान करो। ऐसा करनेसे तुम्हारी पूर्वस्मृति जाग्रत हो उठेगी।"

इतना कहकर उन्होंने अपने पवित्र कमण्डलुसे देवदत्तकी अञ्जलिमें थोड़ासा जल दिया। देवदत्तने उसे अत्यन्त श्रद्धाके साथ ग्रहणकर अपने मस्तकपर छिड़का। जल द्वारा अभिषिक्त होतेही देवदत्तको अपने पूर्व शरीरका स्मरण हो आया।

विश्वामित्र बोले—"वत्स! अब तुम्हारी पूर्व स्मृति भले प्रकारसे जागरित हो चुकी है। अब मेरा संक्षिप्त उपदेश एकाग्र मनसे श्रवण करो।

"देखो, तुम ब्राह्मण—तापस-कुमार हो। मेरे भाञ्जे हो। तुम्हारे पिताका नाम महर्षि ऋचीक है। मैंने तुम्हें महाराज अम्बरीषके यज्ञमें खरीदकर पुत्र रूपसे पाला था एवं अबतक मैंने तपोबलसे तुम्हारे पूर्व ब्राह्मण-जीवनको सुप्तकर क्षत्रिय-जीवनको जाग्रत कर रखा था। क्षत्रिय और ब्राह्मण-दोनों वर्णोंकी शान्तिका आधार तुम्हारे सामने विराजित था। एक आधार मेरा सुविस्तीर्ण कौशिक राज्य और दूसरा आधार ब्रह्म-विद्या रूपिणी तुम्हारी स्त्री श्रीमती विजया। वत्स! जिस तरह मैं दुःसाध्य कर्मयोग द्वारा वर्णधर्मके प्रभावको न जीत सका, उसी प्रकार तुमभी वर्ण-धर्मके प्रभावसे, ब्रह्मविद्या विजयाके सहवा-

समें रहकर क्षत्रियत्वकी ओर आकर्षित नहीं हो सके। वरन् इस समय ब्रह्मण्य-धर्मका आश्रय लेनेके लिये तैयार हो गये हो। यही कारण है कि, तुम किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणको राज्य द्वारा खरीदी गयी, कामधेनु दानकर निर्जन तपोवन-वासी होना चाहते हो! क्यों पुत्र! मेरी बात सत्य है या नहीं?

देवदत्त—हाँ पिता! पूर्ण सत्य है, किन्तु आपकी समझमें मेरे इस संकल्पमें किसी प्रकारका अधर्म तो नहीं है?

विश्वामित्र—नहीं पुत्र! कुछ भी अधर्म नहीं है। वर्णधर्मके प्रभावको जीतना दुःसाध्य है। तुम ब्राह्मण-कुमार हो, अतः तुम्हारा क्षत्रिय होना जिस प्रकार दुःसाध्य है, उसी प्रकार मुझ क्षत्रियका ब्राह्मण होना भी दुःसाध्य है। तुमने तपः प्रभावसे क्षत्रिय-जीवन लाभ करके भी ब्रह्मविद्याकी संगतिकर पुनः ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया है। अब तुम अपने कर्त्तव्य-धर्मका पालन करो।

देवदत्त—कौनसा कर्त्तव्य-धर्म?

विश्वामित्र—पहले तो तुम्हें अपना यह क्षत्रियशरीर त्यागना होगा। क्योंकि क्षत्रियशरीरमें ब्राह्मणदेव निवास नहीं कर सकते।

देवदत्त—यदि ऐसा है, तो किस उपायका अवलम्बनकर वर्त्तमान शरीर त्यागना होगा? क्या आत्म-हत्या द्वारा?

विश्वामित्र—आत्महत्या द्वारा नहीं। शत्रु द्वारा देहत्याग करना होगा।

देवदत्त—स्वेच्छासे शत्रु द्वारा देहत्याग करना भी तो आत्महत्या है।

विश्वामित्र—तुम्हें स्वेच्छासे शत्रु द्वारा देहत्याग न करना होगा। देहत्याग करते समय तुम्हें इस समयकी एक भी बात याद न रहेगी। तुम्हें एक अत्यन्त दुर्जन शत्रुके द्वारा देह-त्याग करना होगा। तुम्हारे इस देहदान से ब्रह्माके दो उद्देश्य सिद्ध होंगे। ब्रह्माका पहला उद्देश्य-गर्वित क्षत्रिय-कुल ध्वंस होना है। दूसरा उद्देश्य ब्रह्मविद्या विजयाको उत्तेजना मिलना है। क्योंकि उत्तेजिता ब्रह्मविद्यासे ब्राह्मण-द्वेषी अत्याचारी क्षत्रिय-कुल निर्मूल होगा।

देवदत्त—यदि मेरी वर्त्तमान स्मृतिका लोप करनाही ब्रह्माका उद्देश्य है, तो मुझे इस गूढ़ उद्देश्यके जनानेकी क्या ज़रूरत?

विश्वामित्र—मैंने स्नेह-वश होकरही तुम्हें यह रहस्य समझा दिया है। जब तुम ब्राह्मण-जीवनमें पूर्व स्मृति प्राप्त करोगे, तब सम्भव है, तुम विश्वामित्रके पुत्र-स्नेहपर व्यर्थ कलङ्क देने लगो, इसीसे यह रहस्य तुमपर प्रकट कर दिया है।

देवदत्त—पिता! मैं आपके जैसे महापुरुषके स्नेह-प्रसादसे चिर प्रसन्न हूँ; आपके तप-प्रभावसे मैं अजात शत्रु हूँ। फिर मेरा प्राणहन्ता शत्रु कौन होगा?

विश्वामित्र—तुम्हारा प्रधान शत्रु भ्राता मधुच्छन्द है। किन्तु वह कायर है; उसे अस्त्र-ग्रहण करनेका साहस न करेगा। अतः

मधुच्छन्दके सहयोगी, ऐश्वर्य्य-लोलुप, दुर्वृत्त कार्त्तवीर्य्यार्जुनके हाथसे तुम्हारी देह नष्ट होगी।

देवदत्त—पिता! आजकल सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण कौन है?

विश्वामित्र—नारायणावतार परशुरामके पिता, अग्नि-तुल्य तेजस्वी महर्षि जमदग्नि; वे तुम्हारे ब्राह्मण जीवनके ज्येष्ठ भ्राता हैं।

देवदत्त—तब मैं उन्हें ही कामधेनुका दान करूँगा।

विश्वामित्र—पुत्र! मैं तुम्हारे इस सङ्कल्पको सुनकर परम प्रसन्न हुआ। आशीर्वाद देता हूँ कि, तुम महापुरुषोंकी भाँति अपने कर्त्तव्योंका पालन करो। अब मैं तुम्हारे जीवनके अन्तिम मुहूर्त्तमें मिलूँगा। अच्छा बेटा! अब तुम इस समय हुई बातोंको एकदम भूल जाओ। मैं जाता हूँ।

इतना कहकर महातपा विश्वामित्र सहसा अन्तर्धान होगये। प्रकाश भी मिट गया। प्रकाशके लुप्त होतेही महाराजका स्वप्न भङ्ग होगया चारो ओर देखकर आश्चर्यसे बोले—"यह क्या? क्या मैं सोगया था? विजया कहाँ है? जाऊँ, उसके पास, उसका मधुच्छन्दके कुलच्छेदका आयोजन करूँ?"

जमदग्नि

६

भगवती जाह्नवीके तटपर, जहाँ पर्वतराज हिमालय अपनी गगन-चुम्बी चोटियोंसे उन्नत मस्तक किये खड़ा है, वहाँका दृश्य भारतके समस्त स्थानोंसे अद्भुत है। चारों ओर शस्य-श्यामल क्षेत्र, हिमालयकी चोटियोंको स्पर्श करनेका व्यर्थ प्रयास करनेवालीं, फल पुष्पोंके भारसे अवनता वृक्ष-श्रेणियाँ, मधुरस्वरसे पर्वतोंको गुंजारनेवाले झरने, कलकण्ठी पक्षी, स्नेहके आकर मृग और अत्यन्त भीरु उनके शावक—आदि ही वहाँकी सम्पद् है। यही वहाँका शोभा-शाली दृश्य है।

इस स्थानसे कुछ दूर, थोड़ेसे ऐसे स्थल हैं, जहाँ किसी समयमें आत्माएँ रहती थीं, जो परमात्म-साधन द्वारा उच्च जीवन-लाभकी चेष्टा किया करती थीं। ये आत्माएँ ऋषि-मुनिके नामसे प्रख्यात थीं। इनके रहनेके स्थान अत्यन्त शान्त, अत्यन्त पवित्र और अत्यन्त रमणीक थे। वृक्षच्छायाके नीचे, पत्र द्वारा निर्मित पर्णकुटीरें,—प्रत्येक कुटीरके सामने बने हुए हवन-कुण्ड और समाधिस्थल,—सब अपूर्व और विचित्र थे। एक स्थानपर गोशाला

बनी हुई थी, जिसमें नन्दा, मनोहरा, कपिला आदि ऋषियोंकी प्यारी गायें, प्रातः काल और सायंकाल को निर्भीक भावसे बैठकर जुगाल किया करती थीं। ऋषि-पत्नियाँ और ऋषि-कन्याएँ सुवाको तृण-निर्मित चङ्गेरियाँ हाथोंमें लेकर पुष्प-वृक्षोंसे देव-पूजार्थ फूल चुनने आया करती थीं और सायंकालको नये पौधोंमें जल सींचा करती थीं। उस समयका दृश्य अपूर्व होता था। मानो नन्दन काननमें देवबालाएँ विचरण कर रही हैं।

इस स्थलका नाम उस समय सरस्वती-आश्रम था। इसके अधिष्ठाता थे, महात्मा और महातेजस्वी ब्रह्मर्षि जमदग्नि। जमदग्नि विद्या, ज्ञान और तेजस्वितामें अद्वितीय थे। उनके द्वारा नित्य प्रायः एक हजार अतिथियोंका सत्कार होता था और पाँच हज़ार विद्यार्थी उनके द्वारा विद्या-लाभ करते थे।

उनकी रेणुका नामकी एक आदर्श पत्नी थीं। वे जैसी रूपवती थीं, वैसीही विद्यावती और गुणवती थीं। उनका सच्चा पातिव्रत, दिनमें दशों दिशाओंको अपनी प्रखर किरणोंसे प्रकाशित करनेवाले सूर्य्यकी भाँति सदा उज्ज्वल रहता था। वाणीमें मधुरता, व्यवहारमें लज्जा और आश्रम-वासियोंके प्रति उनका असीम अनुराग था। तपोवनकी सारी स्त्रियाँ उनका पूजनीया देवीकी भाँति आदर करती थीं। उनके प्रतापसे आश्रमका प्रत्येक कार्य्य सुव्यवस्थासे सम्पादित होता था। तपस्वी-मुनि लोग उनके व्यावहारिक कार्य्योंको देखकर कहा करते थे कि, रेणुका, साक्षात् सरस्वतीका अवतार है। लुप्तप्राय ब्रह्म-

परशुराम

विद्याका उद्धार करनेके लिये ही उन्होंने जमदग्निका पत्नीत्व स्वीकार किया है।

जमदग्निके रुमण्वान्, सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम नामके पाँच पुत्र थे। ये पाँचों पुत्र अत्यन्त विद्वान्, अत्यन्त रूपवान् और अत्यन्त बलवान् थे। उनमें परशुराम अद्भुतकर्मा थे। उनके विद्या, रूप और बलकी कहीं समता न थी। महर्षिने उन्हें आचार्य्य शुक्रसे चौदह विद्याओंका निधान बनवा दिया था। सती सरस्वतीने स्वयं आश्रममें उपस्थित होकर उन्हें विद्या-दान दिया था। इस प्रकार पञ्चदेवोंकी भाँति पाँच सुपुत्रोंको पाकर महर्षि जमदग्नि अपनेको परम धन्य समझते थे। इन पुत्रोंके भरोसे वे महीनेके तीसों दिन निर्द्वन्द्व और निश्चिन्त रहकर परम सुखसे जीवन व्यतीत करते थे।

एक समय महर्षि जमदग्निके पिता, महात्मा ऋचीक और उनकी पत्नी सत्यवतीने ब्राह्मण्य-धर्मका पुनरुत्थान करानेके लिये भगवान् विष्णुसे प्रार्थना की थी कि, वे उनको एक ऐसा पुत्र दें, जो संसारमें अजेय, अविनाशी और अमर होकर ब्राह्मण-कुलकी श्रेष्ठताका विस्तार करे। भगवान्ने अपने महाभक्तकी इच्छा-पूर्तिके लिये दम्पतिको वचन दिया कि, तुम्हारे पुत्र महा तपस्वी, जमदग्निके पुण्य-गृहमें, मैंही परशुराम नामसे जन्म ग्रहणपूर्वक तुम्हारी इच्छा-पूर्ति करूँगा। महर्षि ऋचीक अपने पुत्र जमदग्निको इस शुभ संवादकी सूचना देकर पत्नी-समेत योग निद्रामें लीन हो गये।

इसके बाद महर्षि जमदग्निके एक एक करके क्रमशः पाँच पुत्र हुए कि, जिनका जिक्र हम ऊपर कर आये हैं।

* * * * *

पुत्रोंके समर्थ हो जानेपर, महातपा जमदग्निने एकबार सर्व-पार्थिक सम्पद् दायिनी भगवति कामधेनुको प्राप्त करनेकी कामनासे भगवान् शिवकी आराधना की। जिस समय अनुष्ठान पूरा हो गया, भगवान् शिवकी प्रेरणा पाकर राजर्षि विश्वामित्र उनकी आराधना-सिद्धिका संवाद देनेके लिये महर्षिके समीप आये और जमदग्निसे बोले—"वत्स! तुम्हारी साधना पूर्ण हो गयी। भगवान् शिवकी कृपासे अपना मनोरथ अब सिद्ध हुआ समझो। तुम मुझे पहचान गये न?"

महर्षि जमदग्निने प्रणामकर कहा—"महात्मन्! त्रिभुवन भरमें ऐसा कौन मनुष्य है, जो महात्मा, राजर्षि विश्वामित्रको नहीं पहचानता? आज आपका पदार्पण होनेसे मेरा आश्रम परम पवित्र हो गया है।"

विश्वामित्र—वत्स! भगवान् शिव तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हैं। उन्होंने मेरे द्वारा तुम्हारे पास यह संवाद भेजा है कि, कौशिक-राज्यके वर्त्तमान महाराज देवदत्तके द्वारा तुम्हे कल प्रातःकाल सर्वार्थ-साधिका कामधेनु प्राप्त होजायेगी। कौशिक राज्यके वर्त्तमान महाराज देवदत्त, अपने भाई मधुच्छन्दसे राज्य विनिमयमें कामधेनु प्राप्त कर, तुम्हें उसे संकल्प पूर्वक प्रदान करेंगे।

भावको प्रणाम किया। अनन्तर वे राजर्षि विश्वामित्रको बड़े सम्मानके साथ अपनी कुटीमें ले गये।

वहाँ जाकर सस्त्रीक जमदग्निने मातुल विश्वामित्रका विधिवत् सत्कार किया। सत्कारके अनन्तर कितनेही सामयिक विषयोंपर बात-चीत हुई। प्रसंगमेंही महाराज अम्बरीषके यज्ञका भी ज़िक्र छिड़ गया। बीचमें शुनःशेफके उद्धारकी भी बात आयी। शुनःशेफका नाम सुनतेही महर्षिने पूछा—"महाराज! बहुत दिनोंसे भाई शुनःशेफका संवाद नहीं मिला। कृपाकर बताइये तो, वह आजकल कहाँ और कैसा है?"

विश्वामित्र—वत्स! शुनःशेफ तो आजकल मेरेही पास है। अब उसको मैंने पुत्र रूपमें ग्रहीत और देवदत्त नामकरण पूर्वक अपने परित्यक्त कौशिक-राज्यपर अभिषिक्त किया है। अपनी तपोलब्धा-ब्रह्मविद्या-रूपिणी विजयाको उसके साथ विवाहकर रानी बनाकर आ रहा हूँ। विजयाकी सुहबतसे देवदत्तको संसारसे वैराग्य होगया है। मैं भी उसे ज़ियादः दिन क्षत्रिय बनाये रखना नहीं चाहता। वह फिर ब्राह्मणत्व प्राप्त करे—फिर ब्राह्मण-देह धारण करे—यही मेरी इच्छा है। कल प्रातःकाल जो तुम्हें कामधेनुका लाभ होनेवाला है, उसके दाता महाराज देवदत्त या तुम्हारे छोटे भाई शुनःशेफही होंगे। कामधेनुसे पूर्ण हुआ वाञ्छित फल, योग-पवित्र पुरुषके सिवा और कोई नहीं भोग सकता। अतएव अबसे मेरी तपस्याके तुम उत्तराधिकारी हुए।

जमदग्नि हाथ जोड़कर बोले—"महानुभाव! आपके स्नेहकी अनुकम्पासे मैं कृतार्थ होगया।"

विश्वामित्र—बेटा! तुम्हारे लिये मनुष्यका स्नेह, मनुष्यकी प्रसन्नता अत्यन्त तुच्छ बात है। आज तुम्हारी गौरव महिमाके आगे देवतालोग तक पराजित हैं। क्योंकि स्वयं श्री भगवान् हरि. तुम्हारे गृहमें परशुराम नामसे अवतीर्ण हो, तुम्हें पिता कहकर पुकारा करते हैं। अतः तुम सर्वथा धन्य हो। तुम्हारा मानव-शरीर-धारण सफल होगया।

जमदग्निने लज्जासे नीचा सिर करते हुए कहा—"मातुल! जिस धनसे मैं धन्य हुआ हूँ, उस धनपर क्या आपका अधिकार नहीं है? मैंने क्या केवल अपनेही पुण्यबलसे नारायण रूपी पुत्र-रत्नको प्राप्त किया है? मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि, आपके ब्राह्मण-धर्मका पुनरुद्धार करनेके लिये, ब्राह्मणत्व पानेका प्रयत्न करनेके कारण ही, सिद्धी रूपी ब्रह्मण्यदेव आपके ही पवित्र-शोणित-सम्भूत ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुए हैं। आपके और मेरे दोनोंकेही पुण्य-बलसे ऐसे पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हुई है।

विश्वामित्र—अच्छा वत्स! तुम्हारे सुपुत्र परशुराम कुशल-पूर्वक हैं न? वे यथारीति विद्याध्ययन कर रहे हैं न?

जमदग्नि—महाराज! प्रतिभा अध्ययनकी अपेक्षा नहीं करती। सुनने, देखने और अनुमान करने मात्रसेही मानो सारे शास्त्र उनके ज्ञान-भाण्डारमें समा जाते हैं। गङ्गा-स्वरूपिणी विद्या इस समय मानों सहस्र धारासे उनके ज्ञान-महासागरमें जाकर गिर रही

है, और फिर जिनकी लक्ष्मी और सरस्वती दासी हैं, उनके विद्याध्ययनकी बात आप क्या पूछते हैं ?

विश्वामित्र—तथापि आजकल वे कौनसे शास्त्रको पढ रहे हैं ?

जमदग्नि—बहुत दिन पहले, बारह वर्षकी उम्रमेंही, उनका समस्त शास्त्रोंका अध्ययन सम्पूर्ण हो चुका था। आजकल वे अपनी माताके इच्छानुसार धनुर्वेद-शास्त्रका अभ्यास कर रहे हैं। साथ ही वे किसी अच्छे गुरुकी खोजमें भी हैं; किन्तु मैं देखता हूँ, वे धनुर्वेदके इतने पारगामी पण्डित हो गये हैं कि, अब उन्हें कोई इस विद्याकी अधिक शिक्षा नहीं दे सकता।

विश्वामित्र—अच्छा वत्स! अब मैं जाना चाहता हूँ। तुम भी अपने काममें लगो। कल प्रातःकाल तुम हिमालयके समीपवर्त्ती अश्वत्थ वृक्षके नीचे, अपनी वाञ्छित कामधेनुको विचरण करते देखोगे। उसे यत्नके साथ ले आना और अपना सर्वश्रेष्ठ सारधर्म समझकर उसकी तन-मनसे सेवा करना। उसका नाम रखना, नन्दा। उस नन्दा कामधेनुसे तुम्हें समस्त साधनाओंकी सिद्धि प्राप्त होगी।

इतना कहकर विश्वामित्र वहाँसे चले गये। इधर जमदग्नि भी अपनी तपस्या-पूर्त्तिका शुभ संवाद, भगवती रेणुकाको देनेके लिये भीतर गये।

भीषण हत्या ।

७

जिस दिन महाराज देवदत्तने, अपने मनमें राज्य-त्यागपूर्वक एकान्त-सेवनका विचार किया, उसके अगले दिन ही, मधुच्छन्द अपनी कामधेनुके साथ महाराज देवदत्तसे भेंट करने आया। देवदत्तने उसे कई रोज़तक आदर और स्नेहके साथ रखा। एक दिन उन्होंने मधुच्छन्दको पास बुलाकर आदर-सहित कहा—"प्रिय भाई! भगवान्‌की कृपासे मुझे और तुम्हारी भावी विजयाको संसार-विरक्ति हो गयी है। अब हम लोग इस राज़पाटको योग्य हाथोंमें समर्पितकर एकान्त-जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। क्या तुम इस भारको ग्रहण कर सकते हो? यदि तुम इस भारको ग्रहण कर लो, तो मुझे बड़ा सन्तोष हो। क्योंकि, तुम इसके योग्य अधिकारी हो। मैं बदलेमें तुमसे कोई बड़ी वस्तु न लूँगा। सुना है, आजकल कामधेनुका पालन-पोषण तुम्हारे लिये असह्य है। जो गुण उसमें था, वह अब ह्रास हो गया है। तुम मुझे कामधेनु दो

है देना। मैं उसे किसी योग्य तपस्वी ब्राह्मणको दान कर दूँगा। कहो, मेरा यह प्रस्ताव स्वीकार है?"

मधुच्छन्द देवदत्तके उक्त अभिलाषको सुनकर मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह तो यह चाहता ही था कि, किसी तरह देवदत्त गद्दीसे उतर जाये और मैं कौशिक-राज बनूँ। यहाँ तक कि, अपनी इस अभिसन्धिको चरितार्थ करनेके लिये वह नीचसे नीच कमतक करनेके लिये तैयार था। प्रत्यक्षमें तो उसकी इतनी हिम्मत पड़ती न थी कि, वह देवदत्तसे राज्य माँगे; क्योंकि पिता द्वारा किये सम्पत्तिके विभाजनोंमेंसे, अपना भाग लेते समय उसने स्वेच्छासे कामधेनुको ही चुना था। कामधेनु इच्छित वस्तु देनेवाली थी। उसने सोचा था, मैं इसके द्वारा मनमाने भोग प्रस्तुतकर उनका सानन्द उपभोग करूँगा। राज्यमें तो सत्रह सतहके भय हैं। हरदम प्राण विपत्तिमें फँसे रहते हैं। किन्तु उसे यह मालूम न था कि, कामधेनुमें वाञ्छित फल देनेकी शक्ति तभीतक रहती है, जबतक उसका पालन करनेवाला क्रियावान् बना रहता है। जहाँ पालक क्रिया-भ्रष्ट हुआ कि, वह उसे काम्य वस्तु देनेमें कुण्ठित हो जाती है। मधुच्छन्दने पहले तो आलस्य स्वभाववश, राज-सिंहासनकी उपेक्षाकर कामधेनु ले ली; पर अब उससे अपनी इच्छित वस्तुकी प्रार्थना की, तब कामधेनु उसकी क्रिया-हीनताको देखकर इच्छापूर्त्ति करनेमें कुण्ठित हुई। "फिर पछताये होत का, जब चिड़िया चुग गयीं खेत?"—राज्यका विभाग हो चुका था, देवदत्त कौशिक-राज्यके राजा बन चुके

थे। पिता विश्वामित्रने संन्यास-ग्रहण पूर्वक वन-वास करना आरम्भ कर दिया था। अब वह किस मुँहसे पिताके पास जाये और कहे कि, मैं कामधेनु नहीं चाहता, कौशिक-राज-सिंहासन चाहता हूं। अतः उसने भाई देवदत्तके पास आकर अपना अभिलाष प्रकट करनेकी ठहरायी। किन्तु देवदत्तका भी क्या विश्वास कि, वे इस व्यर्थकामा कामधेनुके बदलेमें राज्य देनेके लिये तत्पर होजायेंगे। तब क्या उनसे युद्धकर राज्य छीनूँ? नहीं, यह भी नहीं हो सकता। देवदत्त अजेय पराक्रमी हैं। उनसे युद्ध कर राजपाट छीनलेना अति दुष्कर है।

अब इच्छा-पूर्त्ति कैसे हो? इस बातपर कई दिन तक विचार-वितर्क कर उसने निश्चय किया कि, जाऊँ महापराक्रमी, ऐश्वर्य्य-मत्त, भारत-सम्राट्, महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुनकी सहायता प्राप्तकर, कौशलसे कौशिकराज्य प्राप्त करूँ। उनके मनमें, छलसे कौशिकराज्यकी स्वाधीनता नष्ट कर, उसे अधीन राज्य बना देनेका लोभ उत्पन्न करके, देवदत्तको सदा-सर्वदाके लिये इसलोकसे विदा करा, निष्कण्टक राज्य भोगूँगा।

वह पहले महिष्मतीके प्रधान सेनापति धूमकेतुसे मिला और उससे अपने मनकी बात कही। धूमकेतु उसे महाराज कार्त्तवीर्य्यके पास ले गया। वहाँ उन लोगोंमें क्या-क्या परामर्श हुए, सो सब हम पिछले अध्यायमें कह आये हैं।

पूर्वकृत निश्चयके अनुसार मधुच्छन्द उसदिन, देवदत्तका मानसिक अभिप्राय जाननेके लिये आया था। देवदत्त राजी-ख़ुशी,

विना कहे-सुने उसे अपना सारा राज्य समर्पित कर देगा, इसका उसे स्वप्नमें भी विश्वास नहीं था। अतः मधुच्छन्द मनही-मन प्रसन्न होता हुआ, बोला—"भाई साहब! आप जानतेही हैं कि, राज्य-सम्पदायें महा विपत्तिकी जड़ हैं। उनमें फँसा हुआ आदमी; सदा-सर्वदाके लिये उन्हींका हो रहता है। उस समय उसके सारे धर्म-कर्म नष्ट हो जाते हैं। मैंने यही सब सोच-विचारकर पितासे कामधेनुकी याचना की थी। अब आप यदि मुझे अपना भार सौंपना चाहते हैं, तो मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य करनेके लिये सहर्ष तैयार हूँ। क्योंकि, बड़ोंका आज्ञा-पालन करना छोटोंका परम कर्त्तव्य है।"

देवदत्तने उसीक्षण, विना कुछ कहे-सुने, अपने राज-मन्त्रियोंको बुलाकर सारा राज पाट मधुच्छन्दको सौंप दिया। मधुच्छन्दने भी वायदेके मुताबिक अपनी कामधेनु, ज्येष्ठभ्राता देवदत्तको देदी। देवदत्त उस कामधेनुको लेकर पत्नी-समेत, पिता विश्वामित्रके उपदेशानुसार जमदग्निके आश्रममें गये।

जमदग्निके आश्रममें पहुँचकर, सबके परोक्षमें, उन्होंने सङ्कल्प कामधेनुको, संकल्पकर हिमालयके समीपवर्त्ती अश्वत्थ वृक्षके नीचे छोड़ दिया। रात्रिभर स्वयं उसकी रक्षाकर, प्रातः काल होते ही वे अपने अन्तःपुरोद्यानमें लौट आये।

इधर यथा समय और यथा स्थानपर जमदग्निको कामधेनु की प्राप्ति हो गयी।

महाराज देवदत्त और महारानी विजया निश्चिन्त मनसे अपने अन्तःपुरोद्यानमें बैठे हुए थे। महाराजने कहा—"विजये! अब बताओ, तुम्हारी आशा पूर्ण होगयी न? राज्यके बदलेमें पायी हुई कामधेनु, श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान करदी गयी। राज-भवन और सारा राज-पाट त्यागकर हमने अब इस निर्जन अन्तःपुरोद्यानमें रहना आरम्भ करही दिया है। राज्यकी चिन्ता, और आत्म-चिन्ता आदि समस्त चिन्ताओंसे छुटकारा पाकर केवल तुम्हारे ही साथ निवास करना आरम्भ कर दिया है। अब बताओ विजये! तुम्हारी आशा पूर्ण होगयी या नहीं?"

विजया—जीवनके ईश्वर! आप मेरी आशाओंके स्वामी हैं। आपके प्रसादसे मेरी समस्त आशाएँ पूर्ण होगयी हैं। भगवान् करें, अबसे मेरा और आपका क्षण भरके लिये भी बिछोह न हो।

देवदत्त—प्राण प्रियतमे! यदि मेरे थोड़ेसे स्वार्थ-त्यागसे तुम्हारी समस्त आशाएँ पूर्ण हो जायें, तो मुझे प्रतिदान स्वरूप क्या दक्षिणा दोगी?

विजया—स्वामिन्! आप मेरे सर्वस्व हैं। मैंने जब आपके सामने अपना समस्त सर्वस्व रख दिया है, तब आपको देनेके लिये मेरे पास बाकीही क्या रहा? तथापि आप जो कुछ माँगेंगे, मैं यथासाध्य उसके देनेकी चेष्टा करूँगी।

देवदत्त—विजये! यदि मेरे द्वारा तुम्हारी समस्त आशाएँ पूर्ण हो गयी हैं, तो तुम अपना पूर्ण प्रेम प्रतिदान-स्वरूपमें मुझे दे दो।

विजया—क्या आजतक आपको मेरे द्वारा पूर्ण प्रेम नहीं मिला ?

देवदत्त—नहीं विजया ! तुम प्रेम देनेमें बड़ी कृपण हो ?

विजया—आक्षेप स्वीकार है, किन्तु भगवन् ! मैं अपना धन देनेमें कृपणता नहीं करती, वरन् आपका धन देनेमेंही कृपणता करती हूँ । मेरे पास जितना प्रेम था, उसे तो मैं आपको पहलेही दे चुकी, उसके प्रतिदानमें आपका जो स्नेह पाया था—बस सबको मैं कृपणोंकी तरह—कञ्जूसके धनकी तरह—हृदयके अन्तिम स्तरमें छिपाये हुए हूँ ।

देवदत्त—विजये ! जब तुमने अपना सारा प्रेम मुझे एक ही बार दे डाला, तब इस समय क्या देकर प्यार करोगी ?

विजया—बिना कुछ दिये ही प्यार करूँगी ।

देवदत्त—वाह ! तुम्हीं तो बड़ी होशियार हो । माफ़ करो ; अब मैं थोड़ासा भी कर्ज़ नहीं देना चाहता ।

विजया—समझ गयी । अब मेरा तिरस्कार किया जा रहा है । हाय रे स्वार्थ-परायण संसार ! क्या बिना कुछ दिये कुछ भी नहीं मिलता ?

देवदत्त—क्यों, मिलता क्यों नहीं ? दिन, रात, धूप, वर्षा, हवा, पानी, और सर्दी-गर्मी, ये सब हमें बिना कुछ दिये ही—निःस्वार्थ भावसे—मिलते हैं ।

विजया—ये सब तो दयामय, वाञ्छा-कल्पतरु भगवान्‌की वस्तुएं हैं । उन सबके बदलेमें हमें कुछ भी नहीं देना पड़ता ।

किन्तु आप तो मनुष्य हैं, आपके बिना कुछ दिये काम न चलेगा।

देवदत्त—इसके प्रतिवादमें मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ, बताओ,—स्त्री स्वामी के लिये अधिक स्वार्थ-त्याग करती है या स्वामी स्त्रीके लिये अधिक स्वार्थ-त्याग करता है?

विजया—स्त्री स्वामीके लिये अधिक स्वार्थ-त्याग किया करती है?

देवदत्त—क्यों?

विजया—दृष्टान्त द्वारा समझाये देती हूं। मान लीजिये कि, एक आठ वर्षकी बालिकाका विवाह हुआ। कुछ दिनों बाद वह माता-पिताकी स्नेह-पालिता परिणत-ज्ञान-हीना बालिका बिना कुछ कहे-सुने, इतनी थोड़ी अवस्थामें ही पिता, माता, भाई और बहनको छोड़कर, छातीपर विस्मृतिका पत्थर रख, स्वामीकी सेवा करने आ गयी। क्या आप भी बचपनमें किसीके लिये ऐसा सच्चा स्वार्थ-त्याग या आत्मत्याग कर सकते थे?

देवदत्त—तो तुम अपने माता-पिताको छोडकर स्वामीकी सेवा करने क्यों आयीं? तुम्हारे न आनेसे भी काम चल जा सकता था। आज्ञा पातेही मैं श्वशुर-गृहमें जाकर स्त्री-सेवा किया करता। याद है न? आदिदेव महादेव गौरीको ब्याहनेके लिये स्वयं गिरिराज भवनमें गये थे। किन्तु समुद्रकुमारी लक्ष्मीने स्वयं समुद्रसे निकलकर वैकुण्ठमें भगवान्‌के गलेमें वरमाला पहनायी थी। अब तो समझ गयी होंगी कि, सर्वत्र एक ही नियम नहीं पाया जाता।

विजया—अच्छा महाराज ! इस विचारकी मीमांसा यों न होगी । आपके यहाँ आजकल स्वर्गकी अप्सराओंने आतिथ्य ग्रहण कर रखा है। वे इस प्रश्नकी मीमांसा आसानीसे कर देंगी।

इतना कहकर विजयाने एक दासी भेजकर सबसे प्रधान अप्सराको बुलाया। उस अप्सराका नाम रूपमयी था। विजयाने पूछा—"रूपमयी ! तुम्हीं वर्त्तमान विचारकी मीमांसा करो। क्योंकि तुम्हारा स्वर्गराज्य प्रेमका राज्य है। उस राज्यके प्रेममें स्वामी-स्त्रीका भेद-भाव नहीं है। उस राज्यमें स्वामी और स्त्री दोनोंमेंसे कोई किसीका प्रभु नहीं है। दासी नहीं है। देखो, गौरी-ने हिमालयपर शिवकी तपस्या की और शिवने गौरीके घर जाकर उनका पाद्-पद्म हृदयमें धारण किया। शेष-शय्यापर लक्ष्मी नारायणकी पद-सेवा करती है और नारायण शेष-शय्यात्यागकर "देहि पल्लव मुदारं" कहकर लक्ष्मीका पाद-पद्म अपने हृदयमें धारण करते हैं। यही तुम्हारे स्वर्गराज्यमें होता आया है और होरहा है। अब बताओ, स्वामी स्त्रीके लिये स्वार्थ-त्याग करता है या स्त्री स्वामीके लिये ?

अप्सरा—देवि सच्ची बात तो यह है कि, जो सज्जन प्रेम मदसे मत्त होते हैं, उनकी सारी बातें ही समान रूपसे होती हैं। जिस समय उनके हृदयमें प्रेम उत्पन्न हो आता है, उस समय ऐसा प्रतीत होता है, मानो पृथ्वीपर ही चाँद उग आया है। जिनका जीवन ही प्रेममय है, वे सिवा प्रेमके मान अभिमान आदि संसारके अन्य गुणोंको जानतेही नहीं। अतः जो दम्पति

प्रेम-हीन होते हैं, वे सिवा स्वार्थके, त्याग का नाम भी नहीं जानते! जिनमें प्रेम है, वे एक प्राण दो देह हैं। उनमें न कोई ऊँच है न नीच। न कोई स्वार्थ है न परार्थ। वे चिदानन्दमय और सच्चे ज्ञानी हैं। मैं तो यही फैसला अच्छा समझती हूँ। यही स्वार्थ ..."

अप्सराने अपना भाषण अभी समाप्त न कर पाया था कि, बाहर कुछ गड़बड़ होती सुनायी दी। जैसे किसीमें लड़ाई हो रही है। कुछ क्षण बाद हाथोंमें नङ्गी तलवार लिये,—क्रोध किषायित लोचन दो योद्धा आते देख पड़े। एकने आतेही व्यस्त भावसे अगले साथीसे कहा—"सेनापति! यही वह दुष्ट, राज-द्रोही देवदत्त है। आधे क्षणकी भी देर न लगाओ। देखो, ऐसा नहो कि, पापात्मा किसी तरह हथियार पाजाये। उठनेका भी अवसर मत दो। अभी जञ्जीरोंसे बाँधलो। सावधान! कहीं ऐसा न हो, जो शरीर, बलसे जञ्जीरोंको ही तोड़ डाले।"

इतना कहकर पहले योद्धाने पलक मारतेही देवदत्तको मजबूतीसे पकड़ लिया और दूसरे योद्धाने उनके हाथ पैर बाँध दिये।

अप्सरा इस आकस्मिक काण्डको देख हक्की-बक्कीसी रह गयी। उसके मुँहसे एक शब्द भी न निकल सका। मुहूर्त भरके बाद—"अरे बाप! ये पिशाच कहाँसे आगये? आओ भाई! भागो, जल्दीसे पहरेवालोंको ख़बर कर दूँ।"—कहकर भाग गयी। महारानी विजया तो एकदम प्रस्तर-प्रतिमासी हो रहीं। उनका मुँह बन्द होगया। आँखें पथरा गयीं।

महाराज देवदत्तने स्थिर भावसे पूछा—"तुमलोग कौन हो? चोरोंकी तरह एकाएक आकर तुमने मुझे क्यों बाँध लिया? तुम क्या चाहते हो? डाका डालना या गुप्त हत्या? विजया! डरने-की कौन बात है? स्थिर होकर भाई मधुच्छन्दको खबर दे आओ।"

विजयाको अब होश हुआ। उसने वहीं खड़े-खड़े अति व्यस्तता अथवा ऊँचे स्वरसे पुकारा—"मधुच्छन्द! युवराज! तुम कहाँ हो? एकबार आओ तो। बड़ी विपत्ति है। कौशिक युवराज! जहाँ भी हो, मेरी आवाज़ सुनकर तुम वैसेही उठ आओ।"

मधुच्छन्द मानो वहीं खड़ा-खड़ा किसीके पुकारनेकी बाट जोह रहा था। अब विजयाके मुखसे अपनेको पुकारा जाता देख वह मुस्कुराता हुआ कमरेके भीतर आगया।

विजया व्यस्तताके साथ बोली—"आओ भाई! पर यह क्या! तुम इस तरह क्यों हँस रहे हो? ओह! समझ गयी। यह सब तुम्हारे ही कौतुक हैं। तुम्हारेही खेल हैं। शायद ऐसा करके हम लोगोंको डराना चाहते हो। वाह भाई! ऐसी भयानक हँसी! अभीतक छाती धड़धड़ा रही है। प्रिय देवर! आओ।"

मधुच्छन्द विजयासे एकदम सटकर खड़ा हो गया। मुस्कराता हुआ अत्यन्त मीठे स्वरसे बोला—"विजया! मधुरभाषिणि! आज मेरा उद्देश्य सफल हो गया। तुम्हारे सुधामुखका अमृत भाषण सुनकर, मेरा जीवन चरितार्थ हो गया। तुमने मेरा हाथ पकड़ लिया, मानों मेरा शरीर पवित्र हो गया। जिस दिन मैंने तुम्हें पहले-ही-पहल देखा था,—सुन्दरी-कुल शिरोमणि! उसी दिनसे

मैं तुम्हें पानेके लिये बाण-विद्ध मृगकी भाँति उन्मत्त भावसे भटकता फिरता हूं जैसे-तैसे करके आज मेरी आशा पूर्ण हुई है। सुन्दरि! सच तो यह है कि, बन्दरके गलेमें मोतियोंकी माला भली नहीं मालूम होती। तुम्हरे जैसे सुन्दरी-रत्नको विधाताने कायर, हीनचेता देवदत्तके लिये नही सिरजा।

विजया—भाई! इस समय यह तुम क्या बक रहे हो?

मधुच्छन्द—सुन्दरि! विजया! मेरे मनकी बात तो तुम समझही गयी हो—रूप मत गाँठो—मै सारी बातें खोलकर कह देता हूँ। मैंने तुम्हारे जैसे रत्नको पानेके लिये देखो, कितने भीषण-काण्ड किये हैं! यहाँ तक कि, देवदत्तकी आज हत्यातक करनेका प्रबन्धकर लिया है। पिताका राज निष्कण्टक होगा। विजया! तुम मेरे पितृराज और हृदय-राज्यकी राजेश्वरी होगी। आओ, यह देखो! मेरे परम सहायक, अद्वितीय महावीर, पृथ्वीके सम्राट् कार्त्तवीर्य्यार्जुन मेरे इस कार्य्यमें सहायता करनेके लिये तैयार हैं। अब कुछ चिन्ता नहीं है। विजया! तुम इस हत्याकाण्डको न देख सको, तो आओ, मैं तुम्हें दूसरी जगह पहुँचा आऊं।

इतना कहकर मधुच्छन्दने विजयाका हाथ पकड़ लिया और जोरोंसे अपनी ओर खींचने लगा।

देवदत्त मधुच्छन्दकी इस कुचेष्टाको देखकर आश्चर्य्यसे स्तंभित हो रहे। अब उन्हें इस काण्डका वास्तविक रहस्य और मधुच्छन्दका कौशल जाननेमें कुछ भी बाकी न रहा। वे आँखोंमें आँसू भरे, करुण कण्ठसे बोले—"मधुच्छन्द! मैं इतनी देर बाद

तुम्हारे अभिप्रायको समझ सका हूं। भाई! अब भी समय है, अब भी विवेकसे काम लो—अब भी मान लो—जान-बूझकर नरकमें न धकेलो। जङ्गली डाकूको अन्तःपुरमें लाकर भ्रातृ हत्या न करो; भौजाईको धर्म-भ्रष्ट मत करो।"

मधुच्छन्दने देवदत्तके उक्त प्रबोधनपर कर्णपात न किया। वह बड़ी निर्दयताके साथ उस परम पवित्रा देवी विजयाका हाथ खींचता हुआ उद्यानके बाहर जाने लगा। विजया पाश-बद्धा मृगीकी भांति छट-पटाती हुई, छूटनेका उपक्रम करने लगी। शान्तस्वरमें समझानेकी भी चेष्टा की। बोली—"छिः-छिः भाई! इस पाप-संकल्पका परित्याग करदो। मैं इस समय असहाया, अरक्षिता और अबला नारी हूं। इस समय तुम्हीं मेरे, पतिदेवके बाद दूसरे रक्षक हो! मेरे स्वामी विपद्ग्रस्त हैं। अब तुम्हीं मेरी रक्षा करो। बलपूर्वक लाञ्छित करनेकी चेष्टा न करो।"

मधुच्छन्दने उपेक्षा और व्यंगभरी हँसीसे हँसकर कहा "विजये! सच कह रही हो? हाँ, मैं ही तुम्हारा रक्षक हूं। मैं ही तुम्हारा सहायक हूं। डरनेकी कोई बात नहीं; अभय होकर मेरे साथ आओ।"

विजया इस उपेक्षा-भरे व्यंगको सुनकर अत्यन्त मर्माहत हुई; यहाँ तक कि, उसे मूर्च्छा आगयी। मधुच्छन्दने उस समय उस दयनीय दृश्यपर तनिक भी ध्यान न दिया और पूर्ववत् बेरहमी के साथ खींचता हुआ उसे राजभवनकी ओर लेचला।

देवदत्त शृङ्खला-बद्ध होनेपर भी अपने क्रोधको न रोक सके;

उस क्रोधावेशने उन्हें भी मूर्च्छित कर दिया। कुछ देर बाद जब वे होशमें आये, तो कार्त्तवीर्यार्जुनकी ओर देखते हुए बोले—"देखो भाई! तुम चाहे जो हो, कृपाकर थोड़ी देरके लिये मुझे ज़रूर बन्धन-मुक्त कर दो। मेरी असहाया सहधर्मिणीकी धर्म-रक्षाके कार्य्यमें सहायता दो।

कार्त्तवीर्य्यने उनकी इस कातरोक्तिपर कर्णपात न किया, वरन् धूमकेतु ऐंठता हुआ कहने लगा—"मूर्ख! चुप रह। तू तो थोड़ी देरके लियेही बन्धन मुक्त होना चाहता है, हम तुझे जीवन भरके लिये बन्धन-मुक्त किये देते हैं। ले दुर्भाग्य! अब मरनेके लिये तैयार हो जा। तेरी मौत सामने खड़ी है। आँख खोल कर देख, तब अच्छी तरहसे पहचान सकेगा।"

देवदत्त—विनयपूर्वक कहता हूँ भाई! तुम चाहे जो हो, मेरे ऊपर दया करो। मुझे थोड़ी देरके लिये छोड दो। मैं अभी अपनी स्त्रीकी रक्षा करके वापस आता हूँ। विश्वास करो, स्त्रीको बचानेके बाद मैं अपनी इच्छासे—इस बारकी तरह—आसानीसे बँध जाऊँगा। इस समय मैं क्षत्रिय हूँ। तुम भी क्षत्रिय होकर मेरे ऊपर इतना अविश्वास न करो।

धूमकेतु—चुप रह कुत्ते! अब स्त्री आदि सबको भूलकर मरनेके लिये तैयार हो जा।

देवदत्तने धूमकेतुसे इच्छा-पूर्त्तिकी आशा त्याग दी। वे समझ गये कि, इस आदमीका हृदय पत्थरका है; यह सहजमेंही न पसीजेगा। अतः कार्त्तवीर्य्यार्जुनसे बोले—"महाशय! देखता

है, आप एकदम चुप हुए खड़े हैं। शायद आपके हृदयमें थोड़ी-बहुत दया हो! क्या यह अनुष्ठान आपकीही आज्ञासे हुआ है? प्रभो! आप क्षणभरके लिये मुझे बन्धन-मुक्त कर दीजिये, मैं अपनी असहाया स्त्रीकी रक्षा कर आऊँ ... आप तो कुछ जवाबही नहीं देते! क्या इतनीभी दया न करेंगे? बताइये तो, आप कौन हैं? दस्युपति? क्या आपने धनके लालचसे मधुच्छन्दका आदेश मान हमलोगोंकी हत्या करनेकी ठहरायी है? बताइये, कितना धन मिलेगा? मैं आपको उससे दसगुना धन दूँगा। आप एक बार मुझे छोड़ दें—मैं अपनी स्त्रीको पापीके पाप-आक्रमणसे बचा लाऊँ। यदि मेरी बातपर विश्वास न हो, तो लो, मेरे गलेका यह हार ले लो। मेरे हाथ जञ्जीरोंसे कस रहे हैं। हार निकालनेकी शक्ति नहीं। इस लिये आप स्वयं पास आकर ले लें।"

धूमकेतु—अबे हम डाकू वगैरः नहीं हैं। हम हैं क्षत्रिय वीर। तुम्हारा शासन करने आये हैं।

देवदत्त—बड़ी अच्छी बात है। आप मुझे छोड़ दीजिये। अस्त्र ग्रहण करनेका अवसर दीजिये और सम्मुख समर कीजिये। इस समय जो आपने किया है, वह तो क्षत्रिय कर्मानुमोदित नहीं हुआ। यदि क्षत्रिय हो, तो क्षत्रिय धर्मका पालन करो! दस्युता और चोरी क्षत्रिय धर्म नहीं है।

धूमकेतु—कायर! पापी! अभी तक भी न पहचान सका? तेरे सामने ये कौन खड़े हैं? ये संसार-विजयी, क्षत्रियकुल शिरोमणि एक महावीर हैं। आँखें खोलकर देख।

देवदत्त—क्यों मुझे धोखा देनेकी चेष्टा करते हो? अनजानमें बाँधकर कुटु श्लेषोक्ति द्वारा क्यों मुझे जलाते हो? तुम झूठे हो। क्षत्रियवीर कभी किसीपर धोखेसे आक्रमण नहीं करते। क्या सच्चे क्षत्रियवीर कभी गुप्तभावसे, बिना जाने क्षत्रियोंके अन्तःपुरमें चोरोंकी भाँति, निहत्थे युवक-युवतीपर अलक्षितभावसे आक्रमण करते हैं? अब वृथा मत चिढ़ाओ। ऐसा पापकर्म तो डाकू भी नहीं करते। डाकूलोग क्या मनुष्य नहीं हैं? क्या वे पशुओंकी अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं हैं? यह तो दस्युता नहीं, पशुता है।"

धूमकेतु—होशमें आ पापी! तेरा भ्रम दूर करूँ, ले मरनेके समय महा पुरुषका दर्शन कर ले। तेरे सामने जो चुपचाप खड़े हुए हैं, ये हैहय-वंशधर महाराज चक्रवर्ती, सर्वजयी महावीर कार्त्तवीर्य्यार्जुन हैं। आँख खोलकर देख ले—अपने नेत्र सफल कर ले।

देवदत्त धूमकेतुकी उक्त बात सुनकर क्रुद्ध हो उठे। बोले—"नीच! तू महा मिथ्यावादी मालूम होता है। अपनी जीभको काट फेंक। महापुरुष, क्षत्रिय-कुल-शिरोमणि, महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुनके नामको कलंकित न कर। इस घृणित कर्मक्षेत्रमें उन क्षत्रिय-श्रेष्ठका नाम न ले। वे आदर्श राजा हैं—धनलोभी डाकू नहीं हैं। वे श्रेष्ठ क्षत्रिय हैं—नर-घाती चाण्डाल नहीं हैं। वे महा पुरुष हैं—कायर नहीं हैं।"

देवदत्तकी उक्त फटकार सुनकर कार्त्तवीर्य्यार्जुन आगे आये और बोले—"देवदत्त! वास्तवमें मैंही कार्त्तवीर्य्यार्जुन हूँ। मैं स्वयं

विद्रोह-दमन करने आया हूं । तुम राज-विद्रोही हो। मैं अपने हाथोंसे उस अपराधका दण्ड देने आया हू ।

देवदत्त—कौन कहता है कि, मै राज-विद्रोही हूं ? मेरा राजा कौन है, जिसके विरुद्ध मैंने विद्रोह किया ? मैं तो स्वाधीन राजा विश्वामित्रका पुत्र हू ँ।

कार्त्तवीर्य्य—मैं पृथ्वीका वर्त्तमान दिग्विजयी चक्रवर्ती सम्राट् हूँ । भारतके सभी क्षुद्र राजगण मेरे अधीन हैं।

देवदत्त—हो सकता है कि, आप दिग्विजयी चक्रवर्ती राजा हों। किन्तु आपने विश्वामित्र या उनके पुत्र मुझको तो कभी सम्मुख युद्धमें पराजित नहीं किया । न हमारे वंशके किसी व्यक्तिने आपको राज-सम्मान दिया। महाराज ! राजा होकर राजनीतिके विरुद्ध वार्त्तालाप न करो । आजकल मैं कौशिक राज्यका राजा नहीं हूँ । कुछ दिन हुए, मैंने अपने कनिष्ठ भाई मधुच्छन्दको अपना सारा राज-पाट सौंप दिया है। फिर मैं राज-विद्रोही कैसे हो सकता हूँ ?

राजा—राज्यके बदलेमें क्या लिया ?

देवदत्त—कामधेनु ।

राजा—वह कामधेनु कहाँ है ?

देवदत्त—ब्राह्मण श्रेष्ठ महर्षि जमदग्निको दान कर दी।

राजा—क्यों दान कर दी ? विश्वामित्रके राज्य या कामधेनु-पर तुम्हारा कुछ भी अधिकार नहीं था। तुम विश्वामित्रके औरस-

हैं। राज्य-कामधेनु आदि समस्त सम्पत्ति तो उन्हींकी है। तुम क्यों अन्यायसे उनकी सम्पत्तिका भोग करते हो? तुम उनकी कामधेनुको दान कर देनेवाले कौन थे? अतएव तुम महा पापी हो। अब इन पापोंका दण्ड ग्रहण करो। तैयार रहो।

देवदत्त—मैंने राजर्षि विश्वामित्रकी आज्ञासे राज्यभार ग्रहण किया था। थोड़ी देरके लिये—आपके कथनानुसार—मान लिया जाये कि, मैं अपराधी हूँ, तथापि आप मुझे दण्ड देनेवाले कोई नहीं हैं। आप समझदार हैं। अतएव अनधिकार चर्चाकर अपने चरित्रको कलंकित न करें। मेरे बन्धन खोल दीजिये। मैं अपनी असहाया स्त्रीकी रक्षा करूँगा।

राजा—मधुच्छन्द क्या इतने महा पापी हैं, जो भावजका अपमान करेंगे?

देवदत्त—महाराज! मधुच्छन्द महापापी नहीं हैं। आप भी अन्यायी नहीं हैं। मैं ही दुर्दशाग्रस्त महापापी हूँ; आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये। मानता हूँ कि मैं आपका शत्रु हूँ, किन्तु मेरे जैसे शत्रुपर दया करना पाप नहीं है। क्योंकि मैं आपके पुत्रके समान हूँ। आप अपने पुत्रका स्नेह भरा मुखड़ा यादकर मेरे ऊपर दया कीजिये। मैं प्राण-भिक्षा नहीं चाहता। केवल दो पलके लिये छोड़ दीजिये, जितने समयमें मैं अपनी असहाया स्त्रीकी रक्षा कर सकूँ। सतीके सतीत्वकी रक्षा कर सकूँ। महाराज! आपके भी तो कोई कन्या या पुत्रवधू होगी।

राजा—मुझे कामधेनु दे दो। मैं तुमपर दया करदूँगा।

देवदत्त—कामधेनु तो मैंने दान कर दी।

राजा—मेरी आज्ञासे, मेरे अनुरोधसे, मेरे लिये दान अस्वीकार करो। कामधेनु जमदग्निसे वापस ले लो।

देवदत्तको उक्त बात सुनकर बड़ा क्रोध हुआ। वे झल्लाकर बोले—"यह कभी नहीं हो सकता। तुम तो एक कार्त्तवीर्य्य हो, यदि, इस समय हज़ार कार्त्तवीर्य्यार्जुन आकर भी एक साथ अनुरोध करें, तो मैं दानको नहीं लौटा सकता। प्राण चले जायें। कुछ भय नहीं; पर ऐसा अधर्म नहीं कर सकता। दान लौटाना हिन्दुओंका धर्म नहीं है। मैं आपका श्रृंखला-बद्ध बन्दी अवश्य हूँ, किन्तु मैं अहिन्दू, म्लेच्छ और यवन नहीं हूँ।

राजा—तब स्त्रीकी सतीत्व-रक्षाका ध्यान छोड़ दो।

देवदत्त—दर्पहारी मधुसूदन अबलाकी सतीत्व-रक्षा अवश्य करेंगे। मैं दान न लौटा सकूंगा।

राजा—तो अपने कर्मका फल भोग। सेनापति! इस दुरात्माका सिर काट लो।

आज्ञा पाते ही धूमकेतु आगे बढ़ा। उसने अपने हाथकी तलवारके अग्र भागको बिना किसी सोच-विचारके, बड़ी बेरहमीके साथ देवदत्तकी छातीमें घुसेड़ दिया। बोला—"महाराज! इस दुराचारीको एकदम न मार डालना चाहिये। धीरे-धीरे ही मौतकी यन्त्रणा भुगवानी चाहिये।"

यह कहकर उसने फिर दुबारा देवदत्तकी छातीमें उसी प्रकारका आघात किया। बोला—"क्यों? अब भी कामधेनु वापस

लेना स्वीकार करता है या नहीं ? अभीतक मैंने तेरे हृदयका मध्य भाग नहीं फाड़ा। अब भी प्राण बच सकते हैं। अब भी स्वीकार कर ले। देखा कापुरुष! क्षत्रियोंका बाहुबल कैसा होता है ?

देवदत्त इस समय आघातकी यन्त्रणासे कराह रहे थे। छातीसे दर-विगलित-धारासे रक्त बह रहा था। धूमकेतुके उक्त वचनको सुनकर वे कहने लगे—"आह! आह! क्षत्रियोंका बाहुबल आज मैंने अच्छी तरहसे देख लिया। कुत्तोंका दन्तबल मनभरकर देख लिया। सच है, मैं कायर हूँ, तुम वीर पुरुष हो। हे मधुसूदन! हे प्रभो! देखलो, वीर पुरुषोंका बाहुबल दृष्टिभरकर देखलो। हा विजया! इस समय तुम कहाँ हो।"

इतना कहकर महाराज बेहोश होगये। भ्रातृ-हिंसाका भीषण दृश्य पूरा होगया। वीरत्व और क्षत्रियत्वकी बानगी देखली गयी। राजर्षि विश्वामित्रके पुत्रकी बदौलत सत्य युगमेंही कलिकी प्रत्यक्ष मूर्त्ति दिखायी दे गयी।

हायरे धन! हायरी माया! तेरी यह मोहमयी छलना मनुष्यसे जो अधर्म न करा ले सो थोड़ा है। धर्म और शास्त्रोंने जिस भ्रातृ-प्रेमकी महिमाका शत मुखसे बखान किया है, जिस भ्रातृ-प्रेमको पण्डितोंने जीवात्मा और परमात्मामें एकता उत्पादनका साधन बताया है। जिस भ्रातृ-प्रेमके लिये इतिहास-लिखित सैकड़ों अमरवीरोंने अद्भुत आत्मत्यागकर संसारके मुखसे धन्य-धन्य कहला लिया है, आज वही भ्रातृ प्रेम राजर्षि विश्वामित्रके गुण-वान्, समझदार बेटेके पल्लेमें पड़कर मृत्यु-यंत्रणासे सिसक रहा

है। कैसा भीषण दृश्य है! कितना नृशंस नारकीय नज़ारा है।

हाँ, तो महाराज देवदत्तके बेहोश होजानेपर, महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुन और सेना-पति धूमकेतु शत्रुके मरण-मुहूर्त्त का अन्तिम दृश्य देखनेके लिये खड़े हुए थे कि, कुछ देर बाद उन्होंने देखा, महाराज देवदत्तकी परम रूपवती स्त्री, विजया सिरके बाल बखेरे हुए, हाथमें नंगी कटार लिये बड़ी तेज़ीसे उनकी ओर लपकी आ रही है। दूरसे ऐसा मालूम होता था, मानो कराल कृपाण-धारिणी भगवती भैरवी प्रत्यक्ष मानव-मूर्त्ति धारण-कर शुम्भ-निशुम्भका विनाश करने आ रही हैं। बड़ाही विचित्र वेश है! बड़ाही हृदयाकर्षी भाव है!

धूमकेतु उस रूपको देखकर सिहर उठा। कार्त्तवीर्य्यार्जुनके अङ्गसे भी लिपटे मज़बूत प्राण अभूत भयसे काँप गये। मानो आज जो पाप किया है, उसका फल भी हाथोंहाथही मिल जायेगा, समयकी अपेक्षा न करनी होगी।

विजया आतेही पतिके शिथिल शरीरको अपनी गोदीमें उठाकर बोली—"स्वामिन्! आप जाग रहे हैं न? लीजिये, चरणोंकी सती दासी आपके चरणोंमे उपस्थित है। अविश्वास न करें। स्वप्न-कुहेलिका न समझें। आपके चरण साक्षी हैं, धर्म साक्षी है। मैं आपके चरणोंकी वही सती दासी विजया हूँ।"

देवदत्त इस मधुर सम्बोधनसे अमृत-सिञ्चितकी तरह जाग पड़े। उठनेका उपक्रम किया, पर उठ न सके। आखिर पड़ेही पड़े बोले—"आओ सति! सामने खड़ी होओ! इच्छा है, इस

मृत्युकालमें सतीकी मूर्त्ति देखते-देखते मरूँ। आह!—आओ सति! तुम्हारा दर्शनकर चाण्डालके हाथसे हुई मृत्युकी अधोगतिसे मुक्ति पा जाऊँगा। आओ सति! सामने आकर खड़ी होओ।"

विजया स्वामीकी इस कातरोक्तिको सुनकर आपेमें न रही और भी विक्षिप्त होकर धूमकेतुकी ओर बढ़ी। बोली—"जान गयी, तुम्हीं मेरे स्वामीकी हत्या करनेवाले हो! दुष्ट! तेरी इस तलवारमें यह खून कैसा लग रहा है? क्या तू हत्यारा है? अच्छा तो ले पापी, अपने कियेका फल भोग।"

इतना कहकर विजयाने बिजलीकी भाँति तड़पकर धूमकेतु-पर छुरीका आघात किया। छुरी उसके कन्धेमें इस ज़ोरसे लगी कि, वह सम्हल न सका और घूमकर ज़मीनपर गिर पड़ा।

एक शत्रुको गिरा देखकर विजया अब कार्त्तवीर्य्यके ऊपर लपकी कि, पीछेसे महाराज देवदत्त बोले—"आह!—यह क्या करती हो विजया! चाण्डालका स्पर्शकर अपने पवित्र देहको अपवित्र न करो। आह! यहाँ मेरे सामने आओ।"

पतिका प्रेम सम्बोधन सुन, सतीके पैर आगे न बढ़ सके और पीछे लौट आये। हृदयकी प्रतिहिंसाग्नि कुछ क्षणके लिये शान्त होगयी और उसके स्थानपर पति-प्रेमकी पुण्यधारा प्रवाहित होने लगी। विजया-पीछे लौट आयी और जैसेही पृथ्वीपर बैठना चाहती थी कि, मधुच्छन्दने पीछेसे, धोकेसे आकर उसके हाथमेंसे छुरी छीन ली।

धूमकेतु ज़मीनपर गिर पड़ा था, पर उसके प्राण नहीं गये

थे। इस समय विजयाको निहत्था देख वह फुर्तीसे उठा और उसने आसन्नमृत्यु देवसदृश देवदत्तकी छातीमें फिर तलवारका एक सांघातिक प्रहार किया। अबतक महाराज जैसे-तैसे अपनेको सम्हाले हुए थे, पर इस आघातने देरतक उनके शरीरमें प्राणोंको नहीं रहने दिया। वे—"हा विजया!" कहकर अचेत होकर गिर पड़े और गिरतेही स्वर्ग सिधार गये।

यह देख विजयाकी प्रशान्त प्रतिहिंसाग्नि फिर भीषण रूपमें धधक उठी। उसने पतिके शवस्थानसे उठकर धूमकेतुपर बड़े जोरसे पदाघात किया। लात लगतेही धूमकेतु जमीनपर गिर पड़ा। विजयाने झट उसके हाथसे तलवार छीन ली। उन्मादिनी-की भाँति अट्टहास्य करती हुई वह बोली—"हा:—हा:—प्रति-हिंसा!—मा कालि! कराल वदनि! मुण्ड मालिनि! पापियोंका बलि ग्रहण करो!" इतना कह वह धूमकेतु और कार्त्तवीर्य-दोनोंपर एकसाथ आक्रमण करने चली। मानो माँ दुर्गा इसी समय चण्ड-मुण्डका विनाशकर पृथ्वीका भार हलका कर देंगी। विजयाकी तत्कालीन विकराल मूर्त्तिको देखकर कार्त्त-वीर्यके प्राण काँप उठे। उन्होंने सेनापति धूमकेतुसे कहा—"सेनापति! अब मेरी एक तलवार दो जनोंकी रक्षा न कर सकेगी। इस लिये शीघ्र भागकर प्राण-रक्षा करो।"

भला कायरोंमें साहस कहाँ? जो छिपकर, धोखेसे, आक्रमण करनेके वीर हैं, वे सम्मुख मैदानमें कब ठहर सकते हैं? धूमकेतु यह सुनतेही राजाका हाथ पकड़कर द्वारकी ओर भाग



थे। इस समय विजयाको निहत्या देख वह फुर्तीसे उठा और उसने आसन्नमृत्यु देवसदृश देवदत्तकी छातीमें फिर तलवारका एक सांघातिक प्रहार किया। अबतक महाराज जैसे-तैसे अपनेको सम्हाले हुए थे, पर इस आघातने देरतक उनके शरीरमें प्राणोंको नहीं रहने दिया। वे—"हा विजया!" कहकर अचेत होकर गिर पड़े और गिरतेही स्वर्ग सिधार गये।

यह देख विजयाकी प्रशान्त प्रतिहिंसाग्नि फिर भीषण रूपमें धधक उठी। उसने पतिके शवस्थानसे उठकर धूमकेतुपर बड़े जोरसे पदाघात किया। लात लगतेही धूमकेतु जमीनपर गिर पड़ा। विजयाने झट उसके हाथसे तलवार छीन ली। उन्मादिनी-की भाँति अट्टहास्य करती हुई वह बोली—"हा! हा! प्रति-हिंसा! मा कालि! कराल वदनि! मुण्ड मालिनि! प्राणपिण्डियोंका बलि ग्रहण करो!" इतना कह वह धूमकेतु और कार्त्तवीर्य-दोनोंपर एकसाथ आक्रमण करने चली। मानों मा दुर्गा इसी समय चण्ड-मुण्डका विनाशकर पृथ्वीका भार हलका कर देंगी। विजयाकी तत्कालीन विकराल मूर्त्तिको देखकर कार्त्त-वीर्य्यके प्राण काँप उठे। उन्होंने सेनापति धूमकेतुसे कहा—"सेनापति! अब मेरी एक तलवार दो जनोंकी रक्षा न कर सकेगी। इस लिये शीघ्र भागकर प्राण-रक्षा करो।"

भला कायरोंमें साहस कहाँ! जो छिपकर, धोखेसे, आक्रमण करनेके वीर हैं, वे सम्मुख मैदानमें कब ठहर सकते हैं? धूमकेतु यह सुनतेही राजाका हाथ पकड़कर द्वारकी ओर भाग

चला। विजया भी उनके पीछे लगी। पर वह बाहर न गयी। वहींसे लौट आयी। यदि कार्त्तवीर्य्य भाग न जाते, तो इसमें कुछ सन्देह नहीं कि, उन्हें अपने सेनापति समेत आज इसी बागमें प्राण गँवाने पड़ते।

शत्रुओंको दूरतक खदेड़कर विजयाने पतिके शवकी ओर प्रस्थान किया। पतिकी तत्कालीन दुरवस्थाको देख विजयाके हृदयमें सहसा शोककी अग्निसी जलने लगी। उससे रोया न गया। छाती न पीटी गयी। वरन् उन्मादसे चेहरा तमक उठा। आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। ओठ फड़क उठे। पर मुँहसे बोल न निकला। बैठी-बैठी कहती रही—"यह वही तो शरीर है, जिसकी सुन्दरताके सामने स्वर्गका सौन्दर्य्य मुँह छिपाता था। यह उन्हीं ज्ञान-गर्वित देवताकी तो देह है, जिनके आगे विश्वभरका ज्ञान-भाण्डार क्षार था। ये वही तो पड़े हैं, जिनकी सेवा करनेका अवसर पानेके लिये देवलोकके देवी और देव-गण तरसते थे। हा! आज वे अनाथ हैं। दरिद्र हैं और सेवक-शून्य हैं।

"यह क्या! मैं अभी क्या बक रही थी! किसको अनाथ कह रही थी! वह देखो, आकाश की तरफ! मेरे पति तो नन्दन-काननके पारिजात पुष्पोंसे सजे रम्य रथपर सवार हो आकाश-विहार कर रहे हैं। मैं भी कितनी मूर्खा हूँ। उनकी ओर अमंगल-आशंका!

"नहीं नहीं; मेरे स्वामी मर गये और मैं विधवा होगयी।

अब मुझे लोक-रीतिके अनुसार रोना चाहिये। न रोनेसे लोग निन्दा करेंगे। अच्छा, थोड़ासा रो लेनेमें बुराई ही क्या है। हः! हः! हा—विजया आज विधवा होगयी। अब तो उसे रोनाही पड़ेगा। हः, हः हः।"

सब भाग गये थे। पर पापी मधुच्छन्द अब भी किसी मोह-पाशसे बँधा हुआ खड़ा था। विजयाकी उसपर दृष्टि गयी। विजया समीपमें खड़े हुए मधुच्छन्दकी ओर तीव्र दृष्टिसे देखती हुई बोली—"तुम कौन हो? आहा! मेरे प्यारे देवर! मेरे स्वामीके प्यारे भाई! तुम्हारे भैया मर गये। थोड़ा रो लो, हः हः हा। बलिहारी रे छैला! तुम क्या मेरे रूपपर मोहित होगये हो? हः हः हा! इतनेपर भी तुमने किसी दिन मेरे सम्पूर्ण रूपको नहीं देखा। एक दिन भी मैं अच्छी तरह सज-धजकर तुम्हारे सामने नहीं आयी। अच्छा, आज आँख भरकर देखलो, तुम्हारे सामने कैसा बढ़िया साज है!"

इतना कहते-कहते विजया उस समय, जितने भी अलङ्कार, मुकुट और हार पहने हुए थी, उन सबको एक-एककर मधुच्छन्दके ऊपर फेंकने लगी। बोली—"यह लो—यह लो! तुम्हारे मनमें भाईके धन-वैभवको देखकर बड़ा लोभ पैदा होगया था? लो—यह लो मेरे सारे गहने! ह, हः हा! अच्छी तरहसे देखो, कैसा शृंगार किया है। पसन्द तो है? हाय देवर! तुम बड़े प्रेमिक हो। सच कह रही हूँ। हँसी नहीं है। तुमने मेरे प्रेमके लिये महा स्वार्थ-त्याग किया है! हाय! हाय! मैं कितनी कठोर हूँ! हाय, मैंने तुम्हें

कितना कष्ट दिया! हे प्रेमिक-सुजन! आज अपनी प्रणयिनीको कहीं आश्रय दो।"

विजया इस समय शोकार्त्त थी। उक्त बातें उन्मादके कारण निकल रही थीं। लेकिन मधुच्छन्द उक्त बातोंको सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। क्योंकि उनमें उसकी आशापूर्त्तिका पूर्णचन्द्र उग रहा था। देर थी, तो केवल उसके मधुर प्रकाशमें स्नान करनेकी। अतः उमङ्ग-भरे कण्ठसे बोला—"विजया! क्या सच कह रही हो? मेरे मनकी परीक्षा तो नहीं ले रहीं?"

विजया—"छिः छिः लज्जित न करो देवर! मैं तो तुम्हारे इन वाक्योंको सुनकर शर्मके मारे मरी जाती हूँ। हः हः, हे देवर! मैं तुम्हारी प्रणयिनी हूँ। मुझे ग्रहण करो। हः हः हा! देखो—इतना धैर्य्य धारण करनेसेही तो हमारा प्रणय निष्कण्टक हुआ है, हः हः हा! कितना निष्कण्टक आनन्द है! लो देवर! मुझे ग्रहण करो।"

मधुच्छन्द—तो अब मुझे देवर कहकर क्यों पुकार रही हो? "प्राणेश्वर"—"प्राणनाथ" न कहो, जिससे मेरे कान शीतल हो जाये।

विजया भीषण अट्टहास्य करती हुई बोली—"बेटा! मैं तो तुम्हारी मा लगती हूँ। ऐसा कहना क्या तुम्हें उचित है? बड़े भाईकी स्त्री और सगी मातामे कुछ भेद नहीं होता। देवर और पुत्र एक है। छि बेटा! ऐसी बात न कहो। पुत्रको प्राणनाथ नहीं कहा जाता, वरन् प्राणाधिक पुत्र कहा जाता है। हः, हः

हा। क्यों देवर ! यह भी तो प्रेम ही है। क्या तुम सचमुच एक सुन्दर प्रणयिनी चाहते हो ? (हाथकी तलवार दिखाकर) देखो, यह कैसी सुन्दर है ? इसने कैसी सुन्दर महावर लगा रखी है। मस्तक और माँगमें सिन्दूर-बिन्दु लगा हुआ है। लो, अपनी इस प्रणयिनीको हृदयमें धारण करो।"

इतना कहकर विजयाने अपने हाथकी वही चमचमाती हुई तलवार मधुच्छन्दकी छातीसे लगा दी।

मधुच्छन्दके प्राण सूख गये। सारे शरीरमें काठ मार गया। यह तो अभी-अभी प्रेमदान कर रही थी ! प्राण लेनेका उद्यम कैसा ? अरे बापरे ! यहाँसे तो किसी-न-किसी तरह भाग निकलना चाहिये। यह सोचकर उसने जैसे ही भागनेके लिये ताक—झाँक की, वैसे ही विजयाने वज्रमुष्टिसे उसका हाथ पकड़ लिया। कहा—"कहाँ जाता है पाषण्ड ! खड़ा रह। हा: हा: ! इतना डरगया नामर्द ! वीर कायरोंका शिकार नहीं खेलते ! शेर गीदड़ोंपर आक्रमण नहीं करता। पापी ! मैं भ्रातृ विद्वेषी भाई नहीं हूँ; जो राज्य-धनके लोभसे तेरी हत्या करूँगी। इसलिये निश्चिन्त होकर यहीं खड़ा रह। देख, आँखें खोलकर सामने की ओर देख। वह तेरे ज्येष्ठ भ्राताका मृतदेह पड़ा है। एक तो तूने इन्हें चाण्डालोंके हाथसे मरवा दिया। अब उनका पवित्र शरीर क्या स्यार और कुत्तोंको खिलवानेके लिये छोड़े जाता है ? क्या अब भी हृदयमें पाप ही भरा हुआ है ?—क्या अभी भी इस मृतदेहके ऊपर हिंसा है ? उठा—उठा; एक ओरसे

तू उठा और दूसरी ओरसे मैं उठाऊँ। चल, श्मशानमें जाकर इस मृतदेहका अग्नि संस्कार कर आयें। तू इन देवताके मस्तकका शत्रु है, इसलिये तू सिरकी ओरसे उठा—मैं उनके चरणोंकी दासी हूँ, इसलिये पैरोंकी ओरसे उठाऊँगी। क्या सोच रहा है? हत्यारे! देर मत कर, नहीं तो अभी छातीमें एक लात जमा दूँगी।"

मधुच्छन्दकी हिम्मत न हुई कि, विजयाकी आज्ञाके खिलाफ़ ज़ुबान हिला सके या कुछ कह सके। भींगी बिल्लीकी तरह कान दबाये शवके पास गया और लम्बा श्वास छोड़कर महाराज देवदत्तके मस्तकको उठाने लगा। विजया भी उसके पीछे-पीछे गयी थी। समीप जाकर पहले उसने महाराजके चरणोंमे प्रणाम किया और कहा—"नाथ! आज आप अकेले ही महाप्रस्थान कर रहे हैं। वायदेको भूलकर अकेलेही स्वर्गका सिंहासन ग्रहण कर रहे हैं। खैर; आप अब अमर हैं। मैं अभी मर हूँ। मैं इस मरताका विनाश प्रतिहिंसाको पूर्ण करके करूँगी। हायरे विधाता! क्या सोचा था, क्या हो गया। एक ही क्षणमें-एकही श्वासमें—सारे खेल मिट्टीमें मिल गये। मरणशील मनुष्यो! इस संसाररूप विदेशमें दो दिनके लिये आकर हिंसा और द्वेषसे क्यों जले मरते हो? अरे! तुम्हें भी तो एक दिन वहीं जाना होगा—उस समय यह हिंसाका संसार तुम्हारे साथ नहीं जायेगा। यह जानकर भी आज क्यों हँस रहे हो? मूर्खों! कलही सिर पकड़कर रोओगे। चेतो-चेतो-चेतो।"

इतना कहकर विजयाने शवको मधुच्छन्दकी सहायतासे कन्धोंपर उठा लिया और श्मशानकी ओर चल दी ।

श्मशानमें पहुँचकर उसने मधुच्छन्दके हाथोंसेही पतिके शवका विधिवत् दाह-कर्म कराया और सबके अन्तमें अपने चार शिशु-पुत्रोंको लेकर हिमालयकी ओर चल पड़ी ।



परशुराम ।

८

समयकी अति विचित्र माया है। कालकी महा विस्मय-कर महिमा है। बड़े-बड़े शक्तिशाली महापुरुष, जिनके प्रचण्ड प्रतापने संसारसे मनमाने नाच नचा लिये, वेभी आकर नष्ट होगये। पुराण पुरुषोत्तम कहाते हैं; कहते हैं, समस्त सृष्टिके सृजनेव हैं; बिना उनकी आज्ञाके पेड़का एक पत्ता भी नहीं हिलता; किन्तु कालके चक्रमें पड़कर उन्हेंभी सुख-दुःखात्मक मानव-शरीर धारण करना पड़ता है। वे भी मनुष्यकी भाँति साधारण सुख-दुःखोंको भोगा करते हैं। माता-पिता, भाई-बन्धु एवं स्त्री और पुत्रोंके वियोगकी असह्य वेदना उनको भी व्यापा करती है। यही कारण है, जो शास्त्रकारोंको समयको भी ईश्वरका एक स्वरूप कहना पड़ा।

एक समय था, जब द्विजातियोंमें सर्वश्रेष्ठ जाति ब्राह्मणोंकी जाति मानी जाती थी। संसार—विशेषकर भारतके लोग—ईश्वरके बाद ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे।

शक्तिशाली सम्राट्‌की समस्त शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती थीं। वे इतने सामर्थ्यवान् थे कि, अपने आशीर्वादसे सामान्यसे सामान्य पुरुषको नर-लोकका नहीं, देव-लोकतकका राजा बना सकते थे, अपने शापसे इन्द्रको सशरीर स्वर्गसे गिरा दे सकते थे। उनके ज्ञान-विज्ञान-बलके सामने वायु जैसी सर्व व्यापिनी और सूक्ष्म शक्ति, जल जैसा सर्वव्यापी तरल तत्व, विद्युत् जैसा चञ्चल और सर्व संहारक तेज, सब अवनत तथा आज्ञानुवर्ती थे। उनकी उस अमित तेजस्वितानेही, उस समय, उन्हें सर्वश्रेष्ठता प्रदान की थी। किन्तु काल,—समय—सबको एकसी अवस्थामें नहीं रखता। उन्नतिके बाद अवनति और अवनतिके बाद उन्नति संसारके सभी पार्थिव-पदार्थोंके पीछे लगी हुई है। सत्ययुगके आरम्भ और मध्य भागमें ब्रह्मण्यधर्मका सितारा बुलन्द था, किन्तु उस युगके अस्त होते-न-होते ब्राह्मणोंकी वह अमितश्रेष्ठता भी अस्तमित होने लगी। परमाराध्य ब्राह्मणदेव उस समय सर्वत्र अपमानित और निन्दित समझे जाने लगे। अमोघ ब्रह्मतेज उन दिनों लुप्त और हीनप्रभ होगया। वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मणजाति भीत और अनादृत समझी जाने लगी। ज्ञान और विज्ञान, न्याय और दर्शन, वेद और पुराण-धर्म घृणित और त्याज्य होगये।

ऐसा क्यों हुआ? इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिये हमें उन्नति और अवनतिके कारणोंकी आलोचना करनी होगी। पाठक जानते हैं कि, बिना कारणके किसीभी कार्य्यका सम्पादन नहीं होता। अनुकूल परिस्थितियोंको पाकर, प्रत्येक कार्य्यके

कारण उन्नत होते हैं और प्रतिकूल अवस्थाओं-के चक्रमें पड़कर उसके कारणोंका ह्रास होता है। सामान्य अवस्थामें कार्य्यके सम्पादित होनेका सारा भार कर्त्ताकी शक्तिपर निर्भर होता है। सांसारिक आवश्यकताओंके अनुसार प्रत्येक कार्य्यके कारण पदा होते हैं, यदि कर्त्ता दृढ़ प्रतिज्ञ और कर्मठ हुए, तो उन्हें तद्-नुकूल परस्थितियाँ प्राप्त होजाती हैं एवं उन परस्थितियोंकी बदौलत तथा अपनी शक्ति-शालिताके बलानुसार कर्त्ताका अभीष्ट-कार्य्य सुचारु रूपसे सम्पादित होजाता है। जहाँ कर्त्ता भाग्य-वादी, उदास और शक्ति-शाली होते हुए भी कर्त्तव्य-परायण नहीं होते, वहाँकी सारी परस्थितियाँ प्रतिकूल बन जाती हैं और कार्य्य-का पूर्ण होना असम्भव तथा होनहारके अधीन हो जाता है। यही उन्नति और अवनतिके कारणोंके उत्पन्न होनेका संक्षिप्त विज्ञान है।

जिस समयका हम ज़िक्र रहे हैं, उस समय ब्राह्मणजाति कर्मिष्ठ अवश्य थी, परन्तु उन्हें मोक्ष-प्राप्तिकी आशा मरीचिका और संसारके मिथ्या होनेके पविवादने आवश्यकतासे अधिक उदास बना दिया था। कोई भी कार्य्य तभी बराबर होता रहता है, जब उसको निरन्तर उत्तेजना मिलती रहती है। अन्यथा उसमें विरोधी कारण प्रवेश कर जाते हैं और तब उसकी महिमा या आवश्यकताका ह्रास होने लगता है। श्रेष्ठता संसारके समस्त जीव चाहते हैं। संसारमें जितनी क्रान्तियाँ हुआ करती हैं, वे सब श्रेष्ठता-लाभके लिये एवं उन क्रान्तियोंमें उन्हेंही सफलता

मिला करती है, जो शक्ति-सम्पन्न तथा प्रबल होते हैं। सत्ययुगके अन्तिम कालमें ब्राह्मणजाति परलोक-प्राप्तिकी आशासे उदास तथा विरक्त बन बैठी थी; यहाँतक कि, परलोक-प्राप्तिके आदि कारण सांसारिक कर्मोंके सम्पादनसे भी उसने मुँह मोड़ लिया था। द्विजातियोंके प्रति जो उसका कर्त्तव्य था, उसमें उसने शिथिलता डाल दी थी; बस उसकी श्रेष्ठतामें विरोधी कारण घुस बैठे। जिस जातिकी वह प्रधान मन्त्रदात्री थी, वह क्षत्रिय जाति अपने सिरधरोंके अभावमें उच्छृङ्खल हो उठी। उस समय शास्त्रानुमोदित व्यवस्थाओंके अनुसार क्षत्रियलोग संसारके शासक थे। पृथ्वीका सारा साम्राज्य उन्हींके अधीन था। वे राजा थे, अतएव ऐश्वर्य्यशाली थे। ऐश्वर्य्य अकुंश न होनेसे मत्त हो उठता है और मत्तता कर्त्तव्याकर्त्तव्य-विवेचन करनेवाली बुद्धिको भ्रष्ट कर देती है। उस समय यही हुआ। ब्राह्मण लोग संसारको छोड़ निर्जन वन-स्थानोंमें निवास करने लगे, और क्षत्रियलोग निरंकुश होकर मनमानी करने लगे। बल-श्रेष्ठ और धन-श्रेष्ठ होनेपरभी क्षत्रियोंके मनोंमें अब सर्वश्रेष्ठ बननेकी कामना उत्पन्न हुई। कामना कुहेलिका है। जिसको इसकी लगन लग जाती है; वह इसे सद् और असद् उपायोंसे पूर्ण करनेका प्रयत्न करता है। यहाँ था एक भौतिकबल-सम्पन्न जातिका शान्त, अहिंसापूर्ण ब्राह्मण जातिसे सामना। आध्यात्मिक दृष्टिसे आत्मबलपूर्ण जाति ही सर्वश्रेष्ठ होती है। इस क्रान्तिमें क्रान्तिकारियोंने श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिये अहिंसा, शान्ति और आत्मबलपर पदाघातकर

अपने अस्थि-मज्जागत आधिभौतिक बलको ही अपनाया। फलतः आस्तिकताके स्थानपर नास्तिकताने आक्रमण किया। सद्-बुद्धि और शान्तिको तुच्छ समझ ऐश्वर्य्य-मदसे मत्त होकर क्षत्रियोंने अत्याचार और बलात्कारको अपना सहायक बनाया। देव-पूजा, ब्राह्मण-पूजा आदिसे श्रद्धा उठकर अहंकारिता और देव-द्विजोंका अपमान करनेमें अपने उद्देश्यकी सफलता दिखाई देने लगी। उस समय महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुन दत्तात्रेयके वर-प्रभावसे अजेय बलसम्पन्न, अद्वितीय ऐश्वर्य्य-शाली और महा प्रतिष्ठित थे। अतः इस क्रान्तिका नेतृत्व उन्होंनेही ग्रहण किया। उनके नेतृत्व ग्रहण करते ही भौतिक बल और मद-मत्तताने और भी उत्तेजना प्राप्त की एवं ब्राह्मण और भगवद्भक्त क्षत्रियों द्वारा पद-पदपर लाञ्छित और अपमानित होने लगे। यहाँ तक कि, उस समय आस्तिक द्विजोंको क्षत्रियोंका आश्रय परित्यागकर निर्जन स्थानों-की शरण लेनी पड़ी। ब्राह्मणोंको इस युद्धमें पश्चात् पद होता देख क्षत्रियगण और भी दृप्त हो उठे। यहाँतक कि, उस समय जो विचार-शील क्षत्रिय भी ब्राह्मणोंका पक्ष ग्रहण करते, उनकी श्रेष्ठताको सनातन समझकर उनके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करते, वेभी इस अनार्किष्ट पार्टी द्वारा मार दिये जाते। एकदिन यह अत्याचार सीमा लाँघ गया। जहाँ कहीं भी ब्राह्मण देख पड़ता, वहीं क्षत्रियलोग उसपर अन्याय-अत्याचार कर, उसके मुखसे अपनी श्रेष्ठता स्वीकार कराते या परिवार समेत उसके प्राण ले लेते थे। इस प्रकारके काण्डसे सर्वत्र हाहाकार मच

उठा। त्राहि-त्राहिके शोरसे आकाश और पाताल एक होगये। शान्त ब्राह्मण, निराश्रय और निरवलम्ब होकर प्राण भय और अपमान-भयसे जङ्गल-जङ्गल भटकने लगे। यहाँ तक कि, सत्य युगमें सर्व प्रधानता पाया हुआ ब्राह्मण्यधर्म भी एकदम दीन, दीन, और पद-दलित होगया। इस काण्डको देखकर और तो सब चुप रह सकते थे; पर जिनकी यह सृष्टि है; संसारके समस्त जीव जिनकी सन्तान हैं; जिन्होंने गुण और स्वभावानुसार अधिकार प्रदानकर जाति-विभाग किया है, वे ऐसी क्रान्ति—ऐसे अन्याय-अत्याचार-पूर्ण उपद्रव होते कब देख सकते थे।

क्षत्रियों द्वारा पददलित हुए ब्राह्मण और अपमानित देवगणोंने इस अधर्म-पूर्ण क्रान्तिका अन्त करनेके लिये एकबार अमरावती नगरीमें एक विराट् सभाका आयोजन किया। इस सभामें तीनोंलोक और चौदहों भुवनोंसे प्रतिनिधि बुलाये गये। सभापति प्रजापति ब्रह्मा थे। एक दिन नहीं, एकमास नहीं, इस सभाके अधिवेशन छै मास तक होते रहे। क्षत्रियोंका अभिमान दूर करानेके लिये अनेक विद्वान् देवगणोंने भाँति-भाँतिके प्रस्ताव उपस्थित किये, परन्तु भगवान् दत्तात्रेयके वरप्रभावसे अजेय बने हुए कार्त्तवीर्यार्जुनका मान-भञ्जन करानेवाली तर्कीब किसीको न सूझी। उसको नीचा दिखाना सबकी समझमें टेढ़ी खीर ठहरा। जब वही नहीं जीता जा सकता, तो उसके अनुयायी क्योंकर वशमें आयेंगे। अन्तमें यह बात ठहरी कि, निरुपायोंके उपाय हरि हैं। माता-पिताही सन्तानकी कुचेष्टाओंको दूर करनेका प्रयत्न किया

करते हैं। कार्त्तवीर्य्य या उसके अनुयायी समस्त क्षत्रिय भगवान् विष्णुकी कृपा पाकर ही अभिमानी हो उठे हैं। अतः वेही उनके अन्याय-अत्याचार रोकनेका प्रयत्न कर सकेंगे। यह विचार स्थिरकर ब्रह्माने पहले भगवती वसुन्धराको गोलोक भेजा। वसुन्धराने यथासमय भगवान् विष्णुके समीप उपस्थित होकर प्रार्थना की कि, हे दीन-बन्धु दयामय हरि! दासी सेवामें उपस्थित हुई है; कृपाकर दृष्टिपात कीजिये। मैं अब दुर्दान्त क्षत्रियोंका पाप-भार नहीं सहन कर सकती। उनके अभिमानसे किये हुए अन्याय-अत्याचारोंसे मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है! उनका भीषण हुङ्कार और मेघकी गर्जनाके समान धनुष-टङ्कार मेरे हृदयको सब-तरह विदीर्ण कर रहा है। अब मुझसे यह सब नहीं सहा जाता और इस दुःखको दूर करानेके लिये ही आज मैं आपकी सेवामें उपस्थित हुई हूँ। कृपाकर पापाचारी, देव-द्विजोंका अपमान करने-वाले अहङ्कारी क्षत्रियोंका अभिमान दूर करनेके लिये उचित व्यवस्था कीजिये।

वसुन्धराकी उक्त करुण प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—"हे वसुन्धरे! धैर्य्य धारण करो। तुम्हारी दुःखरूपिणी रात्रिका प्रायः अन्त ही हो चला है। मैं जानता हूँ कि, तुम इस समय अमरावतीसे, प्रजापति ब्रह्माकी प्रेरणा पाकर मेरे पास आयी हो। तुम उनसे कह देना कि, पृथ्वीके देवता ब्राह्मण और स्वर्गके देवता इन्द्रादि अब विशेष व्यस्त न हों। मैं महर्षि ऋचीकको, उनकी घोर तपस्यापर प्रसन्न होकर एक वर दे चुका हूँ, जिसकी पूर्ति-

के लिये मेरी एक विभूति परशुराम नामसे उनके पुत्र जमदग्निके घरमें जन्म धारण करेगी। उसके जीवनका व्रत अन्याय-अत्याचारोंका उच्छेद और ब्रह्मण्यधर्मकी प्रतिष्ठा करना होगा। ब्राह्मण लोग सर्वपूज्य हैं। भुवनोंमें मेरा भगवान् नाम इसी लिये विख्यात है कि, मैंने भृगुकी लात खाकर भी उनके चरणोंको पूजा था। ब्राह्मणोंके शरीर-मन्दिरमें मेरा पूर्ण निवास है, इसीलिये ब्राह्मण सर्व लोक-आराध्य हैं। त्रिलोकीमें जो कोई भी जीव ब्राह्मणका अपमान करेगा, वह निश्चयही नरकगामी होगा। देवि वसुन्धरे! इस समय तुम स्वच्छन्दतासे अपने स्थानको गमन करो। मैं शीघ्र ही तुम्हारा और देव-द्विजगणोंका अभीष्ट साधन करूंगा।"

इस प्रकार गोलोकसे विदा होकर देवी वसुन्धराने यथा समय देव-सभामें प्रवेश किया और भगवान्का शुभ सन्देश सबको सुना दिया। भगवान्के उक्त सन्देशको सुनकर समस्त सभासद् अति प्रसन्न हुए। सभाका उद्देश्य पूर्ण हो गया; वह भङ्ग कर दी गयी।

* * * *

उक्त घटनासे प्राय: बारह वर्ष बाद सर्वत्र सुनाई पड़ा कि, सरस्वती आश्रममें, महर्षि जमदग्निके गृहमें सर्वगुण सम्पन्न, परम सुन्दर एक ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ है, जिसके शरीरसे सूर्य्यकीसी कान्ति निकलती है और हाथमें एक दिव्य परशु-चिह्न है। बात आश्चर्य्य-कारक थी। अतएव दूर-दूर देशोंके अनेक

नरनारी सरस्वती आश्रममें आते और उस विचित्र बालकका दर्शन कर अपनेको परम धन्य समझते थे।

बालकका नाम परशुराम रखा गया था। परशुरामने अपने बाल्यकालमेंही कैसे-कैसे देव-दुर्लभ गुण प्राप्त कर लिये थे, यह हम जमदग्नि और विश्वामित्र-संवादमें लिख चुके हैं।

* * * * *

महा पुरुष परशुराम, हम कह आये हैं कि, ब्रह्मण्य-धर्मकी प्रतिष्ठा करनेके लिये ही संसारमें अवतीर्ण हुए थे। उनके जीवनका प्रत्येक क्षण ब्रह्मण्य-धर्मका पुनरुत्थान करनेमेंही व्यतीत होता था। वे हर समय यही विचार करते रहते थे कि, क्षत्रियोंमें सर्व श्रेष्ठ बननेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होना स्वाभाविक है या अस्वाभाविक। अब तकका इतिहास बताता है, कि क्षत्रिय लोग अन्य समस्त जातियोंके शासक होते हुए भी ब्राह्मणोंको सदैव अपना गुरु मानते रहे हैं। अर्थात् शासकोंके शासक भगवान् ब्राह्मण हैं। फिर क्षत्रियोंमें ऐसी प्रवृत्ति क्यों? सर्व श्रेष्ठ बननेकी उनकी यह लालसा एक सनातन नियमका उल्लङ्घन करती है। सनातनता भगवान्‌की विभूति है। जो सनातनका शत्रु है; वह भगवान्‌का शत्रु है। अतः अपने गुरुओंको अवनतकर स्वयं उनका स्थान ग्रहण करना सर्वथा अस्वाभाविक है। राजर्षि विश्वामित्रने अपने अनुभवसे इस बातको प्रमाणित कर दिया है कि, क्षत्रियतेजकी अपेक्षा ब्रह्मतेज श्रेष्ठ है। ब्राह्मण-धर्म क्षत्रियोंके लिये पालन करना दुःसाध्य है। पशु बलकी अपेक्षा देव



परशुराम और ब्राह्मणवेशी महादेव।

"तपस्वी कुमार! क्या सोच रहे हो? इधर देखो, मैं एक ब्राह्मण अतिथि हूं।" (पृष्ठ ६१)

बल निर्विवाद श्रेष्ठ है। ब्राह्मणलोग क्षत्रियोंका धर्म अनायास पालन कर सकते हैं, पर क्षत्रियलोग ब्राह्मण-धर्मका पालन नहीं कर सकते। इसीसे उन्होंने क्षत्रिय-जीवनको तुच्छ समझ कर ब्राह्मण जीवन प्राप्त करनेमें अपना जीवन उत्सर्ग किया था। सुना है, कार्त्तवीर्य्य नामका एक राजा अपने बाहु-बलके भरोसे ब्रह्मतेजको छीनकर क्षत्रियतेजकी प्रतिष्ठा करना चाहता है, पर मेरी प्रतिज्ञा है कि, मैं अपना जीवन उत्सर्गकर ब्राह्मणतेजकोही उन्नत करूँगा। मैंही ब्रह्मण्यदेवकी पूजाकी पुनः प्रतिष्ठा करूँगा।"

कलकल नादिनी गंगाका तट, चारोंओर उन्नत गिरिशृंग, जहाँ-तहाँ फल-पुष्पोंके भारसे अवनत वृक्ष-श्रेणियाँ, दूर-दूरतक जन-मानवका पता नहीं। महा पुरुष परशुराम आज भी ऐसेही शान्तनिर्जन स्थानमें, एक शिला-खण्डपर ब्रह्मचारिवेशमें बैठे हुए ऊपर लिखे विचार कर रहे थे। पासहीमें दूसरे शिलाखण्डपर उनका एक धनुष और एक कमण्डलु रखा हुआ था। सिरके बड़े-बड़े बाल पीठपर बिखरे हुए बड़े भले मालूम होते थे। मस्तकपर विचार रेखा और युगल भौंहे कुञ्चित थीं। तथापि चेहरेपर शान्ति और गम्भीरताका भाव था। उन्हें वहाँ इस प्रकार बैठे-बैठे कुछही समय बीता होगा कि, पीछेकी ओरसे एक अत्यन्त वृद्ध पुरुष, जिसका वेश ब्राह्मणोंके जैसा था, परशुरामके सामने आकर खड़ा होगया। गम्भीर स्वरमें बोला—"तपस्वी कुमार! क्या सोच रहे हो, इधर देखो, मैं एक ब्राह्मण अतिथि हूँ।"

परशुरामने, इतना सुनतेही तत्काल उठकर, उस ब्राह्मण देवताको प्रणाम किया। कहा—"आइये, महाराज! अतिथिका आगमन बड़े सौभाग्यकी बात है। महर्षि जमदग्निका आतिथ्य स्वीकार कीजिये। मैं उनका पुत्र हूँ।"

ब्राह्मण—मैं इस समय वेतरह थका हुआ हूँ। कुछ देर विश्राम करना चाहता हूँ। तुम भी इस समय चिन्तितसे मालूम होते हो। पहले अपना मन स्थिर करलो, बादमें अतिथि-सत्कार करना।

परशुराम—जो आज्ञा। आप विश्राम कीजिये। हमारा आश्रम पासही है।

ब्राह्मण—मन स्थिर करो; प्रसन्न मुखसे, शान्त मनसे वार्त्तालाप करो; अभ्यर्थना करो; अन्यथा अतिथि-सत्कार अपूर्ण रह जायेगा। तापस-कुमार! तुम्हारे पास यह धनुष-बाण कैसा? ब्राह्मणोंके लिये तो अस्त्रधारण गर्हित है। शान्त ब्रह्मचर्य्याश्रममें अशान्त चिन्ताः कैसी! मुखच्छवि अत्यन्त मलिन और विषण्ण देख पड़ती है! वत्स! अतिथिको आत्मीय समझकर अपने मनका वास्तविक हाल कहो।

परशुराम—भगवन्! आपके स्नेह-पूर्ण अनुग्रहको पाकर कृतार्थ हुआ। मैं महर्षि जमदग्निका पञ्चम पुत्र परशुराम हूँ। आजकल दुर्वृत्त क्षत्रियजातिके, अत्याचारोंसे ब्राह्मण-जाति कण्ठगत प्राण होरही है। ब्राह्मणधर्म प्रायः लुप्त होगया है। उस ब्राह्मण धर्मकी गौरव-प्रतिष्ठा करना ही मेरे जीवनका सार

व्रत है। इसी उद्देश्यसे मैंने अस्त्रधारण किया है। आजकल मैं किसी योग्य गुरुसे धनुर्विद्या सीखनेकी चिन्तामें हूँ। किन्तु परिश्रम पूर्वक खोज करनेपर भी अभीतक कोई अच्छा गुरु नहीं मिला।

ब्राह्मण—यह क्यों? क्या भारतवर्षमें धनुर्विद्या-विशारद महावीरोंका अभाव है?

परशुराम—अभाव नहीं है, पर जो हैं, वे क्षत्रिय हैं। मैं किसी क्षत्रियसे दीक्षा लेना नहीं चाहता। क्योंकि क्षत्रियोंका दमन करना मेरे जीवनका एकान्त व्रत है। विशेषकर क्षत्रिय जाति ब्राह्मणोंकी किसी विषयमें भी गुरु नहीं हो सकती। यही कारण है, जो आजकल मैं सर्वदा चिन्तित रहता हूँ।

ब्राह्मण—अच्छा पुत्र! यदि ऐसा है तो मैंही तुम्हारा गुरु बनता हूँ। मुझे यह विद्या अच्छी तरह आती है।

परशुराम—धन्य भगवन्! आप अति उदार पुरुष मालूम होते हैं। आज बड़ी शुभ घड़ीमें आपके दर्शन मिले। अच्छा भगवन्! अब आप अपने शिष्य परशुरामका प्रणाम ग्रहण कीजिये।

ब्राह्मण—वत्स! समस्त पृथ्वीमे अकेले वीर होओ। भगवान्के प्रसादसे तुम क्षणभरमेंही अस्त्र-विद्याके आचार्य्य हो जाओगे। मैं तुम्हें दीक्षा देकर वर्षों तक धनुर्विद्या न सिखाऊँगा, वरन् इसी समय अपने योगबलसे तुम्हें सम्पूर्ण धनुर्वेद दान करता हूँ। अच्छा पद्मासन जमाओ और मनको एकाग्रकर नेत्र मूँद लो।

परशुरामने आज्ञानुसार उसी पाषाण-शिलापर पद्मासन लगा पाँचों इन्द्रियोंको एकाग्रकर नेत्र मूँद लिये। ब्राह्मणने भी सामने पड़ी शिलापर आसन जमाया। अनन्तर मन्त्र-पाठ हुआ। ब्राह्मण जिस तरह मन्त्रोच्चारण करता जाता था, उसी प्रकार परशुराम भी उसकी पुनरावृत्ति करते जाते थे। पाँच बार इस क्रमके समाप्त हो जानेपर ब्राह्मणने आज्ञा दी कि, वे आँखें खोलदें। परशुरामके आँखें खोलदेनेपर ब्राह्मणने उनके हाथमें एक परशु दिया। बोले—"वत्स! यह अष्ट धातुका बना, भीषण, अव्यर्थ, अमोघ और सर्वजयी परशु है। इसके बलसे तुम क्षत्रिय-दमन कारी, त्रिलोक विजयी और अद्वितीय महावीर होजाओगे। जाओ वत्स! असीम उत्साह और प्रसन्न मनसे कर्म-क्षेत्रमें उतरो; मैं अब विदा लेता हूँ।

परशुराम—"भगवन्! गुरु-दक्षिणा तो लेते जाइये। तापस-कुमारोंके पास सच्ची गुरु-भक्तिके सिवा और तो कुछ पासमें होताही नहीं, मैंभी आपके चरणोंमें यह भक्ति पुष्पाञ्जलि अर्पण करता हूँ:—

चन्द्रार्काग्नि विलोचनं स्मित मुखं

पद्म द्वयान्तः स्थितं।

मुद्रापाश मृगाक्ष सूत्र विकसत्

पाणिं हिमांशु प्रभम।

कोटि रेन्दु गलत् सुधाप्लुत तनुं

हारादि भूषोज्ज्वलम्।

कान्त्या विश्व विमोहनं पशुपतिं

मृत्युंजयं भावये ॥

बोलो भगवान् भूतनाथकी जय।

ब्राह्मण—भगवन्! अपराध क्षमा कीजिये। आप सर्वान्तर्यामी हैं—

क्षत्रिय रुधिरमये जगदपगत पापं

स्नपयसि पयसि शमित भवतापं।

केशव धृत भृगपति रूप। जय जगदीश हरे ॥

इस प्रकार जान-पहचानके बाद दोनों जने गले मिले और मुस्कुराते हुए अपने-अपने स्थानको विदा हुए।

परशुराम वृद्ध ब्राह्मण-वेशी शिवसे विदा होकर अपने आश्रम को लौट रहे थे। सायंकालीन सन्ध्या-वन्दनका समय समीप आ गया था। उधर माता रेणुका और पिता जमदग्नि भी पुत्र दर्शन के लिये लालायित हो रहे होंगे, यह सोचकर वे और भी जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाये कुटीकी ओर अग्रसर हो रहे थे कि, इसी समय चारुबालकण्ठ और एक रमणि-कण्ठसे निकले मधुर गानकी ध्वनि सुनायी दी। बाल ब्रह्मचारीका संयत मन, किसीके आकर्षित करनेसे भी आकर्षित न होनेवाला पक्का हृदय और उच्चभाव—सहजहीमें उस ध्वनिके आगे अवनत हो गये। परशुराम आश्रमकी

कुटीरका पथ भूलकर जिस ओरसे वह गान-ध्वनि आ रही थी, उसी ओर घूम पड़े।

कुछ दूर आगे चलनेपर वे एक पर्वतकी आड़में बने वन्य कुञ्जके समीप पहुँचे। दूरसे देखा, एक शिला-खण्डपर एक अत्यन्त रूपवती रमणी, जिसका स्वरूप इस समय साक्षात् भैरवीका, और आकृति पागलोंकीसी है, बड़ेही अनोखे भावसे बैठी है। वह कभी गाती है, कभी रोती है। पासहीमें देव-कुमार जैसे चार बालक उसे घेरे बैठे हैं। जब उन्मादिनी रोती है तो बालक भी रोते हैं, जब भैरवी गाती है, तब समतान, समस्वर और समान कण्ठसे बालक भी गाते हैं।

परशुराम जैसेही उस रमणीके सामने जाकर खड़े हुए, वैसे ही वह चारों बालकोंके हाथ पकड़ उनके पास दौड़ आयी। मुँह बनाती हुई बोली—"क्यों जी? मुझे तुमने क्यों पुकारा था? तुम तो देखनेमे बड़े दयावान् मालूम होते हो।"

परशुराम—तुम कौन हो—

स्त्री—दयामय! दुःखिनीको नहीं पहचानते? मेरा नाम विजया है। कौशिकराज देवदत्तकी धर्मपत्नी और राजर्षि विश्वा-मित्रकी पुत्र-वधू हूं। दैवने मुझे राजरानीसे विधवा बना दिया, इसीसे आपकी शरणमें आयी हूं। दोहाई महाराजकी। पापी, क्षत्रिय-कुल-कलंक कार्त्तवीर्य्यार्जुनने विना अपराधही मेरे स्वामी-का खून कराया है। मैं अब अनाथिनी, भिखारिणी और पगली हो गयी हूँ। अब इच्छा है कि, भगवान्के आश्रममें रहूँ। कि



ब्रह्मचारी वेशमें परशुराम।

"परशुरामने देखा, शिला-खण्डपर एक अत्यन्त रूपवती रमणी बड़े ही अनोखे भावसे अपने चार बच्चोंके सहित बैठी है।" [पृष्ठ ९६]

यदि तुम न बुलाते, तो मैं कभी तुम्हारे पास नहीं आती। क्योंकि, मैं बड़ी अभिमानिनी हूँ। अब तुमने बुलाया है, तो मैंभी बिना विशेष अनुरोध-उपरोधके आगयी।

परशुराम—अहा! तुम उन्मादिनी हो। क्षत्रियोंके अत्याचारोंसे अनाथिनी और विधवा हो गयी हो। पर देखो तो, कौन कहता है कि, मैंने तुम्हें बुलाया है? मैं तो तुम्हारे नामसे भी अपरिचित हूँ!

विजया—नहीं बुलाया? दुःखिनीको देखकर तुम भी छल करते हो? तुम गुरुके कहनेसे थोड़ी देर पहले किसका आवाहन कर रहे थे?

परशुराम—धनुर्विद्या प्राप्त करनेके लिये, गुरुदेवके आदेशानुसार, नेत्र मूँदकर, मैं ब्रह्म-विद्याका आवाहन कर रहा था।

विजया—बस, होगया। मेरे पास जब स्वर्गकी समस्त सुख सम्पत्तियाँ थीं, तब मेराही नाम ब्रह्मविद्या था, इस समय चाण्डाल, अधम क्षत्रियके हाथोंसे लञ्छिता और अनाथिनी होगयी हूँ। इसीसे आप नहीं पहचानते।

परशुराम—ये बालक कौन हैं?

विजया—ये मेरी सन्तान हैं। मैं इनकी माता हूँ।

परशुराम—अहा! चारोंही बालक स्वरूपवान् हैं; मानो छद्मवेशी देव-कुमार हैं। भाइयो! तुम्हारा नाम क्या है?

चारों बालक—ज्ञान, विज्ञान, न्याय और दर्शन! भगवन्! हम सबका प्रणाम ग्रहण कीजिये।

परशुराम—तुमलोग मेरे पास किस लिये आये हो ?

ज्ञान—हमलोग अनाथिनी माताके पुत्र हैं, अतएव निराश्रय हैं। अब आपके आश्रममें निवास करने आये हैं। यहाँ रहेंगे और आप तथा आपके पिता, महर्षि जमदग्निकी सेवा करेंगे।

परशुराम—उन्मादिनी! तुम मेरे पास किस उद्देश्यसे आयी हो ?

विजया हँसकर बोली—"मैं क्यों आयी हूँ, क्या आप इस बातको नहीं जानते ? मैं आपके सच्चे प्रेमकी भिक्षा माँगने आयी हूँ। आपकी आराधना करने आयी हूं। अतएव हे प्रभो! जिस तरह भी हो, आप मेरी वासना-पूर्त्ति कीजिये। हाय! मैं एक दिन राज-रानी थी, आज अनाथिनी बनकर,—पथको भिखारिणी होकर—जङ्गलोंकी राख छानती फिरती हूँ। एक दिन मेरी त्रिलोकीभर आराधना करती थी, आज पगली कहलाकर सर्वत्र अनादर पा रही हूँ। अनाथ-नाथ! मुझे अपना आश्रय दो! कङ्गालिनीकी इच्छा पूर्ण करो।

परशुराम—तुम क्या चाहती हो ?

विजयाने इस प्रश्नके उत्तरमें क्रोधसे दाँत पीसते हुए कहा—"क्या चाहती हूँ ? सुनोगे ? मैं चाहती हूँ चाण्डाल, पिशाच, कुत्ते कार्त्तवीर्य्यार्जुनका मस्तक अपने इन पैरोंसे मसलना; उसके वंश, समस्त क्षत्रिय-वंशकी रक्त-तरंगोंमें तैरना! हः हः हा—प्रतिहिंसा, प्रतिहिंसा, प्रतिहिंसा।"

परशुराम—पगली! तुममें अभीतक आत्मबोध पना हुआ

है ! अच्छा, मैं तुम्हें निषेध करता हूँ कि, तुम मुझे नायक भावसे सम्बोधन न करो। क्योंकि, मैं ब्रह्मचर्याश्रमी और चिरकौमार-व्रतावलम्बी हूँ, मैं महर्षि जमदग्निका पुत्र हूँ—कामुक संसारी व्यक्ति नहीं हूँ। विशेषतः तुम विधवा और परनारी हो।

विजया—मिथ्यावादी ! शठ ! मैं परनारी हूँ ? क्या तुम परम ज्ञानी होकर भी नर और नारीमें भेद समझते हो ? चतुरराज ! मैं तुम्हारी दृष्टिमें परनारी हूँ ? अच्छा बताओ तो, मैं क्यों न तुम्हें प्रभो कह कर सम्बोधन करूँ ?

परशुराम—तुम परनारी और विधवा हो।

विजया—मैं परनारी हूँ;-बस, यही मेरा अपराध है ? यदि मैं विधवा न होती, तो तुम्हें प्रभो कहनेके लिये यहाँ क्यों आती ? अरे तुम तो पुत्र-हीन माता-पिताके पुत्र, भ्रातृ-हीनके सहोदर भ्राता पितृ-मातृ-हीन पुत्रके माँ-बाप हो। फिर तुम पतिहीना विधवा स्त्रीके प्रभु बनते हुए क्यों शर्माते हो ? तुम तो संसार भरके नातेदार हो।

परशुराम—माना कि, वसुधाभर मेरा कुटुम्ब है, पर मैं विधवा स्त्रीका नातेदार नहीं हूँ। ऐसा सोचनेमात्रसेही मेरा चिरकौमारव्रत भङ्ग होजायेगा।

विजया—कौन कहता है कि, मैं विधवा हूँ। धिक्कार है तुम्हें। हे सर्वस्वामिन् ! मेरे प्रभु बननेसे तुम्हारा चिरकौमारव्रत कभी भङ्ग न हो सकेगा। तुम मेरे स्वामी बनो, मैं तुम्हारी स्त्री होना नहीं चाहती। तुम मेरे प्राणनाथ बनो—मैं तुम्हारी प्रेयसी होना

नहीं चाहती। तुम मेरे हृदयके ईश्वर हो जाओ, मैं तुम्हारी दासी न बनूंगी। तुम मेरे सर्वस्वके सर्वेश्वर बन जाओ, मैं तुम्हारी कुछ भी बनना नहीं चाहती। तुम मेरे साकार देवता हो; मैं मनही-मन तुम्हारी पूजा करूँगी। पर याद-रखो और निश्चिन्त रहो कि,—मैं तुम्हारी छायाका स्पर्श तक भी न करूँगी, अतएव हे देव! मुझे निराश न करो, तुम्हारा व्रत किसी प्रकार भी भङ्ग न होगा; तुम्हारा धर्म किसी तरह भी अपवित्र न होगा; तुम्हारा देवा-दर्श हृदय कभी और किसी तरह भी कलङ्कित न होगा और तुम्हारा सूर्य्य-तुल्य यह देव-देह मेरी दृष्टिसे किसी प्रकार मलिन न होगा।

परशुराम—रमणी-रत्न! तब तुम किस स्वार्थसे मुझे प्रभु गाती हो?

विजया—निःस्वार्थ भावसे।

परशुराम—पगली! तुम सती-कुलकी रमणी हो। अपना यह नेः स्वार्थ-प्रेम देव-सेवामें उत्सर्ग क्यों नहीं कर देतीं?

विजया-तुमही तो देवादिदेव-सर्वदेव हो। अन्य किसी देवताकी सेवा करनेसे देव-व्यभिचार समझा जायेगा। तुम आश्रय-हीनके आश्रय हो; अपुत्रके पुत्रहो और इस युगके अवतार हो। समय आने-पर तुम्हें संसारी लोग ईश्वर कह कर पूजेंगे; तब मैं तुम्हें प्रभो कहकर क्यों न पुकारूँ? अतएव हे प्रभो! मेरे-इन आश्रय-हीन पुत्रोंकी ओर दृष्टि उठाकर देखो, इनकी क्या दशा हो रही है!

इतना कहते-कहते विजयाका गला रुँध गया; पूरी बात न निकली।

परशुराम इस दयनीय दृश्यसे दयार्द्र हो, करुण-कण्ठसे बोले "देवि! सत्य बताओ—तुम कौन हो?"

विजया—निष्ठुर! सर्वज्ञानी होकर भी अभीतक अज्ञान बने हुए हो? खैर सुनो; मैं हूँ ब्रह्मविद्या और तुम हो ब्रह्मण्यदेव; इसीसे प्रभो कहती थी। कार्त्तवीर्य्यार्जुनने मेरा सत्यानाश कर डाला है! मेरे पति देवदत्तको जीता ही मार डाला है; तथापि आप अभीतक निश्चिन्त हुए बैठे हैं और आपके आश्रितोंकी यह दशा हो रही है।

परशुराम—क्या कहा ब्रह्मविद्या! गायत्रि! वास्तवमें तुम आज विधवा, अनाथिनी और कंगली हो। ओहो! तुम्हारी इतनी विकट दुर्दशा! इतना अत्याचार! अच्छा, कोई चिन्ता नहीं; तुम अब निश्चिन्त मनसे मेरे आश्रयमें, महर्षि जमदग्निके सरस्वती आश्रममें चलकर विश्राम करो, मैं अपने जीवनकी बाजी लगाकर, तुम्हारी प्रतिहिंसाको पूर्ण कराऊँगा—तुम्हारे महिमा-गौरवकी पुनःप्रतिष्ठा करूँगा। आओ देवि! क्षत्रियोंके रक्तसे उन दुर्वृत्त क्षत्रियोंके रक्तसे तुम्हारी लीला-भूमि, भारतको धोकर पवित्र करूँगा; जिन्होंने ब्रह्मविद्या और उसकी सन्तान ज्ञानादि देव तथा ब्राह्मण जातिको अपने अत्याचारोंसे पीस रखा है।

इतना कहकर परशुराम, हाथके कुल्हाड़ेको सूर्य्य-किरणोंमें चमकाते हुए, अपने आश्रमकी ओर चल दिये। विजया भी अपने चारों पुत्रोंके साथ उनके पीछे-पीछे होली।

कुसुमकुमारी ।

१

"इन्दुलेखा ! सत्य कहती हूँ कि, मेरे पास सब कुछ है और कुछ भी नहीं है। ऐश्वर्य्य, सम्पत्ति और सुख, सब कुछ है, मेरे स्वामी जैसा रूप-गुण मय पुरुष पृथ्वीभरमें शायद ही कोई हो, सौन्दर्य्य और गुणोंमें उनकी कहीं समताही नहीं। तथापि मैं कङ्गाली हूँ। सखि! मेरे सर्व-गुणमय स्वामी; शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान पुत्र, सुख-दुःखको बँटानेवाली प्यारी सखियाँ और सन्तानके समान कर्तव्य प्रजा,—इस प्रकार मेरे पास सभी कुछ है; किन्तु मेरे हृदयमें सदा-सर्वदा रहनेवाली स्थायी शान्ति नहीं है। अतएव मैं जब जिस ओर देखती हूँ, उसी ओर मुझे सूना देख पड़ता है।"

"देवि ! इसका क्या कारण है? कारण मालूम होजानेपर तो उसके दूर करनेका प्रयत्न किया जासकता है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि, महाराजकी उद्दंत प्रकृति और उच्छृङ्खल स्वभावके कारणही आपके मनमें अशान्ति रहती है। विधाता समस्त गुण एकही वस्तुमें नहीं देते। यद्यपि हमारे महाराज सब गुणोंसे विभूषित हैं,

देवताकी भाँति महापुरुष हैं, तथापि महा चञ्चल चित्त रखते हैं। क्रोध तो मानो उनकी नाकपरही रखा रहता है। जब वे झोंक में आते हैं, तो भला-बुरा सब भुला बैठते हैं—खैर, वे सर्वजयी और अद्वितीय वीर हैं। उनके बारेमें किसी प्रकारके अमंगलकी आशंका करना वृथा है। देवि! वे दैव-बलसे बली हैं! उनका अमङ्गल असम्भव है।"

"सखि! दैव-बल अन्य सब प्रकारके भारोंको सहन कर सकता है; किन्तु पापका भार किसी प्रकारका भी बल सहन नहीं कर सकता। दैव-बल सत्कर्मोंसे तो बढ़ता है और दुष्कर्मोंसे क्षीण होता है. महाराजकी वर्त्तमान युद्ध-यात्राका उद्देश्य नहीं है; वरन् वे नीच, स्वार्थ-परायण, अधार्मिक लोगोंकी आश्रय होकर उच्च वंशका गौरव नष्ट करने, परायी... और स्वामी-सुहागिनी सतियोंको विधवा बनानेके ... हैं। बताओ इन्दुलेखा! दैव बलका क्या यही परिणाम हुआ करता है?"

महिष्मती पुरीके राजान्तःपुरमें, जो विभाग महारानी वसुमतीके बाँटेमें है, उसीके एक सजे-सजाये कमरेमें, एक दिन स्वर्ट महारानी वसुमती और उनकी प्रधाना सखी इन्दुलेखा ऊपर लिखी बातें कर रही थीं।

पाठक! महाराज कार्त्तवीर्यार्जुन युद्ध-यात्राका बहाना कर, धूमकेतु और मधुच्छन्दके भुलावेमें पड़, मन्त्री-पुरोहितके लाख समझानेपर भी—महाराज देवदत्तका सर्वनाश करने चले गये। महारानीने

भी कितनाही मना किया। वे कितनीही रोई-धोई; पर उन्होंने एक न सुनी। मदके भूतने उन्हें इस तरह अपने शिकञ्जेमें फस दिया कि, पृथ्वी टल जाये, आकाश फट पड़े, पर वे धर्माधर्मकी ओर आँख उठाकर भी देखना पसन्द नहीं करते। जो बात मनमें ठानली, उसे करनेके लिये तय्यार होगये। इसका नाम हठ या दुराग्रह है।

महाराज धर्मके सिरपर पदाघातकर, पाप-समुद्रमें कूद पड़े। महारानी वसुमतीके लिये चिन्ता और आशङ्काओंके बादल घिर आये। उन्होंने जीवन-धारणके लिये समान्यसा अन्न-ग्रहणकर, सारे सुखोंको तिलाञ्जलि दे दी। हरदम उन्हींका ध्यान और उनके सत्पथपर आनेके लिये उपाय-चिन्ता! इसीमें उनका सुख था, और इसीमें वे प्रसन्न रहती थीं। जो सखियाँ मन बह-लावका काम करती थीं, उन्हें विदा दे दी गयी। एकमात्र इन्दुलेखा—विपद्-सम्पद्की एकमात्र सङ्गिनी इन्दुलेखा—ही उनके पास रहकर, हर प्रकारसे महारानीका समाधान किया करती थी। अस्तु।

महारानीकी बात सुनकर इन्दुलेखाने कहा—"देवि! मनुष्य भ्रम और प्रमादका पुतला है। सौभाग्य-फलके भोगनेमें आत्म-विस्मृत हो, वह आगे-पीछेके सारे ज्ञानको भुला बैठता है। जिस समय वह अभागा, निर्धन और अत्यन्त साधारण अवस्थामें रहता है, तो अपनी उस प्रथम अवस्थामें, परम यत्नोंके साथ कठोर साधनाकर सौभाग्य-प्राप्त करता है, बादको उसी सौभाग्यके ऐश्वर्य-मदसे मत्त होकर अपनी परम साधनाके सौभाग्य-धनको

नष्ट कर डालता है। देवि! धर्म न छोड़ो—स्त्रीका कर्त्तव्य पालन करो। महाराजको प्राण-प्रणसे समझाओ। वे ज्ञानवान् हैं। अतः अब भी उनका स्वभाव बदल सकता है।"

वसुमती—सखि! उनके निर्मल स्वभावकाशमें—यौवनकी पश्चिम दिशामें-पापका काला मेघ पैदा होगया है। इस मेघका प्रभाव विना वर्षा हुए कम न होगा। वे युद्धमें सदा विजयी रहते हैं। हाय हाय! अब तक तो शायद वह सुखका राज्य श्मशान हो गया होगा। उसकी विधवा रानीके आर्त्तनादसे आजकल पृथ्वीका हृदय भी विदीर्ण हो रहा होगा। हाय! इन पति प्राणा विधवाओंके आँसू न मालूम कब मेरे सुखकी रेखाको धो डालें।

इन्दुलेखा—देवि! हताश न हूजिये। कमल-नालसे हाथी बाँधा जाता है। नारीका प्रेम-मृणाल यदि नररूप मत्त हस्तीको न बाँध सका, तो हमारे नारी-जन्मको शत बार धिक्कार है।

वसुमती—सखि! तुम उनके स्वभावसे परिचित नहीं हो। वे बड़ी जल्दी बन्धनमें बँध जाते और बड़ी जल्दी ही उसे छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। उनका स्वभाव बड़ा सरल है। वह सहजमें ही तो मलिन हो जाता है और सहजमें ही निर्मल हो जाता है। मैं उनमें कुछ भी दोष नहीं देखती। सारा दोष कुसङ्गका है। विहिमद्रा और धूमकेतुने ही उन्हें अधर्म-पङ्कमें फँसा रखा है।

इन्दुलेखा—अच्छा सखि! एक बात तो बताओ। क्या

विष्टिभद्रा तुम्हारी सौत है? क्या सचमुच वह महाराजकी विवाहिता स्त्री है?

वसुमती—सखि! विष्टभद्रा स्वभावसे वेश्या और कार्य्यसे नर्त्तकी है, पर सम्बन्धमें सचमुच मेरी सौत लगती है। महाराजने यद्यपि उसके साथ शादी की है, तथापि लोग यह नहीं जानते, कि वह महाराजकी विवाहिता पत्नी है। कारण यह है कि, वह किसी नीचकुलकी कन्या है। सच तो यह है सखि! जिस दिनसे महारानी विष्टभद्राके साथ धूमकेतुका उदय हुआ है, उसी दिनसे हमारे राज्यके सर्वनाशका सूत्रपात हुआ है।

इन्दुलेखा—तो मालूम होता है, महाराज विष्टभद्रापर अधिक अनुरक्त हैं। राज-सभामें मन्त्री और आमात्योंकी अपेक्षा छोटी रानीके भाई, धूमकेतुका ही अधिक विश्वास करते होंगे। तब तो देवि! बड़ी विषम समस्या उपस्थित हुई है। साक्षात् पापने मोहिनी नारीके वेशमें अन्तःपुरमें प्रवेशकर महाराजको मोह लिया है एवं स्वार्थपरताने सेनापतिके वेशमें राजसभामें प्रवेशकर उन्हें ठग लिया है। अब क्या उपाय किया जाये! मेरी समझमें तो मन्त्री महोदयके साथ एकान्तमें परामर्श कर,—जिस तरह भी हो, पाप और स्वार्थपरताका एकदम उच्छेद कर डालना चाहिये। अन्यथा किसी तरह भी निस्तार नहीं है।

वसुमती—सखि! यदि राजसभामें कोई मनुष्य रूपमें देवता हैं, तो केवल मन्त्री महोदय ही हैं। किन्तु वे उदार चित्त, स्पष्टवादी और सरल हैं। छल-कपट, अथवा षड्यन्त्र-

रचना उनके स्वभावके विरुद्ध है। केवल उन्हींके सुशासनसे अभी तक यह राज्य बना हुआ है—उन्हींके पुण्य-बलसे इस राज्यमें अभी तक महाप्रलय नहीं हुआ, अन्यथा महिष्मती नगरी आजतक कभीकी राक्षसपुरी हो जाती।

इस प्रकारकी बात-चीत करती-करती महारानी और इन्दुलेखा किसी गहरे विचारमें पड़ गयीं। प्रचलित प्रसङ्गने अपनी ग्रन्थियोंको सुलझानेका प्रयत्न करनेके लिये बाध्य सा कर दिया। क्योंकि दोनोंमें एक अपने स्वामीकी मङ्गल-प्रार्थिनी थी, दूसरी रानी-राजा समेत समस्त साम्राज्यकी। निजत्वमें ममता होती ही है। फिर जहाँ अधिक अविचार और अपरिणाम-दर्शिताका सम्बन्ध फैला हुआ होता है, वहाँ विवेचक और हित-चिन्तकगणोंका उसके उद्धारमें अपना शरीर-पात कर देना स्वाभाविक ही है। अस्तु।

महारानी और उनकी सखी इन्दुलेखा महाराजको सुपथपर लाने और समस्त राज्यका कल्याण करनेका विचार करही रही थीं कि, सहसा वहाँ राजकुमार अजितसिंह आ गये।

उन्होंने आते ही माता और उनकी प्रधाना सखी इन्दुलेखाको विचार-विषण्ण देखकर पूछा—"मा! आज तुम उदास और अनमनी सी क्यों बैठी हो? आज तुम्हारा मुख सदाकी भाँति प्रसन्न क्यों नहीं देख पड़ता?"

वसुमती पुत्रके प्रश्नको सुनकर आपेमें आ गयीं। उन्होंने तत्काल उक्त विचार-मालाका परित्यागकर पुत्रको गोदमें उठा

लिया। बोलीं—"बेटा! तुम भी तो पहलेकी भाँति, सदा मेरे पास नहीं बैठे रहते। तुम्हें न देख दूसरे और किसको देखकर प्रसन्न होऊँगी। तुम तो स्वयं मेरे हृदयकी हँसी हो। फिर मैं तुम्हारे स्थानपर किसे देखकर हँसूँ।

अजितकुमार नीचा मुँह करके बोले—"हाँ, आजकल मुझे पहलेसे जियादः देर तक गुरुदेवके यहाँ रहना पड़ता है। जल्द चले आनेसे पूरी-पूरी पढ़ाई नहीं होती। खूब याद आयी, हाँ मा! बताओ तो, संसारमें कौन जाति श्रेष्ठ है? ब्राह्मण या क्षत्रिय?

वसुमती—तुम्हारे गुरुने क्या बताया है?

अजित—उन्होंने तो इस विषयको एकदम टाल दिया। अब ज़ियादः सिर हुआ—बहुत पीछे पड़ा-तो कहा, अपनी मातासे पूछना। परन्तु आज मैंने एक श्लोक पढ़ा है, जिससे ब्राह्मण ही श्रेष्ठ साबित होते हैं। क्षत्रियोंकी सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित करनेवाला प्रमाण तो वेद और पुराण किसीमें खोजनेपर भी नहीं मिलता। वह श्लोक यह है:—

कोटि ब्रह्माण्ड मध्येषु सन्ति तीर्थानि यानि वै।
तीर्थानि तानि सर्वाणि वसन्ति द्विज—पादयो॥

अर्थात् करोड़ों ब्रह्माण्डोंमें जितने प्रकारके भी तीर्थ हैं, वे सभी-ब्राह्मणोंके युगल—चरणोंमें हैं। बताओ मा! इतनी श्रेष्ठता और किसे प्राप्त है?

वसुमती—हाँ बेटा! सचमुच ही ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। एक क्षत्रिय ही क्या? संसारकी समस्त जातियाँ उनके चरणोंकी रज ग्रहण-

कर अपनेको परम धन्य समझती हैं। बेटा! तुम भी सदा ब्राह्मणों और देवताओंमें भक्ति रखना।

अजित—बहुत अच्छा मा! देखो मा! छोटी अम्मा मेरे ऊपर बिना बात नाराज़ हो जाया करती हैं। मैं उनसे न कभी कुछ कहता हू और न कभी उनका कोई काम ही बिगाड़ता हू। मेरे सामने जाकर—"छोटी अम्मा"—कहकर पुकारते ही, अपना मुंह फेर लिया करती हैं।

वसुमती—बेटा! एक आदमीको परिवारके समस्त लोग समान भावसे नहीं चाहते। सम्भव है, तुम्हारी माको जिस समय तुम उसके पास जाते हो, मुंह भर बोलने या प्यार करनेका अवसर ही न मिलता हो। अच्छा अबसे तुम तभी जाया करो, जब वे बुलाया करें, और समय आनेसे वे नाराज हो सकती हैं।

अजित—मा! मा-मा सब एकसी। तुम्हारे पास तो मैं जब मनमें आता है, तभी आ जाता हूँ, तुम क्यों न नाराज़ होतीं?

इन्दुलेखा—राजकुमार! तुम बारह वर्षके हो गये, क्या अब भी इतनी बातका भेद नहीं समझ सकते? ये इस लिये नाराज नहीं होतीं, कि तुम्हारी सगी माता हैं और छोटी रानी इस लिये नाराज़ हुआ करतीं हैं कि, वे तुम्हारी सौतेली मा हैं।

अजितकुमार—मौसी! क्या सचमुच मैं इतना अज्ञान हूँ? क्या मैं इतना भेद भी नहीं जानता? जानता भी कैसे, मैं बड़ी माका लड़का न हू? इनसे तो मैं इतना बड़ा हो जानेपर भी इस भेद-भावको न जान सका। जो कुछ समझा-सीखा है,

छोटी माँकी कृपासे। यदि मेरा जन्म छोटी माके गर्भसे होता, तो बारह वर्ष क्यों, पाँच वर्षकी अवस्थामें ही जान लेता कि, कौन माता है और कौन विमाता।

वसुमती—न बेटा! तुम ऐसी बातोंपर तनिक भी ध्यान न दिया करो। हम दोनों ही तुम्हारी मा हैं।

अजितकुमार—मा! आज मैंने मन्त्री महोदयके मुखसे सुना है कि, इसबार राज्यमें बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा है। पिछले सालसेही पानीकी एक बूँद नहीं पड़ी। क्यों मा! आजतक तो यह सब हुआ नहीं, अब अकाल-दुर्भिक्षोंका नाम क्यों सुन पड़ने लगा?

वसुमती—क्या करें बेटा! विधाता जो चाहता है, वही होता है। हमारे—तुम्हारे हाथमें क्या सामर्थ्य है। कलसे मैं शान्ति-स्वस्त्ययन करूँगी। इसके सिवा हम और क्या कर सकते हैं?

अजितकुमार—मा! पिताजी युद्ध-यात्रा करने गये हैं। वे अभी तक क्यों नहीं लौटे? पहले तो वे कहीं इतना विलम्ब नहीं करते थे। सुना है, रोज़ कितने ही दरिद्र-कङ्गाल राज-सभामें आकर महाराजकी बाट जोहा करते हैं। मैंने मन्त्री महाशयसे कह दिया है कि, 'आज मैं राजसभा देखने जाऊँगा। मा! तुम मन्त्री महाशयसे कह दो कि, मैं राजकोषसे थोड़ासा धन चाहता हूँ।

वसुमती—कितना धन चाहते हो बेटा?

अजितकुमार—दश हज़ार रुपये।

वसुमती—बेटा! महाराजकी बिना अनुमति पाये राज-कोष-से धन लेना अन्याय है। इस सामान्य धनके लिये राजकोषसे प्रार्थना करने की क्या आवश्यकता! चलो, मैं तुम्हारे इच्छानुसार धन देती हूं। भारत—राजकुमार दरिद्रोंको धन दान करेंगे—ऐसे शुभ कामके लिये धनका क्या अभाव? चलो बेटा! बातों बातोंमें बहुत समय बीत गया। चलो भोजन कर लो।



पाप-स्पर्श।

१०

ब्राह्म मुहूर्त्त बीत चुका था, जब पतिव्रता रेणुका, आज स्नानार्थ गङ्गा-तटपर गयी थीं। पतिकी पूजाका सामान यथास्थान रख, उन्हें स्नान करा और आसनपर बैठाकर जाते-न-जाते प्रायः दो घण्टे की देर होगयी थी। महर्षि जमदग्निने कहा—"प्रिये! आज तुम्हें स्नान करनेके लिये गङ्गा जानेमें देर होगयी है, इस लिये यहीं नहा लो।"

रेणुका बोली—"नाथ! जीवनका व्रत असम्पूर्ण रह जायेगा, जबसे श्रीचरणोंकी सेवा करने इस तपोवनमें आयी हूँ, तबसे नित्यप्रति गङ्गा-स्नान किया है। आज रोज़की अपेक्षा कुछ विलम्ब हो गया। इस विलम्बके कारण अपना सदाका नियम भङ्ग करना ठीक नहीं है। यदि किसी आवश्यक कामके अनुरोध-से आप ऐसा कहते हों, तो मैं आज्ञा-पालनके लिये तय्यार हूं।

जमदग्निने कहा—नहीं प्रिये! मेरा तो कोई ऐसा आवश्यक कार्य्य नहीं है, जिसके कारण मैं तुम्हें रोकूँ। बात केवल इतनीहीं है कि, पुत्रगण आकर देर तक बैठे रहेंगे। समय-पर तुम्हें न देखकर चिन्तित होंगे।

रेणुका—नहीं देव! ऐसा न होगा, मैं अभी पलभरमें स्नान किये आती हूँ।

यह कहकर रेणुका हाथमें जल-पात्र और वस्त्र उठाकर गङ्गा-की ओर चली गयीं।

तटपर पहुँचकर जैसे ही वे जलमें उतरीं, वैसे ही मलय-मारुतके एक झोंकेने उनके चित्तको चञ्चल कर दिया। वसन्तका मौसम! वनके सारे लता-वृक्ष यौवन-सुखका उपभोग कर रहे थे। पुष्पोंकी मस्तानी सुगन्ध, दूर-दूर तक, ज़मीनपर प्रकृतिके हाथोंसे बिछी, हरित् दूर्वा, देखनेसे तत्काल मन चुरा लेती थी। निर्मल नीलाकाश, और उसमें भी—कुछ देरबाद उदय होनेवाले सूर्यके आगमनकी सूचक लालिमा, बड़ी भली मालूम होती थी। छोटे-छोटे मृग-शावक अपने माता-पिताके पीछे-पीछे दौड़कर उनके दाम्पत्य-सुखको बढ़ा रहे थे। कोकिलाकी कुहुध्वनि और मयूरोंका केकारव मनको चञ्चल कर रहा था। नवमुकलित मालती, साक्षात् वसन्त-रूप आम्र-मौर और किशोर कामिनी चम्पक-कलिकाका अनोखा नाज़ मनको मतवाला किये देता था। यह दृश्य नित्य देखनेमें नहीं आता। आज ही यह परमात्माका विशेष दान है।

रेणुका—जितेन्द्रिय महर्षि जमदग्निकी एकान्त पतिव्रता-पत्नी रेणुका—कामन इस नज़ारेको देखते ही चञ्चल हो उठा। उनकी इच्छा हुई कि, आज कुछ देर तक समस्त तपोवनकी घूम-घूमकर सैर करनी चाहिये। उन्हें यह ख्याल न रहा कि, मुझे जमदग्नि इस

समय स्नान करनेके लिये क्यों मना करते थे। तदनुसार देवी रेणुका शीघ्रतासे स्नान-ध्यानकर, तपोवनकी सैर करने चल दीं। जैसे-जैसे वे आगे बढ़तीं, वैसे ही-वैसे उनके मनमें एक प्रकारका मृदु कम्पन सा उत्पन्न होता जाता था। अतः वे वनकी शोभासे आकर्षित होकर और आगे बढ़तीं जाती थीं।

घूमते-घूमते एक स्थानपर उन्हें एक अद्भुत दृश्य देख पड़ा। उन्होंने देखा, नदी-तट पर अतिसुन्दर एक वन्य कुञ्ज है। उसमें भाँति-भाँतिकी पुष्प-लताएँ अपने प्रिय कुन्द-, कदम्बोंका आलिङ्गन किये खड़ी हैं। उसीके बीचमें बड़ा ही मनोहर, हरित् दूर्वाका प्रकृति-दत्त आसन बिछा है और उसपर महर्षि जमदग्नि अद्भुत गन्धर्व-वेशमें विराजमान हैं। आज उनका रूप तपोवन-वासी तापसोंकासा नहीं है, वरन् आज वे इन्द्रके जैसी बहुमूल्य सज्जासे-सज्जित, कामदेवको लज्जित करनेवाले सौन्दर्य्यसे सुन्दर बने हुए हैं। ओठोंपर मुस्कान और निगाहोंमें बाँकपन समाया हुआ है। मानो रतिके साथ छलना करनेके लिये स्वयं कामदेव आ विराजे हैं।

रेणुका, पहले तो एकाएक यहाँ अपने पूज्य पतिको देखकर सहमीं, परन्तु जब उन्हें किसीकी ओर तिरछी दृष्टिसे देखते देखा, तब वे स्थिर न रह सकीं। मन एक तो पहलेसे ही चञ्चल था, अब मनोविकारके साथ-ही-साथ मोहनरूप पतिको पाकर एकदम उत्तेजित हो उठा। वे कामोन्मादसे मत्त होकर, अपने पतिको आलिङ्गन करने चलीं। कुञ्जके समीप पहुँचकर उन्होंने फिर

जमदग्निको सम्बोधन कर कहा—"प्रियतम! आप बड़े छली हैं। मुझे अपने आनेकी बात तक न बता, चुपचाप मदनरूप धारणकर इस निर्जन स्थानमें आ बैठे! आपका क्या इरादा है?"

जमदग्नि अब तक दूसरे ही ध्यानमें निमग्न थे। उन्हें अब तक यह बात न मालूम हुई थी कि, मेरे पास कौन खड़ा है। जब रेणुकाने उन्हें 'प्रियतम' कहकर पुकारा और उक्त बात कही, तब उनका ध्यान इधर आकृष्ट हुआ। वे रेणुकाकी ओर देख, एकायक हक्का-बक्कासे हो रहे। बोले—"तुम कौन हो?"

उक्त वाक्यको सुनकर रेणुका चौंक उठीं। आश्चर्य-चकित होकर मनही मन बोलीं—आज ऋषिका कण्ठस्वर कैसा हो गया है? और ऋषि-वेशके स्थानपर आज मैं इन्हें गन्धर्व-वेशमें क्यों देख रही हूँ? क्या यह किसी मायावीकी छलना है?

इतना सोचते ही रेणुकाका मन अत्यन्त व्याकुल हो उठा। उन्हें यह सुनकर और भी आश्चर्य हुआ कि, ऋषिने मुझे देखकर भी यह क्यों पूछा कि, "तुम कौन हो?" क्या पति अपनी पत्नीको कभी भूल सकता है? यह तो अवश्य कोई पापमयी प्रतारणा है। इस ख़यालके मनमें पैदा होते ही, वे अब वहाँ क्षणभरके लिये भी न रुक सकीं और तत्काल उल्टे पैरों पीछेको भाग चलीं। उन्हें इस प्रकार आते और एकायक भाग जाते देख, जमदग्निरूप मनुष्यके मनमें आश्चर्य तो हुआ, पर वह कुछ कर या कह न सका, वहींका वहीं—तद्वत्—बैठा रहा।

रेणुका आशंका और भयसे भीत होकर वहाँसे बेतहाशा

अपने आश्रमकी ओर भागी थीं। तदनुसार उन्होंने सरस्वती आश्रमकी सरस्वतीपीठके पास ही आकर दम लिया। दम लेकर आकाशकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर बोली—"हे दया मय! हे आशुतोष! तुम्हीं इस अबला नारी-हृदयके अन्तर्यामी देवता हो। हे देव! मेरे हृदयके सारे भाव आपके सम्मुख उपस्थित हैं। अतएव हे सर्वदेव! हे सर्वधर्म! आपही मेरे सती-व्रतके साक्षी हैं। मैं मुक्तकंठ और सरल—अकपट हृदयसे—कहती हूँ कि, मेरे हृदयमें पापका लेशमात्र भी नहीं है। जिस स्त्रीने सर्वाङ्ग सुन्दर, परम पुरुष परशुराम जैसे पुत्रको गर्भमें धारण किया है, उसके जीवनमें पापका स्पर्श होना असम्भव है। धर्मके निकट पाप-पुण्य होनेके सिवा लोक-दृष्टिसे पाप-पुण्यका विचार नहीं होता।"

इतना कहकर जैसे ही वे चिन्तामें निमग्न होने लगीं, वैसेही उन्हें याद आया कि, आज स्नान करने जाते समय महर्षिने आज्ञा दी थी कि, जल्दी लौटना; पर आज मुझे और दिनकी अपेक्षा बहुत ज़ियादः देर होगयी है। अब चलूँ, जल्दीसे महर्षिकी सेवामें जा पहुँचूँ, ऐसा न हो जो ज़ियादः देर होजानेसे वे नाराज़ हो जायँ!"

इतना कहकर रेणुका पतिके समीप जा पहुँची, महर्षिने सोचा, रेणुका अन्य दिनकी आपेक्षा आज बहुत देरसे आयी है। मुखपर भय, चिन्ता और हवाइयाँ सी उड़ रही हैं। पैर विक्षप्तोंकी भाँति आगे पड़नेकी जगह पीछे पड़ रहे हैं। अतएव पूछा—"रेणुका! आज तुम्हारा चित्त इतना चञ्चल क्यों हो रहा है? दिव्य-मुख-कान्ति

इतनी म्लान क्यों पड़ गयी है? आज तुम्हें स्नान करनेमें इतना विलम्ब क्यों हुआ?"

रेणुका कम्पित कण्ठसे बोलीं—"पतिदेव! अब मैं इस चिन्ताका भार नहीं सहन कर सकती। अब क्षमाकर दासीकी रक्षा कीजिये। इस अप्रकाश्य अग्निकी ज्वाला और कबतक हृदयके भीतर सुलगाती रहूँ। भुस्सीकी जैसी आग, जिसमें शिखा नहीं, धुआँ नहीं—जिसका दाह तीव्र और वेदना तीखी है! स्वामिन्! निश्चित पापकी अपेक्षा अनिश्चित पाप बड़ा भयानक होता है। हे देव! आप तपस्वियोंमें श्रेष्ठ हैं। कृपा कर तपोबलसे मेरे हृदयको देखिये और बताइये नाथ! मैं पापिनी हूँ या निष्पापा?"

जमदग्नि—तुम्हारी वर्तमान अवस्थाको देखकर मैं यह कुछ भी न समझ सका कि, तुम क्या कह रही हो! मालूम होता है, किसी पाप-चिन्तासे पीड़ित हो। असल बात क्या है, बताओ न!

रेणुका—नहीं, मेरी जिह्वा ऐसी धृष्टता करनेके लिये न खुलेगी। देव! मैं ज्ञान-हीना स्त्री हूँ। आप योगबलसे मेरे हृदयकी व्याकुलताका अनुभव कीजिये।

जमदग्निने अब नेत्र मूँदकर योगबलसे सारी घटनायें जानलीं। बोले—"रेणुके! इस समय मैं तुम्हारे समस्त गतकर्मोंको स्पष्ट भावसे देख रहा हूँ। तुमने आज कौशिकी नदीके तटपर परपुरुषपर दृष्टिपात किया है।"

रेणुका—क्यों दृष्टिपात किया, यह भी तो कहिये ?

जमदग्नि—कौतुहलके वश होकर।

रेणुका—कौतुहलका क्या कारण था ?

जमदग्नि—मेरे रूपके साथ उस परपुरुषके रूपकी विलक्षण समानता थी।

रेणुका—वह कौन आदमी था ?

जमदग्नि—छद्म-गन्धर्व-वेशी दुर्वृत्त कार्त्तवीर्य्यार्जुन।

रेणुका—उसका क्या उद्देश्य था ?

जमदग्नि—ब्रह्मविद्या रूपिणी विधवा विजयाको छलना।

रेणुका—उसे देखनेसे मेरे सतिधर्ममें किसी प्रकारका पाप स्पर्श तो नहीं हुआ ?

जमदग्नि—ज्ञानकृत नहीं, अज्ञानकृत सामान्य पाप-स्पर्श अवश्य हुआ है।

रेणुका—यह कैसे ?

जमदग्नि—अच्छा, यह बताओ कि, तुम्हें उसे देखनेसे मेरा धोका हुआ था या मेरे धोकेसे तुमने उसे देखा था ?

रेणुका—उसे देखकर ही आपका धोका हुआ था।

जमदग्नि—इसीसे इस देखनेका नाम अज्ञानसे किया हुआ सामान्य पाप है। पाप-प्रवृतिके वशमें होकर अथवा वैसे ही परपुरुषको देखना सतिधर्मके विरुद्ध है।

रेणुका—अच्छा महाराज! तब इस पापका प्रायश्चित्त क्या है ?

जमदग्नि—एक सप्ताहतक मौनव्रत धारण पूर्वक निरन्तर

स्वामीके चरणोंका ध्यान करते रहना एवं स्वामीकेही चरणामृतको पानकर जीवन-धारण करना।

रेणुका हाथ जोड़कर बोली—"स्वामिदेव! आज मैं अपने हृदयकी सच्ची बात निष्कपट भावसे आपको सुनाती हूँ। जीवका किया हुआ पाप, पुण्य, धर्म और अधर्म सिवा अन्तर्यामी भगवान्‌के और कोई नहीं देख सकता; इस लिये भगवान्‌के सिवा कोई किसी जीवको पापके प्रायश्चित्तकी विधि भी नहीं बता सकता। आप दैवशक्ति सम्पन्न महापुरुष हैं। अतएव आपने ध्यान द्वारा मेरे हृदयका हाल जान लिया; किन्तु आप विधाताकी इच्छा तो न जान सके?—स्वभावकी विधिको तो न देख सके? स्त्रीमें रूप, यौवन, प्रेम और विलास क्यों होता है? ये सब चीज़ें उसे अपने स्वामीकी सेवामें क्यों समर्पित करनी पड़ती हैं? इस प्रश्न का स्पष्ट समाधान कोई नहीं कर सकता। मेरी समझमें तो स्त्रीका रूप, यौवन, प्रेम और विलास निश्चय ही स्वाभाविक है एवं उन सबको स्वामीके चरणोंमें समर्पण करना भी स्वभाव की विधि है। बताओ नाथ! रूप-यौवनकी भोग-लालसा स्वभाव-सिद्ध है या नहीं?"

जमदग्नि पत्नीके उक्त मीमांसा-करणको सुनकर कुछ आश्चर्यमें आये। नम्र और गम्भीर स्वरमें बोले—"हाँ रेणुका! बात तो ठीक कह रही हो। वास्तवमें प्रवृत्ति स्वभावका नियम है; किन्तु निवृत्ति स्वभावकी मुक्ति है। प्रवृत्ति और निवृत्तिमें जातिगत सम्पर्क है। क्षत्रिय-कन्या ब्राह्मणकी पत्नी हो सकती है; किन्तु

धर्मपत्नी होना उसके लिये सहज-साध्य नहीं है। तुम क्षत्रिय-राज-कन्या हो। मैंने अपनी इच्छासे, तुम्हारे पिता प्रसेनजित् से तुम्हें माँग-कर पाणिग्रहण किया था। उस समय सोचा था, मेरी स्त्री होकर तुम धन्य हो जाओगी, किन्तु मैंने एक दिनके लिये भी तुम्हारी जाति-सुलभ राजसिक प्रवृत्तिको कभी सात्विकी निवृत्ति पर लाने-की चेष्टा नहीं की। उस भ्रमको अब समझ सका हूँ।"

रेणुका—स्वामिन्! आप उच्चवंशमें उत्पन्न हुए तपस्वी ब्राह्मण हैं। सत्वगुण आपका स्वभाव है। मैं क्षत्रिय राजकन्या हूँ। राजसिक-प्रवृत्ति मेरे रक्त-मांसका धर्म है। महर्षि जमदग्निने मेरा पाणि-ग्रहण किया। मैं धर्म-दृष्टिसे पवित्र हो गयी; किन्तु उससे मेरी स्वभावगत रक्त मांसकी शक्ति दूर नहीं हुई। इसीसे मैं रूप, यौवन, विलास और प्रेमकी भोगलालसाको पूर्ण रूपसे नहीं त्याग सकी। तात्पर्य यह कि, मैं इस जीवनमें ब्राह्मण-स्वामी-देवकी ब्राह्मणी नहीं हो सकी। पूज्यपाद गुरुदेवकी शिष्याकी भाँति मैंने आपकी चरण-सेवा की है। स्वामीकी सेवा करना स्त्रीका सारधर्म है; इसी विश्वासपर लक्ष्य रखकर मैंने केवल गुरु-सेवा की है। अपने नारी-जन्मके सारधर्म स्वामी-सेवासे वञ्चित ही रही, अतएव मैं पापिनी हूँ। यह ज्ञानकृत पापही मेरा सच्चा पाप है। अन्यथा अकस्मात् परपुरुष-दर्शनसे—दुर्वृत्त और पापोंकी पाप छलनासेभ्रान्त होकर, दूसरे पुरुष को देखनेसे कभी सतीधर्ममें पाप-स्पर्श नहीं हो सकता। मैं मुक्तकण्ठसे उस पापको अस्वीकार करती हूँ। उसके प्रायश्चित्तको अमान्य करती हूँ।

जमदग्नि—रेणुका! तुम्हारे कहे इस ज्ञानकृत पापकी दायी, तुम नहीं, वरन् मैं हूँ। अतएव दायित्व-हीन पापका प्रायश्चित्त करना अनावश्यक है। यदि मैं यत्न करता, तो तुम्हें अपनी सच्ची सहधर्मिणी बनाकर निवृत्तिके मार्गमें लेजा सकताथा।

रेणुका—फिर कहती हूं स्वामिन्! परपुरुष-दर्शन यद्यपि मेरा ज्ञानकृत पाप नहीं है; क्योंकि मेरा जन्म आदर्श सती माताके गर्भसे, परम धार्मिक पिताके औरससे हुआ है महर्षि जमदग्निकी चरण-सेवाकर, मैंने अपने जीवनको पवित्र कर लिया है। नारायणावतार पुत्ररत्न रामको गर्भमें धारणकर शरीरको शुद्ध कर लिया है। अतएव मेरे लिये पाप-प्रवृत्तिके वशमें होकर, परपुरुषको देखना असम्भव है। तथापि जिस अज्ञानकृत महापापसे मैं पापिनी हुई हूँ, उसे मैंने मुक्त कण्ठसे स्वीकार कर लिया है। अब मुझे उस पापका प्रायश्चित्त करनेकी विधि बता दीजिये। मैं उसे सानन्द पालन करूँगी।

जमदग्नि—रेणुका! तुम अपने अज्ञानकृत पापका परिणाम इस समय अपने आपही समझ सकती हो। अतएव उस पापका गुरुत्व-लघुत्व समझकर, अपने आपही प्रायश्चित्त-निर्वाचन करलो।

रेणुका—गुरुदेव! आप दयाके सागर हैं। क्षमा आपका स्वभाव है। किन्तु देव! जिनके समीप पाप-पुण्यका वास्तविक विचार होता है, वे अन्तर्यामी भगवान् तो मुझे क्षमा प्रदान न करेंगे? मैं जब तक इस शरीरको धारण किये रहूँगी, तबतक दिन-दिन मेरे पापोंका भार बढ़ता ही जाये-

था। अतएव मेरी प्रार्थना है कि, दासीको जीवन-भारसे मुक्त कीजिये। यही मेरे पापका सच्चा प्रायश्चित्त है।

जमदग्नि—यह क्या रेणुका! मुझे स्त्री-हत्याके पापमें लिप्त करना चाहती हो?

रेणुका—नहीं, आपके सात्विक हृदयमें मैं तामसिक प्रवृत्तिका सञ्चार करना नहीं चाहती। आपके जैसे तापसश्रेष्ठ महर्षिकी स्त्री हत्या होना असम्भव है—मुझ जैसी अबला स्त्रीके लिये आत्मघात करना कठिन है,—यह विषय मैं अच्छी तरहसे जानती हूँ। तथापि मैं इस प्रकारका प्रायश्चित्त करनेका चिरकालसे दृढ़ संकल्प कर चुकी थी। और यही कारण है, जो आरम्भसे धर्मपुत्र परशुरामको, मैंने राजसिक वृत्तिशाली बनानेके लिये, अस्त्रशिक्षा दिलायी थी। वह अनुष्ठान मेरा पूर्ण होगया। परशुराम गुरु महाराजकी कृपासे रण-कुशल योद्धा बनकर घर लौट आया। अब आप उसेही आज्ञा कीजिये कि, वह मुझे पाप-भारसे मुक्त करे। अर्थात् परशुरामके हाथसेही मैं जीवन-पापसे छुटकारा पाना चाहती हूँ।

जमदग्नि—यह कैसी बात कह रही हो रेणुका? ऐसी आज्ञा देनेसे मुझे, और उसका पालन करनेसे पुत्र परशुरामको पाप न होगा? क्या मैं इतना नीच हूं कि, स्त्री-हत्या करनेके पापसे छुटकारा पानेके लिये पुत्रको मातृ-हत्याके पापमें लिप्त करूँगा? फिर ऐसे स्वार्थ-परायण पिताकी आज्ञाका पालन, पुत्र परशुरामही कैसे करेगा?

रेणुका—नहीं प्रभो! इसके लिये आप तनिक भी चिन्ता न करें। पापका दण्ड देनेमें पाप नहीं हो सकता। पिताकी आज्ञाका पालन करनेसे परशुरामको किसी भी तरहका पाप-स्पर्श न कर सकेगा। और हे महापुरुष! आप क्या भूल गये? एकबार अपने ज्ञान-चक्षुओंसे बैकुण्ठका दर्शन कर लीजिये न? आप तो इस समय स्नेह-भ्रमसे भ्रान्त हो रहे हैं; इसीसे तो पुत्रको न पहचान सके। स्नेहका पुतला आँखोंका तारा प्यारा परशुराम तो हमारा साक्षात नारायणका अवतार है। उसके लिये पाप पुन्य कैसा? वह पापियोंका उद्धार करनेके लियेही तो पैदाही हुआ है। वह किसीका शत्रु होकर, किसीका मित्र होकर, और किसीका पुत्र होकर—सारे संसारको पाप-भारसे मुक्त करेगा। तदनुसार सबसे पहले माता-पिताका उद्धार करना उसका प्रधान कर्त्तव्य है। उसके हाथोंसे जीवन मुक्त होकर हमें सद्गति प्राप्त होगी। अतः दयामय! इस दासाकी इच्छाको पूर्ण कर दीजिये।

जमदग्नि—रेणुका! मायाको जीतना जीवोंके लिये अति दुःसाध्य काम है। आज मैं पच्चीस वर्षसे तुम्हारे साथ सुखवास कर रहा हूं। आज एक मुहुर्तमें, इतने दिनोंमें दृढ़ हुए उसी माया-बन्धनका टूटना अत्यन्त कष्टसाध्य है। किन्तु तुम्हारे अकपट आत्म-प्रकाशसे इस समय मैं मायाके मोहसे मुक्त हो गया हूं। तुमने अपने नारी-जीवनमें नारीहृदयके आत्मत्यागका अच्छा दृष्टान्त दिखाया है। मैं ज्ञानवृद्ध सात्विक तपस्वी होकर भी तुम्हारे दृष्टान्त

का अनुसरण न कर सकूँगा। जाओ रेणुका! मैं मायामें बँधकर तुम्हारे परकालके पथमें कण्टक नहीं बिछाना चाहता। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो, मायाकी विशेष पूजा करना ठीक नहीं। हमारी संसारमें रहनेकी वासना तो पूर्ण ही हो चुकी है। उप-युक्त पुत्र, स्वयं नारायणावतार परशुराम हमारे परकालका मुक्तिदाता हमारे घरमें अवतीर्ण हुआ है। जाओ रेणुका! तुम्हारा कर्त्तव्य पूरा होगया। तुमने स्वामीको पुत्ररत्न उपहार दे दिया, अब परकालमें जाकर अक्षयसुख प्राप्त करो।



भीषण आज्ञा।

११

आइये पाठक! महर्षि जमदग्नि और सती रेणुकाको आश्रममें ही छोड़कर चलिये, आपको एक जुदी जगहमें ले चलें। वहाँ इस वक्त भी प्रकृति पूर्णरूपसे मूर्तिमयी होकर विराज रही होंगी। उनकी सन्तान देवगण, शिशुओंका क्रीड़ामय वेश, धारणकर हर्षकी हिलोरे लेते हुए, अपनी माताका मनोरञ्जन कर रहे होंगे। सारांश यह कि, यदि आपको स्वर्गका सात्विक दृश्य, इस भूलोकमें ही प्रत्यक्ष देखना हो, तो थोड़ासा कष्ट स्वीकार कीजिये। दो चार नदी-नाले और आकाश चुम्बिनी पर्वत-शिखाओंको पारकर सरस्वती आश्रमके बाहरी भागमें चलिये। देखिये वहाँ कितना सुखद दृश्य है! कैसा नेत्र-रञ्जन स्थान है! मानो प्रकृतिदेवीने स्वयं अपने हाथोंसे इसकी रचना की है।

अन्य स्थानोंपर एक-दो नदियाँ, और दो-चार पर्वत ही देखनेमें आते हैं, पर यहाँ कितनी ही स्वच्छ, सुन्दर सलिला तरङ्गिणी, कल-कल नाद करती हुई बह रही हैं।

कितनी ही पर्वत-मालाएँ श्रेणी-रूपमें विभक्त होकर स्वर्ग-स्वरूपा सोपान देख पड़ रही हैं! कहीं तरह-तरहके पक्षी हरी हरी वृक्ष-शाखाओंपर बैठकर चहचहा रहे हैं। कहीं उच्छ्वसित झरनोंसे स्वच्छ जल, झर-झर शब्द करता हुआ पृथ्वीपर गिरकर इधर-उधर बह रहा है। ऊपर आकाशमें धूसर रङ्गकी पोशाक पहने मेघसमूह, सन्ध्याकी रक्तिमाभासे रंगी हुई दिशाओंको उद्भासित कर रहे हैं। कहीं मृग-शावक और उनकी स्नेहशीला माताएँ, एक स्थानपर समूह बाँधे बैठी हैं एवं एक दूसरेको मधुर दृष्टिसे देखती हुई मन-ही-मन परमानन्दका अनुभव कर रही हैं।

ऐसे ही सुन्दर स्थानमें, भगवान परशुरामकी एक स्वाधाय-शाला बनी हुई है। भगवान्ने उसके चारों ओर विविध लता, भाँति-भाँतिके वन्य पुष्पोंके पौधे लगाकर, उसे अत्यन्त शोभा-शाली बना रखा है। यहाँपर वे विद्याध्ययन, माता पिता तथा गुरुकी सेवासे अवकाश पाकर, आ बैठते हैं और जब तक मन एकान्तका इच्छुक रहता है, तबतक यहाँ स्वाध्याय किया करते हैं। समयानुसार यह अतिथियोंकी सम्भ्यर्थनाके काममें भी लायी जाती है।

आजकल यह स्थान दिनके आठों पहर, अमृत-भाषी बालकोंके मधुर रवसे मुखरित रहता है। पाठकोंको मालूम होगा, कि महाराज देवदत्तकी विधवा महारानी विजयाने आजकल भगवान् परशुरामकी शरण ले रखी है। पर-दुःख-कातर परशुरामने

विजयाको सर्वसुखी और सदा-सन्तुष्ट रखनेके लिये यही निवासस्थान दिया है। उन्हींके ज्ञान-विज्ञानादि चारों पुत्र अपने कल-कण्ठी गान और मधुर सम्भाषणसे हर समय माताको सुखी तथा आश्रमको मुखरित रखते हैं।

प्रिय पाठक! विजया यहाँपर वास्तवमें सर्वसुखी है। परशुरामके सेवा-विधानसे उसे क्षणभरके लिये भी शारीरिक कष्टका अनुभव नहीं होता। हाँ, मानसिक दुःख—हृदयेश्वर देवदत्तका विरह,—अब भी याद आनेपर मर्म्मान्तिक वेदना पैदाकर देता है।

पर-दुःख-कातर परशुराम, यहाँ प्रातः और सन्ध्या दोनों समय आकर विजयाकी सांसारिक आवश्यकताओंकी पूर्त्ति कर जाते हैं और दुखिया विजयाके कष्ट-क्लिष्ट हृदयको दो चार उपदेशोंसे शान्ति-प्रदान कर जाते हैं।

दिनके पहले पहरका समय है। स्फूर्त्ति दायिनी सूर्यकी किरणें तथा मनको शान्ति देनेवाला मलयपवन वनचारियोंके मनोंको बड़ी निपुणताके साथ आमोदित कर रहा है। विविध पक्षियोंका कलनाद होते हुए भी आश्रममें आश्चर्य्यमय शान्ति विराजमान है। हरिणियाँ और उनके छौने चारो ओर दौड़े फिरते हैं, तथापि वनकी शान्तिमें तनिक अन्तर नहीं आया है। विजयाके चारो बालक माताको घेरकर बैठे हैं और गा-बजाकर उनका मनोरञ्जन कर रहे हैं।

ऐसे ही सुन्दर आश्रममें, नित्यकी भाँति भगवान् परशुराम

आज भी वहाँ आये और आकर सबसे नियमानुसार कुशल-मंगल तथा अभाव-अभियोग पूछने लगे।

विजयाने चारो पुत्रोंको सामने कर, परम श्रद्धासे हाथ जोड़ते हुए कहा—"प्रभो! मैं तो आपकी दासी हूँ। आप मुझे यहाँ खाली बैठाये रखकर कर्त्तव्य-विमुख न कराइये, वरन् अपनी सेवा कराइये। मैं आपकी दासी और ये चारों बालक आपके दासी-पुत्र हैं। कृपा करके बताइये कि, हम किस तरह आपकी सेवा करें।

परशुरामने कहा—"विजया! अच्छा, यदि तुम काम करनेके लिये विशेष आग्रह करती हो, तो लो; आजसे तुम्हारा बड़ा लड़का मेरे पिताकी परमप्रिय, नन्दा कामधेनुकी सेवामें रहेगा, दूसरा उनके यज्ञ-होमके लिये कुश और समिधा ला दिया करेगा, छोटे दोनों लड़के सदा तुम्हारी ही सेवा करेंगे। रह तुम्हारे लिये कोई काम, सो तुम आजसे माता रेणुकाकी सेवा किया करो।"

विजया—प्रभो! आज्ञानुसार हम सब तो आपके माता-पिताकी सेवा करनेमें लग जायेंगे, फिर आपकी सेवा कौन करेगा? अतएव हमलोग जिसकी सेवा करने आये हैं, उन्हींकी सेवा करेंगे; क्योंकि, बिना इष्टदेवकी पूजाके मुक्ति मिलना असम्भव है।

परशुराम—विजया! रुचिके अनुसार ही तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। किन्तु जबतक मैं तुम्हारे पदपर तुम्हारी पुनः प्रतिष्ठा

न करवाऊँगा, तबतक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। इस समय मैंने जैसी व्यवस्था कर दी है। उसीके अनुसार काम करो। और सुनो! मैं तुम्हारे इन चारों पुत्रोंको युद्ध-विद्या सिखाऊँगा। इनके अस्त्र-बल और अपने बाहु-बलद्वारा तुम्हारी प्रतिहिंसा-वृत्तिको चरितार्थ कराऊँगा। ये बालक युद्ध-कालमें मेरी सेना या सहचर होंगे।

विजया—प्रभो! आपकी इच्छा पूर्ण हो। मैं तो इसी आशा-अमृतको पीकर अबतक जीवन-धारण किये हुए हूँ।

बात अभी पूर्ण भी न होने पायी थी कि, वहाँ सहसा महर्षि जमदग्नि आगये और आतेही बड़ी व्यग्रताके साथ विजयासे बोले—"विजये! थोड़ी देरके लिये तुम रेणुकाके पास चली जाओ। आज उन्हें अन्य दिनोंकी अपेक्षा जियादः फूल चुनने पड़ेंगे, तुम उनकी सहायता कर देना।"

विजया प्रसन्नताके साथ—"जो आज्ञा—" कह कर चल दीं। उनके चले जानेपर जमदग्नि उनके ज्ञान और विज्ञान दोनों बड़े पुत्रोंकी ओर लक्ष्य करके बोले—"सुनो बेटा! तुम दोनों नन्दाके लिये तृण एकत्रित कर लाओ। और न्याय-दर्शन! बेटा, तुम मेरे होमके लिये समिधाएँ चुन लाओ।"

माताकी भाँति बालक भी प्रसन्नता पूर्वक महर्षिका आज्ञा-पालन करने चल दिये।

सबके चले जानेपर परशुराम पितासे हाथ जोड़कर बोले—"पितः! निरवलम्ब और कर्म-हीन जीवन बड़ा ही कष्टदायी होता

है। मैंने माताकी इच्छा और आपके आदेशसे अस्त्र-शिक्षाको सम्पूर्ण कर दिया। अब मुझे उपदेश दीजिये कि, किस कर्त्तव्यको पालन करना होगा? कौनसे व्रतका अवलम्बन करना होगा?"

जमदग्नि—वत्स! आज मेरे, विशेषकर रेणुकाके लिये, बड़े ही आनन्दका दिन है। आजसे मैं तुम्हारे जैसे उपयुक्त पुत्रका अवलम्बन पाकर निश्चिन्त हो गया। रेणुकाभी जीवनभरके लिये निश्चिन्त हो गयी। अब तुम सबसे पहले माता-पिताकी सेवा करो। देखें बेटा! तुमने अबतक कैसी शिक्षा पायी है, उसकी परीक्षा तो कर देखें। हाँ, बताओ बेटा! पिता कौन होता है?

परशुराम—पिता स्वर्गः पिताधर्मः पिताहि परमं तपः।
पितरि प्रीतमापन्ने प्रीयन्ते सर्व देवताः॥ *

जमदग्नि—ठीक है बेटा! तुम जैसे सुपुत्रोंके मुखसे ही ऐसे वाक्य सुन पड़ते हैं। पर बेटा! यह तो बताओ, उक्त उक्ति कार्य्यमें भी परिणत की जा सकती है या नहीं? त्रिलोकी भरमें कोई भी जीव ऐसा है, जो इस वाक्य को सफल बना सके? अच्छा बेटा! बताओ तो, तुम पितृ-आज्ञा-पालन करनेमें कहाँ तक आत्म-त्याग कर सकते हो?

परशुराम—आप आत्म-त्यागकी बात कहते हैं, मैं सर्वस्व-

---

*पिता स्वर्गस्वरूप हैं, पिता साक्षात् धर्म हैं और पिता ही परम तप हैं। पिताके प्रसन्न रहनेसे सारे देवता प्रसन्न रहते है।

त्याग कर सकता हूँ। शरीर और प्राणों तकका त्याग कर सकता हूँ।

जमदग्नि—अच्छा, यदि कोई वस्तु प्राणोंसेभी अधिक प्रिय होगी, पिताकी प्रसन्नताके लिये, क्या तुम उसका भी परित्याग कर सकते हो?

परशुराम—प्राणोंसेभी अधिक प्रिय वस्तु कौनसी है पिता?

जमदग्नि—"पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिताहि परमं तपः" —यदि पिता ही सर्वस्व स्वरूप है, तो पिताके लिये स्वर्ग, धर्म और परम तपका त्याग किया जा सकता है; इस लिये प्राणों-सेभी अधिक प्रिय वस्तु—सबसे अधिक प्रिय विषय, परलोक, धर्म और इष्टदेव हैं। क्या तुम मेरी आज्ञाका पालन करनेके लिये धर्म, परलोक और इष्टदेवका भी परित्याग कर सकते हो?

परशुराम—कर सकता हूँ! अवश्य कर सकता हूँ! यदि न कर सकूँ, तो मैं पिताका सच्चा पुत्र नहीं, वरन् नरकका तुच्छ कीड़ा हूँ।

जमदग्नि—सत्य कहते हो?

परशुराम—आपके पवित्र चरणोंका स्पर्श करके कहता हूँ कि सत्य, परम सत्य और ध्रुव सत्य कहता हूँ।

जमदग्नि—तब सुनो परशुराम! आज तुम्हारे जीवनकी प्रथम परीक्षाका दिन है—पहले प्रतिज्ञा-पालनका दिन है। हृदयको फैलाओ, कानों और मनको एकाग्र करके मेरी बात सुनो। आज मैं तुम्हें यह आज्ञा देता हूँ कि, जिसके सामने, जिसका पदस्पर्श करे,

जिसकी आज्ञाका पालन करनेके लिये तुमने परलोक, धर्म और इष्टदेव तकका परित्याग करदेनेका प्रण किया है, उसी तुम्हारे जन्मदाता पिता जमदग्नि ऋषिकी आज्ञा है कि, आज तुम अपने हाथसे, निर्विकार चित्तसे, आँखोंसे बिना एक अश्रु गिराये, प्रसन्न होकर अपने इस तीक्ष्ण कुठार द्वारा अपनी गर्भ धारिणी माता रेणुकाका मस्तक काट लाओ।

इस वाक्यको—इस भीषण, अनूठी और अपूर्व आज्ञाको—सुनतेही दृढ़ प्रतिज्ञ, आदर्श पुत्र परशुरामपर मानो बिना बाद्-लोंके वज्र घहरा पड़ा। वे कानोंमें अँगुली देकर, विस्मय विस्का-रित नेत्रों और अत्यन्त करुण कण्ठसे बोले—"ओह! ओह! यह कैसी भीषण आज्ञा है! मानो असंख्य बिजलियोंका एक-साथ संघर्षण है! कैसी भाषा है! मानो हज़ारों ज्वालामुखि-योंका एकसाथ आग उगलना है! कैसे शब्द हैं! मानो युगोंका विच्छेद करनेवाली प्रलयकालकी पृथ्वीका भयानक कम्पन है। आह! निराकार अग्निमय शब्द-वज्र कानोंके मार्गसे हृदयमें प्रवेशकर मेरे हृत्पिण्डका विदारण कर रहा है। ओह! कैसा व्यङ्ग और कैसी छलना है!"

जमदग्नि—नहीं वत्स! यह व्यङ्ग और छलना नहीं, वरन् सरल सत्य है। व्याकुल मत हो। मेरा तपोधन और ब्रह्मण्य-धर्म साक्षी है कि, मैंने तुम्हें एक आज्ञा दी है। जाओ राम! तर्क-युक्ति द्वारा मेरे सङ्कल्पका खण्डन करनेकी वृथा चेष्टा न करो और शीघ्र ही माताका मस्तक काट लाओ।

परशुराम—पितः! ब्राह्मणके लिये जीव-हत्या करना पाप है। पुरुषके लिये स्त्री-हत्या करना महापाप है और पुत्रके लिये मातृ-हत्या करना अति महापाप है। सोचिये, मेरे पापका परिणाम और उसका प्रायश्चित्त घोर नरकमें पड़ना होगा या नहीं? पित.! इस आज्ञाका पालन करनेसे मेरी क्या गति होगी?

परशुरामकी उक्त कातर उक्तिको सुनकर जमदग्नि क्रुद्ध हो उठे। बोले—"राम! तुम बड़े ही कायर हो! यदि आज्ञा-पालनमें असमर्थ थे, तो तुमने उसके पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा ही क्यों की थी? हटो मेरे सामनेसे; मैं तुम जैसे कायर पुत्रका पिता होना नहीं चाहता। जाओ, जब तक तुममें मेरी प्रतिज्ञा-पूर्त्तिका साहस न आजाये, तबतक मेरे सामने न आओ।

अब परशुराम प्रस्तर-मूर्त्तिकी भाँति अचल, अटल और निष्प्राणसे हो रहे। उपस्थित समस्याने उन्हें मानो कर्त्तव्य-विमूढ़ बना दिया। वे सोचने लगे, आज अन्तर्जगत्में यह कैसा भयानक युगान्तर उपस्थित हुआ है। ओह! मातृ-हत्या! अपने हाथोंसे माताका सिर काटना! जिस माताके पेटमें दसमास तक रहनेसे उसके जीवनके साथ अपना जीवन-सूत्र मिला रहा, जिस माताके हृदयका रक्त-पानकर सारा बचपन बिता दिया और अब भी जिस माताके भोजनमेंसे आधा भोजन खाकर यह शरीर धारण किये हुए हूँ, उसी माता—उसी स्नेहमयी स्वर्गीय प्रतिमा,—जिसको देखनेसे मा शङ्कराणीका स्मरण हो आता है—उसी पुत्र

वत्सला माताका—सिर इन कृतघ्न हाथोंसे काटना होगा! ओह! कैसी भीषण—कैसी भयानक, असहनीय कल्पना है।

जमदग्नि अपने योग-बलसे पुत्र परशुरामके हृदयका भाव समझ गये। अतएव औरभी क्रुद्ध हो ऊँचे स्वरसे बोले—"परशुराम! यह कल्पना नहीं, वरन् प्रत्यक्ष कर्म है। इसे तुम्हे अपने हाथोंसे ही पूर्ण करना होगा। आओ, अपने सत्यकी रक्षा करो, अन्यथा अत्यन्त भीषण नरकमें जा पड़ोगे। सावधान! परीक्षा-भ्रष्ट होकर, जमदग्निके औरसको कलङ्कित न करना! कुठार धारण करो। प्रतिज्ञा-पालनके लिये अग्रसर हो। मैं अब तुम्हारी एक भी बात न सुनूँगा।"

वाक्य समाप्त होते ही जमदग्नि वहाँसे चले गये। उन्होंने एकबार पुत्रकी ओर घूमकर भी न देखा।

परशुराम आँखोंमें आँसू भरकर, अपने हाथके कुठारकी ओर देखते हुए बोले—"इस कुठार—गुरुके दिये इस तीखे कुठार का—पहला वार माताके मस्तकपर होगा! गुरुदेव! क्या आपके दिये इस विशाल कुठारको पहले माताके रक्तसेही अभिषिक्त करना होगा! तब आपने इस रक्तमय उपदेशको अव्यक्त क्यों रखा? जिस व्रतको धारण करनेके लिये अस्त्र-विद्या सीखो, गुरुसे अस्त्र पाया उस व्रतकी प्रथम प्रतिष्ठा मातृ-रक्तसे होगी! और अन्तिम उद्यापन अनन्त नरकमें होगा!

"ओह! कैसी कठोर देववाणी हुई! महा तपस्वी जमदग्निका आदेश स्त्री हत्याके लिये! उनके पुत्रकोही मातृ-हत्या

करनी पड़े! इस उत्कट परीक्षाका क्या उद्देश्य है? क्या मेरी परीक्षा लेना! मेरी धर्मपरीक्षा लेना? क्या इस महा परीक्षामें कोई भी मनुष्य उत्तेजित हो सकता है?"

इतना कहते-कहते वे जोरसे रोपड़े। रोते-रोते कहा—"जो पशु हैं, वेही ऐसा पाशवकर्म कर सकते हैं। पिताने मुझमें किसी तरहकी पशुता देखी है, तभी तो उन्होंने मुझे ऐसा नृशंस कर्म करनेकी आज्ञा दी है। हा विधातः! जब मेरे हाथोंसे पाशव-धर्म निपटाना था, तब आपने मुझे यह दुर्लभ मनुष्य-देह क्यों दिया? ओह! मा! आपके गर्भसे मेरा जन्म! देवीके गर्भसे पशुका जन्म!"

अब परशुराम ध्यानस्थ हो गये। ध्यानस्थ होकर उन्होंने अपने मनमें सोचा, इस विषयमें न्याय और धर्मशास्त्रकी भी अनुमति लेलेनी चाहिये। न्याय कहता है, प्रत्येक मनुष्यका शरीर और जीवन उसके पितासे प्राप्त है। इसलिये उसके शरीर और जीवनपर पिताका सोलहआना अधिकार है। इस संसार-में मनुष्यका अपना कुछभी नहीं होता; स्त्री, पुत्र, माता, पिता, देह, जीवन, परकाल और पुण्यधर्म—इनमेंसे जिस-जिसको जिसके हाथसे पाया है, वही-वही उसे पानेका अधिकारी है; अतएव प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है कि, वह जिसकी वस्तु हो, उसेही समर्पित करदे। तदनुसार यदि मैंभी पिताकी वस्तु पिताको ही समर्पित कर दूँ, तो उसमें क्या दोष है? पिता परम देवता हैं। उन देवता-की श्रीचरण-पूजाके लिये अपने इहकाल और परकालको

उत्सर्ग करदेनेमें क्या हानि है? मातृ-हत्या करनेसे महापाप लगेगा लगे; महापापका परिणाम अनन्त नरक है,—उसमें हानि ही क्या है? पिताकी आज्ञासे मैं उस अनन्त नरकका सहर्ष आलिंगन कर लूँगा। पाप और पुण्य तो मनुष्यबुद्धिके लिये अगोचर हैं। मनुष्यके ज्ञानमें इतनी शक्ति नहीं कि, वह पाप-पुण्यका निर्णय कर सके। हमलोग जिसे पाप कहते हैं, सम्भव है कि, वह पाप न होकर मनका विकार हो! हे सोये हुए चैतन्य पुरुष! अब जागो और उठो! देखो, ईश्वरकी इच्छासे हरेक मुहूर्त्तमें करोड़ों जीव मर जाते हैं। वह किसका पाप है? क्या उस पुण्यमय परम पुरुषका? उस निर्विकार निरञ्जनका? नहीं, कभी नहीं। सब अपने कर्मफलसे मरते हैं जीवलीला संवरण करना माता-के कर्मफलका परिणाम है। यही उसकी भाग्य-रेखा है। इस भाग्य-रेखाका जो नियन्ता, प्रवर्त्तक और स्रष्टा है, उसीकी इच्छासे मैं आज मातृ हत्या करूँगा। इस लिये मुझे क्यों पाप लगेगा? मैं न तो कर्त्ता हूँ न कर्म हूँ और न कारण हूँ। पाप-पुण्य, धर्माधर्म, विकार-अविकार, सत्य-असत्य इन सबका जो सर्वमय आधार हैं, वही सब कुछ हैं। मैं तो कुछभी नहीं हूँ। वे मानो अपार महासागर हैं और मैं क्षुद्र जल-बिन्दु। परशुरामके हृदय! अब तू निर्विकार और निर्विकल्प हो जा। तुझे मातृ-हत्या करनी पड़ेगी। मा! हृद्-विदारिणी कुल कुण्ड-लिनी! तुम सर्व-साक्षी हो। मैं मातृ-हत्या करूँगा,। मातृ-हत्या! मातृ-हत्या!!

विचार-मालाका अन्तिम वाक्य परशुरामके मुंहसे कुछ ज़ोरसे निकल गया; इससे उन्हें चेत हुआ! आँख फाड़-फाड़कर चारो ओर देखा; कोई नहीं है। अतः वे हाथका कुठार सम्हालकर निश्चिन्त मनसे मा रेणुकाके पास चल दिये।

आज्ञा-पालन ।

१२

परशुराम जिस समय रेणुकाके समीप पहुँचे, उस समय देवी रेणुका विजयाके साथ अपनी आश्रम-कुटीर के बीच आँगनमें बैठी हुई, परस्परमें वार्तालाप कर रही थीं।

रेणुकाने कहा—"विजया! अब तो तुमने सब सुन लिया न? मेरे जीवनके इतिहासका सारा रहस्य जान गयीं न? अब कृपाकर मेरे जीवनके अन्तिम मुहूर्त्तकी एक प्रार्थना है। उसे तुम अवश्य पूर्णकर देना। देखो, मेरी मृत्युके बाद यदि लोग पूछें, कि रेणुका कैसी थी? तो कहना, वह स्वेच्छाचारिणी थी, पर द्विचारिणी या व्यभिचारिणी नहीं थी। रेणुका पापिनी नहीं थी, वरन् पापके भयसे आत्म-त्यागिनी थी। बेटी! ऋषि-पत्नी होकर मैंने आत्मसंयमकी काफी चेष्टा की, पर क्षत्रिय-शुक्र-शोणितकी शक्ति अतिक्रम न कर सकी। क्षत्रिय-कन्या होनेसे मुझमें ब्राह्मण-पत्नीके जैसा संयम न आ सका।"

विजया—मा! आप रमणियोंमें रत्नस्वरूपा और संसार धामकी आदर्शमाता हैं। आपकी साधारण मृत्यु होना विधा-

ताको स्वीकार नहीं है। स्वेच्छामृत्यु आपके जीवनका गौरव है। मा! आज्ञा दीजिये कि, मैं आपकी क्या सेवा करूँ! आप सर्वलोक-श्रेष्ठ पुत्रकी माता हैं। आपकी सेवासे पुण्य-प्राप्ति होती है।

रेणुका—बेटी विजया! मैं अतुल भाग्यवती हूँ। क्योंकि उपयुक्त स्वामी और पुत्रोंके रहते अपनी इच्छा और स्वस्थ शरीरसे, परम आनन्दके साथ, जीवन-त्याग करना चाहती हूँ। यह है न परम सौभाग्यका लक्षण? आज एकादशीका दिन है। एकादशीको सधवा स्त्रीका मरना बड़े गौरवकी बात मानी जाती है। अपनी मृत्युके समय सुहागिनी स्त्रियाँ एकादशीकी ही कामना किया करती हैं। विशेषकर आज स्नान करनेके समय कौशिकी नदीमें मैंने जीवित मछलीका मुँह देखा है। आज बड़ा शुभ दिन है। विजया! तुम रमणी हो, रमणियोंको अपने जीवनमें जो-जो इच्छाएँ रहती हैं, उन सबको तुम अच्छी तरह जानती हो। इस लिये आओ, मेरे मनमें आज श्रृङ्गार करने की आती है। कृपाकर मेरा श्रृङ्गार कर दो।

"जो आज्ञा मा!"—कह कर विजया कुटीके भीतर जाकर श्रृङ्गारका सारा सामान लायी और बड़े चावसे मन, लगाकर, देवी रेणुकाका श्रृङ्गार करने लगी। जब श्रृङ्गार, शेष हो गया। माथेमें सिन्दूर और शरीरमें सुन्दर वस्त्र तथा अलङ्कार पहना दिये गये, तब रेणुका दर्पणमें अपना मुख देखती हुई बोली—"वाह विजया! तुमने तो बड़ा सुन्दर श्रृङ्गार किया है। इससे तो

मेरे सधवा-जीवनकी सारी इच्छाएं पूर्ण हो गयी। बेटा विजया! मैं जानती हूँ कि, तुम साधारण स्त्री नहीं हो। मेरा अनुमान यह कहता है कि, तुम कोई स्वर्गीय देवी हो, और क्षमा-वेश धारणकर मानवी बनी हुई हो। अच्छा, अब तुमसे दो-एक अनुरोध करती हूँ, कृपाकर उन्हेंभी पूरा कर देना।"

विजया हाथ जोड़कर बोली—"मा! कौनसे अनुरोध हैं। निःसङ्कोच भावसे मुझे कहो। मैं तो तुम्हारी सेवाकर अपना जीवन पवित्र करने आयी ही हूँ।"

रेणुका—देखो बेटी! आजसे मैं, इस आश्रमका गृहणीत्व तुम्हें दान करती हू; तुम इस आश्रमको कभी न छोड़ना। मेरे पाँचो पुत्र—विशेषकर रत्न-रूप रामकी यत्न पूर्वक सेवा करना। उसे स्नान, भोजन, शान्ति और विश्राममें किसी प्रकार-का भी न कष्ट होने देना; मेरी नन्दा नामकी एक कामधेनु है, तुम उसकी भी सेवा करना। नन्दाके दुधमें बिना जल मिलाये परमान्न बनाकर, प्रतिदिन रामको खिलाना। यदि ऐसा न करोगी, तो नन्दा दूध देना छोड़ देगी। अर्थात् मेरी नन्दा परशुरामकी गौ-रूपिणी माता हैं। और सुनो, मेरे बाद मेरे स्वामीको कभी मेरा अभाव न अखरे, इस ओर भी दृष्टि रखना। आश्रममें पले हुए पशु और पक्षियोंको नियमित रूपसे भोजन देती रहना; इसके सिवा मुझे और कुछ नहीं कहना है।

रेणुकाकी बात अभी समाप्त भी न हो पायी थी कि, इसी समय कुठार हाथमें लिये, व्यस्तवेशी परशुरामने कुटीमें प्रवेश

किया। आते ही वे माताको प्रणाम कर बोले—"मा! मा! शान्ति धारण करो। बातोंका प्रसङ्ग यहीं छोड़ दो और स्थिर होकर पुत्रकी प्रार्थना सुनो। मैं एकबार मनुष्य-जीवनकी आशा पूर्णकर, मन भरकर जीवनभरके लिये, मा कहकर पुकारना चाहता हूँ। मा! मा! अहो! रसने! इस जीवनमें चाहे जितने सरस और नीरस, मधुर और कर्कश शब्दोंका उच्चारण करना; पर देवता, असुर, पशु और पक्षी, कीट और पतङ्ग, सबके लिये सुधासा मीठा मा शब्दका उच्चारण और कभी नहीं कर सकोगी।"

रेणुका—आओ बेटा! स्थिर होकर, शान्त, सुप्रसन्न भावसे हँसते हुए, एकबार तुमभी माताकी गोदमें बैठकर उसकी छाती शीतल करो। यदि आज मैं पतिदेवकी कृपासे, इस पापमय जीवनका परित्याग कर सकी, तो मुझे निश्चयही स्वर्गका परमपद प्राप्त होगा। किन्तु बेटा! तुम्हारी ही भाँति मैंभी तुमसा, गोदका गहना रूप पुत्र, त्रिलोकीभरमें न पासकूँगी। बेटा! आज तुम्हारी मनोहर मूर्त्ति देखनेमें बड़ी प्रिय प्रतीत हो रही है। आज तुम्हें देखकर मानो मेरे हृदयका क्षीर-समुद्र उथल रहा है। आओ बेटा! आओ स्नेहके देवता! आज एकबार उस पञ्चम वर्षीय बालककी भाँति मेरी गोदमें आकर बैठ जाओ।

परशुराम—तुमभी आओ मा! एकबार मेरे सामने स्नेहमयी अन्नपूर्णा होकर खड़ी हो जाओ। मैं एकबार जीवन भरके लिये मनभर देखूँगा। ओहो मा! क्या कहूँ? कैसे कहूँ? हृदयकी

जलती हुई आगके विषम उत्तापसे मेरी आँखोंके आँसू सूखे जाते हैं। रक्त जुहीकी भाँति रामका आधार रूप हृदय पिण्ड दग्ध हुआ जाता है। मा! तुम्हारे चरणकमलोंमें भक्तिपुष्प समर्पित न कर सका। हे मा अन्नपूर्णे! यह पापी पुत्र इच्छानुसार—मनके अनुकूल—तुम्हारी पूजा न कर सका।

रेणुका—घबराओ मत बेटा! तुम मेरे जीवनके मुक्तिदाता हो। आओ, मेरी आशा पूर्ण करो! मैं आँखें मूँदकर हृदय से तुम्हें आशीर्वाद प्रदान करती हूँ।

परशुराम—मा! मैं जानता हूँ कि, तुमने केवल एक पाप किया है। इस लिये मैं स्वयं पिताकी आज्ञासे उसका दण्ड देने आया हूँ।

रेणुका—नहीं बेटा! मैंने तो कोई पाप नहीं किया, मैं पापिनी नहीं हूँ, वरन् तुम्हारी गर्भ-धारिणी माता हूँ—अतएव पुण्यवती और भाग्यवती हूँ।

परशुराम—मा! यह क्या कम पाप किया है कि, मुझ जैसे महापापी मातृ-हिंसक पशुको अपने गर्भमें धारण किया? कुपुत्रको गर्भमें धारण करनेकी अपेक्षा और कौनसा महापाप हो सकता है?

रेणुका—कौन महापापिनी है?—क्या मैं? कुपुत्र कौन है? —क्या तुम? तुम्हें गर्भमें धारण करनेसे मैं महापापिनी हुई? भ्रान्त पुत्र! यदि तुम कुपुत्र होते, तो सुपुत्र कौन होता?—नारायण? साक्षात् हरि? न बेटा! मैं ऐसा सुपुत्र नहीं चाहती। तुम कुपुत्र ही मेरे हृदयके सर्वस्व हो,—जीवनके धन हो।

परशुराम—मा! मा! तुम भ्रान्त हो गयी हो। स्नेहकी भ्रान्तिसे तुम मुझे पहचान न सकीं कि, मैं क्षमा-वेशमें तुम्हारी मृत्यु हूँ।

रेणुका—मेरी मृत्यु! नहीं बेटा! मेरी मृत्यु नहीं, वरन् मेरे पापोंकी मृत्यु हो। आओ बेटा! मुझे इस पापी-जीवनसे छुटकारा दिलाओ।

परशुराम अबतक स्थिर थे. पर अब उनसे स्थिर न रहा गया। माताकी स्नेह-मयी मूर्त्तिको देखकर उनका पाषाणसे भी अधिक कठोर कलेजा काँप उठा। उनके दोनों हाथ थर्रा उठे। हाथका कुठार छूटकर ज़मीनपर गिर पड़ा। वे—"मा" कहकर ही चुप हो गये और दोनों हाथोंसे मुँह ढाँक कर नीरव रोदन करने लगे।

यह देख देवी रेणुकाने हँसते हुए कहा—"बेटा! इसमें दुःख करनेकी कौन बात है? यदि पिताकी आज्ञा है, तो लो यह मस्तक सामने हैं! ज़मीनसे कुठार उठाकर अपना कर्त्तव्य-पालन करो। मैं तो देरसे तुम्हारा आसरा देख रही थी।"

इतना कह उन्होंने एकबार आकाशकी ओर देखा और सूर्य्य भगवान्‌को उद्देश्यकर कहा—"हे सूर्य्यदेव! तुम धर्म-मय भगवान्‌के उज्ज्वल ज्योतिर्मय नेत्र हो। अतएव साक्षी रहो कि, मेरे प्राण-नाशसे पुत्र परशुरामके जीवनमें किसी तरहभी पापका स्पर्श न होने पावे। रामका सरल मन कभी अनुतापसे दुःखित न होने पावे। हा पुत्र! इस बातका मनमें बड़ा भारी

क्षोभ रहेगा, कि तुम जैसे त्रैलोक्य-दुर्लभ पुत्रका सुख, बहुत दिनों तक न देख सकी। खैर, अब आओ पुत्र! अपने पिताकी आज्ञा-का सहर्ष पालन करो। मैं पूर्णतया प्रस्तुत हूँ।"

परशुराम उक्त अन्तिम वाक्यको सुनकर चौंक पड़े। होशमें आकर उन्होंने ज़मीनमें गिरा हुआ परशु फिर उठा लिया। उन्मत्त भावसे ऊपरको देखते हुए बोले—"संसारके मनुष्यो! आँखें खोलकर देख लो। मैं इस समय पिताकी आज्ञाका पालन कर रहा हूँ। जो माके पुत्र हैं, वे इस समय चाहे जहाँ हों, वायुके सर्वव्यापी तारतम्यसे मेरे शब्दोंको सुन लें कि, मैं अपनी माताका वध कर रहा हूँ। सावधान लोगो! इस दृश्यको देख कर कोई काँपे नहीं; अचलसे भी अचल होकर देखलो! मैं मातृ-हत्या कर रहा हूँ। हे विराट्पुरुष! अपने चन्द्र सूर्य्य और अनल-रूपी त्रिनेत्रोंसे देखिये और तरल अग्नि-धारा बरसाकर अश्रुधारा गिराइये। पृथ्वी! दग्ध हो जाओ। पवन देव! कालाग्नि मय प्रवाहसे प्रवाहित हूजिये। हे आखण्डल! आप शत धारासे वज्र बरसाइये। दग्धभूता और भस्मीभूता पृथ्वि! तुम विदारित हो जाओ, मैं मातृ-हत्या करता हूँ। महाकाल! आप घोर कृष्णा वर्ण यवनिका गिराइये। इस सर्वलोकका भयावह दृश्य लोक-लोचनोंसे अदृश्य कीजिये। क्योंकि मैं मातृ-हत्या करता हूँ।"

इतना कहकर परशुरामने अपना कुठार ऊपर उठाकर उससे तत्काल रेणुकाके मस्तकपर आघात किया। मस्तक धड़से अलग होकर, उनके बाँये हाथमें आरहा। सिर और



आज्ञा पालन ।

परशुरामने पिताकी आज्ञानुसार अपनी माता रेणुकाका सिर काट लिया है। विजया सामने खड़ी आश्चर्य से सब काण्ड देख रही है। (पृष्ठ १४४)

धड़से खूनकी नदीसी बह चली। विजयाने उस दृश्यको न देख सकनेके कारण दोनो हाथोंसे अपनी आँखे ढकलीं। परशुराम रेणुकाके सिरको गौरसे देखते हुए, सहसा अट्ट-हास्य कर उठे। उस हास्यकी ध्वनि सारे आश्रममें गूँज गयी। वन, पर्वत और गुहाओंमे वह शब्द और भी विकट रूपसे प्रति-ध्वनित हुआ। मानो वनके स्थावर और जङ्गम तक परशुरामके इस प्रतिज्ञा-पालनपर काँप उठे हों।

परशुरामकी आँखें यद्यपि पहलेसे ज़ियादः फैली हुई थीं; पर चित्तकी एकाग्रता, मनकी स्थिरता और इन्द्रियोंकी उत्तेजना-के कारण एकाएक पथरा गयी थीं। उनकी वाक्य-शक्ति लुप्त होगयी थी। श्वासोच्छ्वासका वेग रुद्ध हो गया था। वे उन्मत्तोंकी भाँति उद्भ्रान्त दृष्टिसे, कभी खूनसे सने कुठारकी ओर देखते और कभी हस्तस्थित माताके सिरको देखते थे। साथही कभी रेणु-काके सिरको ऊपर उठा, आकाशकी ओर देखते हुए कहते,—"देवगण! देखलो, आज जीवनका प्रधान कार्य्य समाप्त हो गया। प्रतिज्ञा पूरी करली। संसार! आँखे पसारकर देख, आज जमदग्निके पुत्र परशुरामने पितृ-आज्ञानुसार मातृ-हत्याकर, जीवनको कृतार्थ कर लिया।"

अस्तु; परशुरामको इस अवस्थामें खड़े-खड़े ज़ियादः देर न बीती होगी कि, महर्षि जमदग्नि भी पितृ-आज्ञाकी पूर्णाहुति करनेवाले, पुत्रके पास आ पहुँचे। दूरसे ही पुत्रके हाथमें अपनी स्त्रीका छिन्न मस्तक देखकर जमदग्नि प्रसन्न होकर बोले—"धन्य बेटा!

धन्य! तुम्हारे इस कार्य्यसे मैं तुम्हारी गर्भ-धारिणी माता और तुम्हारा मानव-जन्म सफल समझता हूँ।"

इतना सुनतेही परशुराम होशमें आ गये और शीघ्रतासे पिताके चरणोंके समीप जा, परशु तथा माताके मस्तकको रखकर बोले—"पितः! आपका अधमाधम पुत्र श्रीचरणोंमें प्रणाम करता है। श्रीमान्‌की आज्ञासे मातृ-हत्या कर दी गयी। और क्या आज्ञा है, उसेभी बताइये।"

जमदग्नि—वत्स! अब और कोई आज्ञा नहीं है। आज तुम्हारे पितृ-भक्ति-गुण और इस अलौकिक कार्य्यको देखकर मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। अब अभिलषित वर माँगो।

परशुरामने हर्षसे गद्गद होकर कहा—"पितः! यदि आप अपने इस दासपर प्रसन्न हैं, तो कृपाकर यह वर दीजिये कि, माताकी स्वर्गीय आत्मा अपने अज्ञान-कृत पापसे निर्मुक्त होकर स्वर्गका अक्षय पद प्राप्त करे और मैं मातृ-हत्याके पापसे छूट जाऊँ।"

इतना सुनतेही जमदग्निने "तथास्तु" कहकर पुत्रके सिरपर आशीर्वादात्मक हाथ रखा।

१३

निशापति चन्द्रको रात्रि-विहार करते समय, परसुख-कातर धूमकेतुने हिंसावश पकड़ लिया ! पति-वियोग-विधुरा निशा अनाथिनी होकर कितनाही चीखी-चिल्लायी, पर दुष्ट धूमकेतु तनिकभी द्रवित नहीं हुआ और कातर कुमुदिनी-नायक रजनीपतिको उसने किसी तरहभी नहीं छोड़ा। रजनी और कुमुदिनी दोनोंही अबला होनेके कारण, सिर पीटकर रह गयीं— पर आततायी केतुसे उनकी एक भी पार न बसायी।

महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुन विजया-पति, कौशिक-राज देवदत्तकी हत्याकर घर लौट आय। पुरोहित द्वारा राज अन्तः-पुरमें दोनों रानियोंके पास अपने आगमनकी सूचना दी। पतिव्रता वसुमतीको पतिके पुनरागमनका संवाद सुनकर परम हर्ष हुआ। वे अपने प्राण-प्रिय पुत्रको साथ लेकर पतिकी अभ्यर्थना करते आयीं; पर गर्व्विणी विद्दिमल्ला, अपनेको परम पति-पद-रता दिखाने वाली विद्दिमल्लाने—गर्ववश इस संवादपर कर्ण पातभी न किया। महाराज मन-ही-मन सोच रहे थे, उदासिनी

वसुमतीसे पहले, मिष्टभाषिणी विष्टिभद्रा मेरा बड़ी धूमसे स्वागत करेगी, पर आशा फलवती न हुई। वसुमतीनेही धूमधामसे अपने पतिका स्वागत किया। वसुमतीने अन्तःपुरके तोरण द्वारपरही महाराजकी विजय आरती उतार, भक्तिसहित प्रणाम किया और पूछा—"महाराज! आपके दिग्विजयका कुशल तो है?"

महाराजने हँसकर कहा—"वसुमति! मैंने तो इस जीवनमें कभी पराजयका नामही नहीं सुना। परमात्माने इस संसारमें ऐसा कोई वीर पुरुष नहीं पैदा किया, जो मेरे दिग्विजयकी गतिको रोक सके। मेरी युद्धयात्राका निश्चित परिणाम सदा-सर्वदा विजय ही रहता है। अतः दिग्विजयका कुशल पूछना बेकार है।"

रानीने इस उत्तरको सुनकर मुँह नीचा कर लिया। किन्तु कुमार अजीतसिंह महाराजको प्रणामकर बोला—"पितः! आप कहाँ और किस देशको जीतने गये थे? किसके साथ युद्ध किया था? उस राजाका नाम क्या था? और उसने अपराध ही कौनसा किया था कि, जिसके कारण उसपर चढ़ायी की गयी?"

राजा—वत्स! एक बारही बहुतसे प्रश्न कर डालना बालकका स्वभाव होता है, लेकिन मैं एकदम कितने उत्तर दूँगा? मैं कौशिक राज्यके संसारत्यागी राजा विश्वामित्रके बड़े लड़के, राजा देवदत्तसे युद्ध करने गया था। वह अबतक उस राज्यके, सच्चे हकदार अपने छोटे भाईको भुलावेमें रखकर

अकेला राजसुख भोग रहा था। एक दिन वही छोटा भाई मधुच्छन्द मेरा शरणागत हुआ, तब मैं सारी कथा सुनकर उसकी सहायतार्थ युद्ध करने चला गया।"

महाराजके इस उत्तरको सुनकर अजितने भी अपना मुँह नीचा कर लिया। महाराज बोले—"क्यों बेटा ? मुँह नीचा क्यों कर लिया ? शरणागतकी सहायता करना क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं है ?"

अजितकुमार—महाराज! शरणागतकी सहायता करना उचित है, पर कायरकी सहायता करना महा अन्याय है।

राजा—क्यों! वह कायर कैसे हुआ ?

अजित—पितः! जो क्षत्रिय होकर भी दूसरोंके पास युद्धके लिये सहायता माँगने जाये, वह निःसन्देह कायर है। मधुच्छन्द केवल कायर ही नहीं—पशु है। क्योंकि उसने भ्रातृ-हिंसा की।

राजा—बेटा! ऐसी बात मत कहो। वह भी राजपुत्र है।

अजित—क्यों न कहूँ ? सच बोलनेमें क्या डर ? वह राजपुत्र है, तो मैं सम्राट्-पुत्र हूँ। पर वह कायर है और मैं महावीर कार्त्तवीर्य्यार्जुन का पुत्र हूँ, फिर सच कहनेमें क्या डर ?

इसबार महारानीने भी पूछा—"महाराज! क्या देवदत्त मारे गये ?"

राजा—हाँ, वे मारे गये, पर मेरे हाथसे नहीं—सेनापति धूमकेतुके हाथसे।

वसुमती—हाय! उनकी अघोधपुत्रा नवीना युवति की

विधवा हो गयी। हाय! हाय!! स्वामीकी सती पथकी भिखारिणी हो गयी? महाराज! अब आपको दिग्विजयकी क्या आवश्यकता है? संसारमें विधवाओंकी संख्या बढ़ानेसे अधर्मही अधर्म है। हाय! हाय!! इन असंख्य विधवाओंके गरम निःश्वाससे कहीं मेरा सौभाग्य-भाण्डार भस्म न हो जाये?

राजा—स्त्रियोंका हृदय बड़ा कोमल होता है। वे युद्धकी बात सुनतेही डरसे काँप उठती हैं। किन्तु पुरुषगण वीर-हृदयी होते हैं। धनुषकी टङ्कार, तलवारकी झङ्कार, घोड़े-हाथियोंकी चिंघार, और सैनिकोंकी उच्च हुङ्कारही उनके कानोंको सुमधुर सङ्गीतकी अपेक्षा मीठी लगती है। हथियार पकड़ते ही उनके शरीरमें मानो वीरत्वकी बिजली दौड़ जाती है। वे उन्मत्तोंकी भाँति रण-तरङ्गोंमें क्रीड़ा किया करते हैं।

इस बार अजितकुमारने फिर पूछा—"पितः! मधुच्छन्दने युद्ध सहायके बदलेमें आपको क्या दिया?"

राजा—उसने पितासे पायी हुई कामधेनु देनेकी प्रतिज्ञा की थी।

अजित—क्या उसने अपनी प्रतिज्ञाको पूरा किया?

राजा—नहीं बेटा! वह प्रतिज्ञा-पालन न कर सका। क्योंकि देवदत्तने युद्धसे पहलेही कामधेनु जमदग्निको दान कर दी थी, किन्तु उसका वह दान असङ्गत है। मैं अब बल पूर्वक कामधेनु-हरण करूँगा।

इतना सुनतेही महारानी वसुमती काँप उठीं। दाँतोंसे

जीभ काटती हुई बोलीं—"महाराज! शान्त हूजिये। इस सङ्कल्पको त्याग दीजिये। मेरा आपसे सविनय अनुरोध है कि, आप ब्राह्मणका धन-हरण न करें। मैं महर्षि विश्वामित्रके कौशिक राज्यका समस्त वर्त्तमान विवरण पुरोहित महाराजके मुंहसे सुन चुकी हूँ। मधुच्छन्दका कामधेनुपर कोई अधिकार नहीं है। देवदत्तने अपनाही धन ब्राह्मणको दिया है। आप अकारण ही महर्षि जमदग्निको असन्तुष्ट न करें—जान बूझकर ब्राह्मणका शाप न लें!"

अजित—पिता! आप कामधेनुके लिये इतने लालायित क्यों हैं? कामधेनुमें ऐसा क्या गुण है?

राजा—बेटा! कामधेनुसे इच्छित वस्तु प्राप्त होती है।

अजित—आप उससे क्या चाहेंगे? आपको किस वस्तुका अभाव है? आपके पास तो स्वर्गकी सारी सम्पत्तियाँ विद्यमान हैं, भगवान् दत्तात्रेयकी कृपासे आपने तो सब कुछ पा लिया है; फिर अब कामधेनुकी क्या ज़रूरत?

राजा—बेटा! यह ठीक है कि, भगवान् दत्तात्रेयकी कृपासे मेरे पास किसी वस्तुका भी अभाव नहीं है। लेकिन मेरे बाद तुमभी तो चिरसुखी रहो; इसीसे मैं कामधेनु लाना चाहता हूँ।

अजित—नहीं पितः! मुझे कामधेनुकी ज़रूरत नहीं है। आप और माताका स्नेहही मेरे लिये परम कामधेनु है। क्योंकि मैं जिस समय जो कुछ चाहता हूँ, तभी मुझे वही चीज़ मिल जाती है।

राजा—बेटा ! हम और वसुमती सदा थोड़ेही रहेंगे ? हमारे बाद तुम्हें दैवबलका प्रभाव कहाँ मिलेगा ?

अजित—पितः ! आपको दैवबल, बाहुबल और धनबल क्या आपके पितासेही प्राप्त हुआ था ?

राजा—नहीं बेटा ! यह सब मेराही उपार्ज्जन किया हुआ हैं। मैंने इसे घोर तपस्या द्वारा प्राप्त किया है।

अजित—पितः ! तब मैंभी आपका पुत्र हूँ। मैंभी घोर तपस्या कर उन्हें स्वयं प्राप्त कर लूँगा।

राजा, पुत्रकी इस बुद्धिमत्तापर परम पुलकित हुए। उन्होंने झट पुत्रको गोदमें उठा लिया। स्नेहसे गद्गद होकर बोले—"धन्य बेटा ! तुम जैसे पुत्ररत्नको पाकर मैं परम धन्य हुआ। इस सन्तोषपर तुम मुझसे जो कुछ चाहोगे, वही दूँगा। बोलो—क्या माँगते हो ?"

इसी समय वसुमतीने महाराजके चरण पकड़कर कहा—"महाराज ! अजित आपकी गोदमें है और यह दासी आपके चरणोंमें पड़ी हुई है। कहिये महाराज ! अब तो आप कामधेनु हरने की चेष्टा नहीं करेंगे ?"

राजाने वसुमतीको हाथ पकड़कर उठा लिया। बोले—"वसुमति ! स्थिर हो। मैं तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध कोई काम नहीं करना चाहता। युद्ध-प्रिय होकर भी मैं स्त्री-पुत्रोंका अप्रिय नहीं होना चाहता। अजित बेटा ! क्या माँगते हो ?"

अजितने हाथ जोड़कर कहा—"पिता ! मुझे यही भिक्षा

दीजिये कि, आजसे आप किसीके साथ अन्याय-युद्ध न करेंगे। महर्षि जमदग्निसे कामधेनु लेनेकी चेष्टा न करेंगे।"

राजा हँसकर बोले—"अच्छा बेटा! तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण हुई। जाओ, शायद तुम्हारे पाठशाला जानेका समय समीप आ गया, है भोजन करके शीघ्र पढ़ने जाओ।"

पिताकी आज्ञा पाते ही अजितकुमार वहाँसे चला गया। अब राजाने रानीसे कहा—"वसुमति! हमारा कुमार—प्रज्ज्वलित अग्निसा तेजस्वी, स्निग्ध मक्खनसा कोमल और साक्षात् स्फुट कमलकी कली है। महिषि! अब मैं भी जाना चाहता हूँ। मुझे भी आज्ञा दो

वसुमती हँसती हुई बोली—"थोड़ी देर और बैठिये। बहुत दिनोंसे श्री चरणोंका दर्शन नहीं किया है। आज मनभरकर महाराजकी सेवा करूँगी।"

राजा—वसुमति! तुम तो मेरी खिली हुई नलिनी हो।

वसुमती—और आप मेरे मध्याह्नके दिवाकर हैं।

राजा—दिवाकरके एकही तो नलिनी नहीं है?

वसुमती—नहीं, लाख नलिनियाँ एकही दिवाकरको देख कर परम प्रसन्न हो जाती हैं।

राजा—क्या वे परस्परमें डाह नहीं रखतीं?

वसुमती—डाह क्यों रखें? उनमें कुछ भेद थोड़ेही है। दिवाकरकी किरणें सबके लिये समान हैं।

राजा—खैर, मैं एकबार उद्यान-वाटिकामें भद्राके पास

मिलने अवश्य जाऊँगा। बहुत दिनोंसे भेंट नहीं की है। तुम तो जानतीही हो कि, वह बड़ी अभिमानिनी है।

वसुमती—प्रसन्नता पूर्वक जाइये महाराज! मैं भद्राका आज्ञा-भङ्ग करना नहीं चाहती।

राजा—वसुमति! भद्रासे तुम सौतिया डाह तो नहीं रखतीं?

वसुमती—ज़राभी नहीं। वह मेरी सौत नहीं। मैं उसे अपनी छोटी बहन समझती हूँ। फिर मैं उससे क्यों डाह करूँगी। डाह श्रेष्ठ या समान व्यक्तिसे किया जाता है, छोटेसे नहीं।

राजा—भद्राकी अपेक्षा तुम श्रेष्ठ कैसे हुई?

वसुमति—इस लिये कि, वह आपके प्रेमकी भिखारिणी है और मैं आपके प्रेमकी सच्ची अधिकारिणी हूँ।

राजा—तो क्या तुम भद्राके साथ प्रेम-युद्धमें विजय पा सकती हो?

वसुमती—निश्चयही। युद्धके समय मेरा प्रधान सेनापति सहायक होगा। और वह उस समय अकेली रहेगी।

राजा—तुम्हारा प्रधान सेनापति कौन है?

वसुमती—मेरा पुत्र राजकुमार अजीतसिंह। महाराज! मैं पुत्रवती हूँ और वह निपुत्री है। भला मेरे साथ उसकी तुलना कैसे हो सकती है?

राजा—मैं तो भद्राको ही ज़ियादः प्यार करता हूँ।

वसुमती—झूठ! एकदम झूठ!! मैं अजीतसिंहकी मा हूँ। मैं आपके मूर्त्तिमान समस्त प्रेमको अजितके रूपमें गोदमें लिये

बैठी हूँ। अच्छा आप पधारिये। मैं भी पुत्र अजितको भोजन करानेे जाती हूँ।

इतना कहकर महारानी वसुमती महलोंमें चली गयीं। महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुन भी मनही मन कुछ सोचते हुए, उद्यानकी ओर चल दिये। अस्तु!

प्रिय पाठक! क्या आपने वसुमतीके हृदय-भावोंकी परीक्षा की? अहा! उसके हृदयमें कितना अपार प्रेम भरा हुआ है! उसका हृदय क्या है, मानो प्रेमका धीर, अतलस्पर्श महासागर है। उसमें न तरंगें है, न स्रोत है और न हड़-हड़ नाद। मानो सर्वत्र शान्तिका साम्राज्य है। किन्तु महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुनने ऐसे निर्मल मिष्ट-सलिल महासागरके तटपर निवास करते हुए भी, मोह-पिपासाके जलकी आशासे भद्राको हृदय दे, बालुका भूमिमें कूआ खोदा है। अथवा ऐसे त्रिभुवनके सार रत्न कौस्तुभ मणिको ज़मीनपर फेंक, काँचके टुकड़ेको अपना शिरोभूषण बनाया है। आपही विचार कर देखिये, कहाँ वसुमती और कहाँ विषिभद्रा! स्वर्ग और नरकका भेद है। किन्तु विषिभद्राके भरे यौवनकी उच्छ्वसित रूपराशि देखनेमें मनोहर मालूम होती है, इसीसे ऐसी छलना—ऐसी प्रतारणा हुई है।

नारकीय हृदय

१४

वसुमतीके उच्चभावोंकी झाँकी ऊपर दिखादी गयी। अब ज़रा विष्टिभद्राके प्रेमका नमूना भी देख लीजिये। देखिये कि, वह पानीकी कितनी गहराईमें है।

सायंकालका समय है। छोटी रानी विष्टिभद्रा उद्यान-वाटिका-की उच्च अट्टालिकाके एक एकान्त कमरेमें सुन्दर सोफेपर वैठी हुई है। पासमें एकभी दासी या सहेली नहीं है। मुखपर चिन्ता और व्याकुलताका भाव परिस्फुट है। मानो किसी इच्छाके पूर्ण न होनेसे विरक्ति हो गयी है।

कुछ देर चुपचाप वैठी रहनेके बाद, उसने एक दीर्घ निःश्वास लिया। अनन्तर अस्फुट स्वरमें कहने लगी—"हाय! विधाताका न्याय तो देखो! जब कभी कोई आशा करती हूँ, तभी वह अधूरी रह जाती है। पहले मैंने ऐश्वर्य्यकी आशासे अपने रूप-यौवनके जालमें राजाको फाँसा; राजाकी रानी बनी, किन्तु जिसे इच्छा पूर्ण होना कहते हैं, वह नहीं हुआ। और अब ऐसा मालूम हो रहा है, कि इस पापीके रहते, तो मैं ऐश्वर्यकी

पूर्ण अधिकारिणी न हो सकूँगी। पर कानीके ब्याहमें सौ जोखिम। सुना है, दत्तात्रेयके वरसे राजा दीर्घजीवी हो गये हैं। इसलिये काँटा सहजही और जल्दीही दूर न होगा। दिन-रात मार-काट मचाये रहता है, पर हार कहीं नहीं। मानो मौत इसके पास आती हुई डरती है। अगर मेरी एक भी नहीं चलेगी, तो वही अन्तिम उपाय काममें लाऊँगी। अपना कण्टक अपने आपही दूर करूँगी। कौशिक राजकुमार मधुच्छन्द अभी क्यों न आये? वाह! कैसा सुन्दर रूप है! कैसा सुन्दर मुखड़ा है! मानो साक्षात् कामदेवका अवतार है। यदि मेरा यह ऐश्वर्य्य निष्कण्टक हो जाये और इस सुन्दर पुरुषको जीवनभरके लिये अपना बना सकूँ, तो सारी आशाएँ पूर्ण हो जायें।"

इतना कहतेही म्लान मुखपर प्रसन्नताकी आभा चमक उठी। कण्ठ गद्गद् हो गया। मानो आशा शीघ्र पूर्ण होगी।

इसी समय एक दासीने आकर ख़बर दी कि, सेनापति धूमकेतु और कौशिक-राज मधुच्छन्द महारानीसे भेंट करने आये हैं।

रानीने मानो चाँद पा लिया। जिसकी चिन्तामें वह व्यस्त थी, उसे स्वयं आया सुनकर रानीको अपार हर्ष हुआ। शीघ्रतासे आज्ञा दी,—"यहीं बुला लाओ।"

क्षण भर बाद धूमकेतु और मधुच्छन्द कमरेमें उपस्थित हो गये। धूमकेतुने रानीसे कहा—"बहन! यह कौशिक राजकुमार मधुच्छन्द तुमसे भेंट करने आये हैं। ये तुम्हारी आज्ञाका

पालन करनेके लिये पूर्ण तत्पर हैं। तुम बदलेमें इनकी सहायता करनेके लिये महाराजसे अनुरोध करना। यदि इनसे कुछ कहना-सुनना चाहो, तो कह-सुन लेना। मैं उद्यानके बाहर बैठा हुआ पहरा दूँगा। यदि महाराज तुमसे मिलने भी आजायेंगे, तो चुपकेसे आकर खबर कर दूँगा।"

इतना कहकर धूमकेतु मधुच्छन्दको वहीं छोड़कर बाहर चला गया। उसके चले जानेपर मधुच्छन्दने हँसते हुए कहा—"भद्रे! सावधान! तुम्हारा भाई हमलोगोंकी पहली भेंटका हाल नहीं जान सका है। देखो, असावधानीसे कोई बात कह न बैठना।

विष्टिभद्रा—नहीं, नहीं, मैं क्या पागल हूँ। आप उसके लिये निश्चिन्त रहिये।

मधुच्छन्द—खैर; तुमने अपनी मनोरथ-सिद्धिके लिये कौनसा उपाय निश्चित किया है?

विष्टिभद्रा—निरुपायके लिये उपाय तुम हो। तुम जो कुछ करने कहोगे, असाध्य होनेपर भी मैं उसे प्राण-प्रणसे चेष्टाकर पूरा करूँगी।

मधुच्छन्द—तुम्हारे इस आश्वासनसे मेरे मनमें आशाका सञ्चार हुआ है। तुम बुद्धिमती हो, अतः तुम्हारे सामने बिना अपने मनका पूरा भाव कहे, आशा पूर्ण न होगी। सुनो, महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुनके जीवित रहते, हमारी आशा कभी पूर्ण न होगी। वे दैवबलसे बली हैं, उन्हें धोखा देना हमलोगोंकी

ताक़तसे बाहर है। अतः उन्हें दूर करनेके लिये तुमने कौनसा उपाय स्थिर किया है?

विष्टिभद्रा—उपाय तो पहलेही स्थिर कर लिया है, पाप-बलके प्रभावसे दैवबलको नष्ट किया जायेगा। जिस तरह भी होगा, मैं उन्हें पाप-पङ्कमें फँसाऊँगी। वे मुझे बेतरह चाहते हैं।

मधुच्छन्द—जब वे तुम्हें बेतरह चाहते हैं, तब किस बातका अभाव है? तब तुम मुझ जैसे कङ्गालको क्यों प्यार करती हो?

विष्टिभद्रा—वे मुझे अवश्य चाहते हैं, पर मैं उन्हें नहीं चाहती। मैंने तो तुम्हारे ही चरणोंमें आत्मसमर्पण कर दिया है। इस समय मैं शरीर हूं और तुम प्राण हो। तुम्हारे लिये मैं असाध्यको सिद्ध करूँगी।

मधुच्छन्द—तो क्या तुम मेरीही हो?

विष्टिभद्रा—ईश्वरकी सौगन्ध, मै तुम्हारे सिवा और किसी की नहीं हूँ। मैं आजसे तुम्हारे लिये किसी पापकर्मसे भी नहीं डरूँगी। तुम्हारे लिये महाराजके सर्वनाशका बीज बोऊँगी। तुम निश्चिन्त होकर देखते रहो। अब तुम भी, जो मैं कहूँ, वही करना। अच्छा, रातको एक बार आकर मुझसे और मिल जाना।

मधुच्छन्द—सुन्दरि! हृदयेश्वरि! ऐसा होनेसे तो मेरी आशा ही पूर्ण होगयी समझो। मेरे पास निष्कण्टक राज्य है और तुम्हारे पास अतुल ऐश्वर्य। भगवान्‌ने ख़ासी जोड़ी

मिला दी; अब हम कौशिक राज्यके राजा-रानी होकर परम सुखसे निवास करेंगे।

विष्टिभद्रा—प्रियतम ! क्या मेरी वह आशा पूर्ण होगी ?

मधुच्छन्द—अवश्य होगी। भगवान्का स्मरण करो। उनसे प्रार्थना करो कि, वे हमारी आशा पूर्ण करें।

वाक्य समाप्त हुआ कि, धूमकेतु बड़ी व्यस्तताके साथ कमरेमें आया और बोला—"भद्रे ! सावधान ! महाराज आ रहे हैं। उद्यान-वाटिकाके सामनेवाले रास्ते तक आ पहुंचे हैं। तुम स्थिर भावसे रहो। मैं जाता हूँ। मधुच्छन्द ! आओ, जिस गुप्त रास्तेसे आये हो, उसी रास्तेसे तुम्हें निकाल दूं।"

मधुच्छन्द धूमकेतुके साथ बाहर चला आया। विष्टिभद्रा मन-ही-मन कहने लगी, कौन कहता है कि, स्त्री-जाति अबला होती है। आज स्त्रीके वीरत्वके आगे महावीर कार्त्तवीर्य्यार्जुनको हार खानी पड़ेगी। देखूंगी, कौनसा दैवबल उनकी रक्षा करता है ? राजा आ रहे हैं, अतः पहले थोड़ासा अभिमान दिखाना चाहिये। क्योंकि प्रेमके फन्देमें अभिमानकी गाँठ न देनेसे उड़नेवाला पक्षी सहज हीमें नहीं पकड़ा जाता।

इतना कहकर विष्टिभद्राने अपने हाथ-पैरके जेवर निकालकर इधर-उधर फेंक दिये और कमरेके फर्शपर अभिमान सहित पड़ रही। अस्तु।

वाहरी ! रूपकी महिमा। इस अग्निकी शिखामें कितनेही

पतङ्ग जलकर भस्म हो गये। कितनोंनेही इसके पास जाते-जाते अपनी जानें देदीं। तबभी इसका पेट न भरा और पतङ्गोंकी लालसा न मिटी। हाय! हाय! ये पतंगभी कितने मूर्ख हैं! ये मरनेके लिये भाँति-भाँतिके आयोजन करते हैं—प्राण देनेके लिये प्रण पूर्वक यत्न करते हैं। अस्तु।

महाराजा कार्त्तवीर्य्यार्जुनभी रूप-शिखापर मरनेवाले एक पतङ्ग हैं। ये आज विष्टिभद्राकी रूप-शिखामें जान देने जा रहे हैं। विष्टिभद्राका रूप सचमुच लासानी है। उसकी सुन्दरताकी किरणोंसे महाराजका सारा विलास-भवन प्रकाशित रहता है—हरदम उद्भासित रहता है। मानो स्वयं विधुवनिताही मूर्त्ति धारणकर मेघ-निवास छोड़, महाराजकी रूप-लालसा पूर्ण करने आ गयी है। इस वनितासे एकवार तो अमावास्याकी घोर अन्धकारमयी रात्रिभी आलोकित हो उठती है, किन्तु जब इसका प्रकोप होता है, तब प्रकाण्ड, सुविशाल शाल-वृक्ष भी इसके दृष्टि-कोपसे जल-भुनकर ख़ाक हो जाता है।

महाराजा विष्टिभद्राके कमरेमें आये, पर उसके तत्कालीन रङ्ग-ढङ्गको देखकर दङ्ग रह गये। आज विष्टिभद्रा क्यों अभिमानिनी हुई बैठी है? आज मोहिनीप्रतिमाका सदा प्रसन्न रहनेवाला मुख अकारण क्यों भारी होरहा है? यदि होसकता है, तो नाराज़ीका यही कारण होसकता है, कि राजा पहले उससे न मिलकर, सौत वसुमतीसे क्यों मिले? खैर, जब इसमें उनका दोष है, तब वही उसका उचित प्रतिकारभी करेंगे।

अब महाराज विष्टिभद्राके पास पहुँचे और बड़े नम्रस्वर-से बोले—"प्रिये ! प्रियतमे ! हृदयेश्वरि ! बताओ, प्रसन्न तो हो ?"

भद्राने महाराजके इस कुशल-प्रश्नका कुछभी उत्तर नहीं दिया । नीचा मुख किये चुपचाप रही।

राजा विस्मित होकर बोले—"यह क्या ! वासन्ती पूर्णिमामें मेघोंका यह आडम्बर कैसा ? बताओ भद्रे ! इस अभिमानका क्या कारण है ? मैं उसे दूर करनेके लिये सर्वस्व नष्ट करके भी प्रयत्न करूँगा, तुम्हारे सिरकी सौगन्ध खाकर सत्य कहता हूँ कि, इस समय तुम जो कुछ भी माँगोगी, वही दूँगा ।"

भद्रा इस बारभी तद्वत् रही। उसने इस बारभी महाराज की बातका कुछ उत्तर नहीं दिया।

राजा भद्राका पृथ्वीपर पड़ा कङ्कण उठाते हुए बोले —"यह क्या रानी ! शरीरसे आभूषणोंको क्यों उतार दिया ? आभूषणों-का परित्याग तो बड़ा अमंगलजनक होता है। उससे वैध-व्यकी सूचना होती है। भद्रे ! क्या मेरी अमङ्गल-कामना करती हो ?"

इतना सुनतेही भद्राने शीघ्रतासे महाराजके हाथसे कंकण लेलिया और उसे मस्तकसे छुआकर बोली—"महाराज ! हत भागिनी अजान बालिका है। दासीका अपराध क्षमा कीजिये। मैंने अज्ञानसे, बिना समझे-बूझे, आभूषण त्याग दिये थे। आप मेरे ऊपर पाद-प्रहार कर इस पापका दण्ड दीजिये।—" इतना कह कर भद्राने महाराजके पैर पकड़ लिये ।

भद्राके इस शिष्टिभावको देखकर महाराज अपनी भूल-पर पछताने लगे। मन-ही-मन सोचा—"मैं भी कैसा अन्धा हूं। अबतक भद्राके शरीरका रूपमात्र देखकरही, उसपर मुग्ध हो रहा था; उसके हृदयकी इतनी गम्भीर प्रेम-राशिकी एक दिनभी झाँकी न की थी।" यह सोचकर उन्होंने भद्राका हाथ पकड़ कर उठा लिया। आकाशकी ओर मुँह कर धीमे स्वरसे बोले—"देखलो वसुमति मैंने अपना मन अयोग्य पात्रको नहीं दिया। भद्रा तुमही जैसी है। तुम्हारीही छोटी बहन है। यदि तुम पूर्ण शक्ति हो, तो भद्रा विद्युल्लता है। यदि तुम सन्ध्या-समीरण हो, तो भद्रा मलय-हिल्लोल है। अहा! मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ। मैं सचमुच महादेव हूँ। यदि वसुमति मेरे हृदयमें निवास करनेवाली भगवती है, तो भद्रा मेरी मौलि-निवासिनी कल्लोलिनी गङ्गा है। (भद्रासे) भद्रे! प्रिये! बताओ, आज तुमने किस लिये अभिमान धारण किया है?"

भद्रा—प्रभो! मैं किसके ऊपर अभिमान करूँगी? मैं आपको एक दिनभी न देखकर आत्म विस्मृत—पगली—हो जाती हूँ। अभिमान क्या मुझे शोभा देता है? अभिमान राज-रानी वसुमतीको शोभा देता है। खैर, इतनी देर बाद महारानी वसु-मतीकी कृपासे आपके दर्शन हुए, यही मेरा सौभाग्य है।

राजा—भद्रे! मुझपर ऐसा अन्याय न करो। मैंने वसुमती-के कहनेसे तुम्हारे पास आनेमें विलम्ब नहीं किया। पुत्र अजितके साथ वार्तालाप करनेमेंही इतनी देर हो गयी। उसके सामने

तो मैं तुमसे मिलनेके लिये व्यग्रता प्रकट नहीं कर सकता था! बस, विलम्ब होनेका यही कारण है।

भद्रा—बेटा अजितकुमार अच्छा तो है? अहा! मेरा अजित मानो अधखिला कमलका फूल है। पर यह कैसी बात? मैं उसे कितनाही चाहती हूँ, कितनाही यत्न करती हूँ, तब भी वह मेरे पास ज़रा देरभी नहीं रहता। फिर मेरा उसपर कुछ ज़ोर भी तो नहीं है। मन मारकर रह जाती हूँ। वह मुझे विमाता होनेसे घृणा करता है। ख़ैर, मैं तो उसकी माही हूँ; मुझे इन बातोंकी ओर नहीं देखना चाहिये। भगवान् करें, वह शतायु हो, सदा सुखसे रहें।

महाराज भद्राके इस बनावटी स्नेह-प्रदर्शनको देखकर प्रसन्न हो उठे। हर्षसे गद्गद होकर बोले—"भद्रे! क्या तुम अपनी सौतकी सन्तानको भी प्यार करती हो? वाह! तब तो तुम साक्षात् स्वर्गकी देवी हो। क्षमा करो देवि! मेरे अपराधोंको क्षमा करो! मैं अबतक तुम्हारे स्वरूपको, तुम्हारे हृदयको न पहचान सका था। बताओ प्रिये! आज तुम मुझसे क्या चाहती हो? मैं मुक्तहस्तसे तुम्हारे गुणोंका सामान्य पुरस्कार देना चाहता हूँ।"

भद्रा—महाराज! आप जिस कामधेनुको लेने गये थे, वह इस समय कहाँ है?

महाराज—देवदत्त मेरे जानेसे पहलेही उस कामधेनुको जमदग्निको दान कर चुका था। इस समय वह उन्हींके आश्रममें है।

भद्रा—ख़ैर, इस समय वह कहीं हो; मेरे लिये आपको कामधेनु लानीही पड़ेगी। आपने कहा है, कि मैं तेरे सद्गुणोंका पुरस्कार दूँगा; मैं और कुछ नहीं चाहती, आपको मेरे लिये केवल कामधेनु ला देनी होगी।

राजा—रानी! कामधेनु तो ऐश्वर्य्य या सम्पदा दान करती है, तुम्हें इन दोनोंमेंसे किसका अभाव है?

भद्रा—मुझे किसी तरहकेभी ऐश्वर्यका अभाव नही है; पर मैंने सुना है, कामधेनुका दूध पीनेसे आदमी अमर होजाता है। मैं उसी कामधेनुका दूध अपने अजित और आपको पिलाया करूँगी।

राजा—अहा भद्रे! तुम्हारा हृदय तो मानो प्रेमका भाण्डार है। सचमुच तुम्हारे इस प्रेमका पुरस्कार कहीं नहीं है।

भद्रा—पुरस्कार क्यों नहीं है? ज़रूर है। उस कामधेनुको मुझे ला दीजिये। बस, मेरी आशाका सर्वाधिक पुरस्कार मिल जायेगा।

राजा—भद्रे! कामधेनु इस समय जमदग्निके अधिकारमें है। फिर मैं ब्राह्मणका धन कैसे हरण करूँगा? ब्रह्म-शापसे तो मेरा सर्वनाश हो जायेगा!

भद्रा—महाराज! मैं कोई अबोध बालिका नहीं हूँ। मैं यह अच्छी तरह जानती हूं कि, आप दैवबलसे बलवान् हैं। दैव-बलके सामने ब्रह्मशाप क्या कर सकता है? महाराज! कृपाकर मेरा आशा-भङ्ग न कीजिये। देखिये, मैंने आजतक कभी आपसे

कुछ नहीं माँगा है। इसलिये आपको कामधेनु अवश्य लादेनी होगी, अन्यथा मैं आत्म-हत्या कर डालूँगी।

राजा—यदि महर्षि जमदग्नि मुझे अपनी कामधेनु न देना चाहें, तो मैं किसी तरह उनपर बल-प्रयोग न कर सकूँगा।

धूमकेतु शायद पासहीमें खड़ा हुआ इस वार्त्तालापको सुन रहा था। अतः उसने कमरेमें आकर कहा—"महाराज! आप किसी बातकी चिन्ता न कीजिये। आपको कुछ करना न पड़ेगा। आप मुझे आज्ञा कीजिये, मैं किसी न किसी उपायसे कामधेनु लेही आऊँगा।"

महाराज—किस उपायसे लाओगे सेनापति!

धूमकेतु—बलपूर्वक।

महाराज—तब तो मुझे ब्रह्म-हिंसाके पापमें लिप्त होना पड़ेगा।

धूमकेतु—महाराज! आप जान-बूझकर ब्राह्मणोंकी प्रधानता न बढ़ाइये। इस स्वार्थपरायण ब्राह्मण जातिसेही भारत-समाजका अधःपतन हुआ है। क्या ब्राह्मणोंके प्राण हैं, क्षत्रियोंमें क्या प्राणही नहीं हैं? क्या संसारकी सारी वस्तुएँ ब्राह्मणोंकेही हिस्सेमें आचुकी हैं? क्षत्रियलोग क्या लड़ने-मरनेके लियेही पैदा हुए हैं, कैसा अन्याय है महाराज। और इधर-उधर न कीजिये। चलिये, आजही कामधेनु लानेकी चेष्टा कीजिये।

धूमकेतुकी इस घुएँ जैसी वक्तृताको सुनकर महाराज चुप रह गये।

भद्रा इसबार आँखोंमें आँसूभर रोती हुई बोली—"भय्या ! तुम मेरे लिये खुशामद-दरामदकर अपनी पत न खोओ। मैं कौन हूँ ? मेरा दर्जा तो दासियों जैसा है। यदि आज बड़ी रानी वसुमती कामधेनुकी फरमाइश करतीं, तो तुम आजही उसे इस राजधानीमें आया देख सकते थे। भय्या ! मेरा यह राजैश्वर्य केवल स्वप्नका खेल है। आज मेरा स्वप्न टूट गया। चलो भय्या ! देश चलकर रहें। दरिद्रोंको झोपड़ीमें रहनाही शोभा देता है, वहाँ ग़रीब और असहायोंके लिये दया-माया है। ऐसी पाषाणपुरीके राजसुख मुझे स्वप्नमेंभी आवश्यक नहीं हैं। महाराज ! मेरे अपराधोंको क्षमा करें। दासीने अज्ञानसे श्रीचरणोंके अनेक अपराध किये हैं। अब मैं जीवनभरके लिये आपसे विदा होती हूँ। यह देखिये, यहाँ मैं एक वस्त्र पहनकर आयी थी और अबभी एक वस्त्र पहनकर निकल रही हूँ।"

इतना कह भद्रा द्वारकी ओर अग्रसर हुई। राजाने झट उसका हाथ पकड़कर कहा—"अभिमानिनी ! मुझे क्षमा करो।"

भद्रा प्रसन्न होती हुई बोली—"अच्छा ! मेरे सिरपर हाथ रखकर प्रतिज्ञा कीजिये कि, आप मुझे कामधेनु लादेंगे !"

राजाने भद्राके सिरपर हाथ रखते हुए कहा—"भद्रे ! मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि, मैं तुम्हारे लिये कामधेनु ला दूँगा।"

पाठक ! देखा आपने लम्पटताका परिणाम। एक ओर वसुमती और दूसरी ओर भद्रा ! दो मूर्तियाँ खड़ी हैं, बीचमें महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुन हैं। मानो पाप-पुण्य और मीमांसाका सम्मे-

लन है !" पर भीमांसा इस समय किसकी तरफदारी करे ? पापकी या पुण्यकी ? कैसी आश्चर्य्यकी बात है ! समस्त पृथ्वी-को जीतनेवाला, संसारमें अकेला वीर कार्त्तवीर्य्यार्जुन, आज एक साधारण स्त्रीके रूप-बन्धनमें फँसकर कर्त्तव्य, धर्म और पुण्यका परित्याग करनेके लिये तैय्यार हो रहे हैं धिक्कार है, ऐसे शक्तिशालियोंको। जो व्यक्ति केवल रूपके मोहसे अपनी स्वाधीन-प्रवृत्ति तकको खो बैठे, वह आदमीही क्या ? इस समय किसके अनुरोधकी रक्षा की जाये ? वसुमतीके अनुरोधकी या विप्रिभद्राके ! वसुमतीका हृदय तो अत्यन्त गम्भीर समुद्रकी मानिन्द है। वह सहसा विचलित न होसकेगा। और भद्राकी उपमा तरंगिणी नदीसे दी जा सकती है। सामान्य वायुके हिलोरेसेही उसका चञ्चल हो उठना स्वाभाविक है। महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुन सोचने लगे—"भद्रा ! इस समय तुम्हारा मोह मुझे सर्वथा अपना दास बनाये हुए है। मुझे बाध्य होकर तुम्हारे अनुरोधकी रक्षा करनी पड़ेगी। मैं सामान्य दुर्बल ब्राह्मणसे नहीं डरूँगा और जैसेभी होगा, तुम्हारे लिये कामधेनु लादूँगा।"

इस प्रकार निश्चयकर उन्होंने एक दासी द्वारा धूमकेतुको बुलाया। सेनापतिके आ जानेपर, उसे आज्ञा दी कि, वे अभी जाकर शीघ्रही सेना सजानेकी तैयारी करें। अधिक सेनाकी दरकार नहीं। छट्टे-छट्टे पाँच सौ वीर होने चाहिये। सेनापतिको यहीं रहना होगा और सेनाका परिचालन पुरोहित महाराज करेंगे। वे मेरे पीछे पीछे आये। ध्यान रहे, यह बात

किसीपर भी प्रकट न हो कि, महाराज कामधेनु लेने गये हैं, पूछनेपर कह दिया जाये कि, शिकार खेलने गये हैं।

धूमकेतु चला गया और महाराजके आज्ञानुसार काम करने लगा। महाराजने भद्राको सम्बोधन करके कहा—"बताओ भद्रे! अबभी अभिमान दूर हुआ या नहीं? मैं जाता हूँ, आओ, मुझे प्रसन्न मुखसे विदा दो।"

भद्रा—भगवान् आपका कल्याण करें। परमात्मासे प्रार्थना है कि,वे आपको कामधेनु समेत सकुशल महलोंमें पहुँचायें। किन्तु प्रभो! इस समय आपको विदा देनेसे मेरे हृदयमें जैसी वेदना उत्पन्न हो रही है, यदि वह किसी तरह प्रत्यक्ष करके दिखाई जा सकती, तो छाती चीरकर दिखा देती। जबतक आप लौट न आयेंगे, तबतक मैं बूँदभर पानीका भी स्पर्श न करूँगी। कृपाकर आपभी जहाँतक हो शीघ्र लौटनेकी चेष्टा करें।

इतना कहकर भद्राने महाराजके चरणोंमें प्रणाम किया। महाराज उस समय भद्राके भाव और बात करनेके ढंगको देख मुग्ध हो रहे। मनहीं मन सोचा, इसबार लौटकर और कहीं न जाऊँगा। जैसेभी होगा, अवशिष्ट जीवन भद्राके साथही व्यतीत करूँगा।

इतना सोचते-सोचते महाराज वहाँसे चले गये।

हायरी! पुरुष जाति! तूभी कितनी मूर्ख है! लोग कहते हैं,सर्वाधिक ज्ञान पुरुषोंमेंही है। राजनीति शास्त्र, वेद, वेदान्त, न्याय और दर्शन-शास्त्रको पढ़कर, वे अपनेको महाज्ञानी समझते हैं,

किन्तु स्त्रियोंके हृदय-दर्शन रूपी दर्शन-शास्त्रको वे एकदम नहीं समझते। मूर्ख पुरुषो! तुम अपनेको वीर समझते हो, पर यह निश्चित है, कि स्त्रियोंके हृदयके व्यूहको तुम किसी प्रकार और कभी नहीं भेद सकते। सच तो यह है कि, तुम्हारी डोर स्त्रियोंके हाथमें ही है; वे जैसे भी चाहें, तुम्हें पुतलीकी मानिन्द, भाँति-भाँतिके नाच नचा सकती हैं। तुम्हारे जीवनकी उपमाभी भारवाही गधेके जीवनसे ही दी जा सकती है। स्त्रियाँ सचमुच राज-रानियाँ हैं। तुम स्त्रियोंके प्रत्येक कटाक्ष-सङ्केतसे नाचते, गाते और हँसते हो। तुम कुछभी नहीं, स्त्रियाँ सब कुछ हैं! मानो स्त्रियाँ काया हैं और तुम उसकी छाया हो।

समय समयपर विषयी और अविवेकी पुरुषोंको इस प्रकार की ही लताड़ें देनी पड़ती हैं।



मायाकी दो शिक्षाएँ

१५

महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुन शिकारका बहाना कर कामधेनुकी फिक्रमें महर्षि जमदग्निके आश्रमको ससैन्य चले गये। एकमात्र पुत्र अजितकुमार और परम पति-व्रता प्रधाना पत्नी, वसुमतीके एकान्त और कल्याणमय अनुरोधों-का परित्याग कर, उनके सामने की हुई प्रतिज्ञाकी पालना न कर, रूपकी मोहमदिरासे मत्त हो, विवेक और अविवेककी कुछ विवेचना न कर, मानो पाप खरीदने चले गये। अन्य लोग भलेही विश्वास कर सकते थे, कि राजा शिकार खेलने गये हैं, पर विवेकका अवतार अजित तथा साक्षात् प्रतिभा-स्वरूपणी उसकी माता, इस प्रकारके मिथ्या विश्वासोंमें आनेवाले न थे। उन्होंने जैसेही सुना कि, महाराज पुरोहित और सैन्यके साथ, आजही विदेशसे लौटकर आजही शिकार खेलने चले गये और वह भी विछिभद्राके महलोंसे अर्थात् बड़ी रानीसे बिना भेट किये ही; तब राज-पुत्र और राजरानी समझ गये कि, महाराजने अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं किया। शिकारका तो बहाना मात्र है। यह कामधेनु लानेकी पूर्व सूचना है।

अजितकुमार फ़ौरन राजमन्त्रीके यहाँ गये। जाकर पूछा—"मन्त्री महाशय! पिताजी क्या वास्तवमें शिकार खेलने गये हैं? मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि, शिकारका बहाना कर वे किसीका सर्वनाश करने गये हैं।"

मन्त्रीने कहा—"कुमार! युद्ध, दिग्विजय और राज्यका विस्तार करना राजाका परमधर्म है। फिर पिताके कार्य्योंमें गुण-दोष ढूँढना पुत्रका काम नहीं होता। तुम निश्चिन्त रहो, वे अति शीघ्र सकुशल लौटेंगे।"

इस उत्तरसे कुमारको सन्तोष न हुआ। अतः बोले—"महाशय! राज्य-शासन करना हमारे मतमें प्रधान धर्म है, पर अनुचित राज्य-विस्तार करनेसे क्या लाभ? तनिक दृष्टि पसारकर देखिये, दुर्भिक्षके भीषण अत्याचारोंसे सारे राज्यमें रातदिन हाहाकार मचा रहता है,—और महाराज स्वयं दिग्विजय करते फिरते हैं। क्या करूँ मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं, अन्यथा मैं प्रजाको कभी कष्ट सहता नहीं देख सकता था।"

मन्त्री—कुमार! सच पूछते हो? यदि सच पूछते हो, तो आज मैं सारी बातें सत्य हृदयसे कहता हूँ। सुनो, मेरी दृष्टिमें माहिष्मति राज्यका अन्तिम परिणाम बड़ाही भयानक दिखाई दे रहा है। तुम सरल चित्त बालक हो। मैं नहीं चाहता था कि, तुम्हारे हास्यपूर्ण नेत्रोंके सामने विषादका निकृष्ट चित्र उपस्थित करूँ। तुम्हारे सदा सानन्द मनपर दुश्चिन्ताकी कालिमा पोतूँ, पर तुम्हारी दूर दर्शिनी बुद्धिको भुलावा देना मेरी सामर्थ्यसे बाहर है।

इसीसे वाध्य होकर तुम्हें   दृश्य दृश्य, आँखोंके सामने लाकर दिखाये देता   चतुर और बुद्धिमान् हो, आशा है व्याकुल होकर कर्त्तव्य-पालनसे विमुख न होगे।

अजित—मन्त्री महाशय! मैंभी बहुत दिनोंसे नये गुलोंको खिलता देख रहा हूँ। जिस दिनसे छोटी माके साथ धूर्त धूमकेतु आया है, उसी दिनसे हमारे सौभाग्यके उद्यानमें विषवृक्षका पौधा पैदा होगया है। मेरी समझमें बिना इस विषवृक्षको उखाड़े, राज्यका कल्याण नहीं है।

मन्त्री—धूमकेतुमें तो कोई ऐसी सामर्थ्य नहीं—सामर्थ्य की ठेकेदार तो तुम्हारी छोटी मा हैं।

अजित—सो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। छोटी मा विषके पेड़की जड़ और धूमकेतु उसकी टहनियों तथा पत्तोंका काम देता है।

मन्त्री—अतएव इस विषवृक्षका नाश होना असम्भव है।

अजित—असम्भव तो संसारमें कुछ भी नहीं।

मन्त्री—तब क्या तुम मातृ-हिंसा करना चाहते हो?

अजित—ऐसी अवस्थामें मातृ-हिंसामें कोई दोष नहीं।

मन्त्री—दोष न सही, पाप तो है?

अजित—उस पापका भार मैं हँसते-हँसते सहन कर लूँगा।

मन्त्री—क्यों?

अजित—यदि अकेले मेरे पापसे असंख्य प्राणियोंको पाप-तापसे

छुटकारा मिल जाये, राज्य शान्तिमय हो जाये, तो मेरे उस पापमें क्या दोष है ?

मन्त्री—तो रौंके लिये पाप क्यों करतेहो ?

अजित—दधीचि मुनिने अपनी देहसे इन्द्रको अस्थिदान क्यों दिया था ?

मन्त्री—वे परोपकारी, निःस्वार्थ और महापुरुष थे।

अजित—तब मैंभी कोई स्वार्थी चाण्डाल नहीं हूं।

मन्त्री—बालक! अकारण जीव-हिंसाका संकल्प त्याग दो। दूसरे ढंगके भी उपाय हैं।

अजित—बताइये, वे कौनसे और कैसे उपाय हैं ?

मन्त्री—चलो कुमार! पुण्यमयी प्रतिमा बड़ी रानी वसुमती देवीके समीप चलें। उनकी पुण्य-प्रभासे पापका अन्धकार अवश्यमेव दूर हो जायेगा। धर्मकी जय होगी। अधर्म कभी न जीत सकेगा। तुम निश्चिन्त रहो। तुम्हारे प्रफुल्ल स्वभाव और हास्य पूर्ण मुखको मलिन देखकर प्राण कातर हो रहे हैं।

इतना कह कर मन्त्री अजितका हाथ पकड़कर वसुमतीके महलोंकी ओर चल दिये।

*   *   *   *

मन्त्री और राजकुमारके चले जानेसे, थोड़ी देरके बाद उसी स्थानपर लम्पट-राज मधुच्छन्द और धूर्जराज धूमकेतु आये।

धूमकेतुने कहा—"देखो भाई! मेरी तर्कीबोंसे तुम्हारी सारी आशाएं पूरी हो गयी हैं। पिताका राज्य पाही लिया, देवदत्त

रूप शत्रु मारा ही गया। कामधेनु चार-पाँच दिनमें आजाये गी। इनके सिवा तुम्हारी और आशाएँ भी शीघ्र पूरी हो जा-येंगी। पर देखो कहीं ऐसा न हो, कि ऐश्वर्य्य पाकर तुम मुझे भुला बैठो!"

मधुच्छन्द—सेनापति! मेरी सारी आशाएँ पूरी हो गयीं। तुम्हारे भी यत्न, उद्यम और काम सब कुछ सफल होगये। अब आज मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ, उसका शान्ति पूर्वक सच्चा-सच्चा उत्तर दो। पहली बात तो यह है, कि मेरे ऊपर तुम्हारा इतना अनुग्रह किस लिये है? मेरे उपकारमें तुम्हारा क्या स्वार्थ है?

धूमकेतु—राजकुमार! परोपकार करना और विपत्तिकी वि-पत्ति दूर करना मेरा स्वभाव है। दूसरेका दुःख देखकर मेरे शरीरका रोम-रोम रोने लगता है।

मधुच्छन्द—धन्य हो! अच्छा और एक बात है। यदि तुम वास्तवमें दूसरेका दुःख नहीं देख सकते। तो देवदत्तको मारते समय तुम इतने निर्दय क्यों बन गये थे? उस समय तो मैंने तुम्हारी आँखोंमें आँसूकी एक बूँद भी नहीं देखी?

धूमकेतु—राजकुमार! उस बातको जाने दो। मैंने तुम्हारे उपकारके लियेही उस असाध्य कामको सिद्ध किया था।

मधुच्छन्द—सेनापति! मुझे मत ठगो। सच बताओ कि, तुम्हारा आन्तरिक उद्देश्य क्या है?"

धूमकेतु—क्या तुम सचमुच ही असली बात जानना चाहते हो? जानकर डरोगे तो नहीं?

मधुच्छन्द—तुम सरल चित्तसे सच-सच सारा हाल बता दो। मेरा हृदय क्षत्रिय है, ज़रा-ज़रासी बातोंसे नहीं डरता।

धूमकेतु—सुनो राजकुमार! मेरा सच्चा उद्देश्य तो यह है, कि मैं इस विशाल भारत साम्राज्यकी राज्यशक्तिको अकेला चलाऊँ। मेरे द्वारा जलायी हुई पापकी आगमें पापी कार्त्तवीर्य जलभुनकर ख़ाक हो रहेगा। उसके वंशधर अजितकुमारकी भी इस अग्निकुण्डमें आहुति दी जायेगी। रही वसुमती, वह विधवा होकर स्वयं गली-गली भीख माँगा करेगी। ये सब हो जानेपर मैं तुम्हें साम्राज्य-सिंहासनपर बैठाकर भारत सम्राट् बनाऊँगा। विप्रभद्रा उस समय भारत-सम्राज्ञी कहलायेगी और मैं सर्वेसर्वा होकर, राज्य-शक्तिधर सेनापति होकर, समस्त साम्राज्यका शासन करूँगा। बस, यही मेरा उद्देश्य है और यही मेरा स्वार्थ है।

मधुच्छन्द—विधवा और परनारी मेरी रानी होगी! क्या ऐसा होनेसे समाजमें कलङ्क न लगेगा?

धूमकेतु—उस समय इतनी ताक़त किसमें होगी, जो भारत सम्राट्पर कलङ्क रोपण कर सके? आशङ्काओंको छोड़ो राजकुमार! इधर आओ, आज एकान्तमें अनेक आवश्यक कार्य्यों का अनुष्ठान करना पड़ेगा।

इतना कहकर दोनों विप्रभद्राके महलोंकी ओर चले गये।

अतिथि-सत्कार।

१६

सरस्वती आश्रमके पास, जो महावन नामका एक जङ्गल पड़ता है, वह बड़ा सघन और दुर्लङ्घ्य है। उसमें असंख्य भयानक जन्तुओंका निवास, कहीं झाड़ी, कहीं पहाड़,—इस तरह उसका राई-रत्ती स्थान विपत्तियोंसे सरासर भरा हुआ है। महाराज कार्त्तवीर्य्य कामधेनुकी लालसासे, आज इसी महावनमें आ फँसे हैं और स्वयं आ फँसे तो आ फँसे, उन्होंने लश्कर और पुरोहित महाराजको भी मौतके मुँहमें ला पटका है। खैर, वन-जन्तुओंका तो ऐसा बड़ा भारी भय नहीं; सशस्त्र क्षत्रिय वीरताके कामोंमें सबसे बाज़ी मारते हैं; पर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और अति गम्भीर खाइयोंसे क्या वीरताकी पार बसाती है? वहाँपर वीरताकी एक भी नहीं चलती। ऐसे स्थानोंपर बड़े-बड़े वीरोंका धैर्य झोंका करता है। महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुन, कहनेको तो झोंकमें आकर महर्षि जमदग्निके आश्रमको चल पड़े, पर वहाँ तक पहुँचनेमें कितनी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ेंगी, इसका उन्होंने एक बारभी—भूलकरभी—अनुमान नहीं किया। एक तो

मार्ग विकट, तिसपर एकदम अज्ञात; अतएव उनके प्रत्येक आदमीको नानी याद आ गयी। निराहार शरीरसे जहाँतक मार्ग तै किया जा सकता था, वहाँ तक तो सबने अपनी मंज़िल पूरी की, पर अब पद-पदपर भटकनेसे, सबका कलेजा टूटने लगा। पाठक! पुरोहितजीकी अवस्था देखकर ही सबकी अवस्थायोंका अनुमान करलें।

सुनिये, पुरोहित महाराज सामनेकी पहाड़ीके नीचे, एक शिला-खण्डका सहारा लेकर, आपही आप क्या बड़-बड़ा रहे हैं?

"हाय! हाय! आजका दिन कैसा मनहूस है। तीन पहर कड़ाका करते बीत गये, इस अभागे वनका कहीं छोरही नहीं मिलता! सारा दिन तो बीत गया, पर महाराज न मालूम कहाँ घोड़ा दौड़ाकर चले गये! अब मैं किस रास्तेसे और कहाँ जाऊँ? मेरी सवारी, श्रीयुत घोटक महाशयके सारे अञ्जर-पञ्जर ढीले पड गये हैं। उन्होंने साफ़ इन्कार कर दिया है, कि लाख आर्जू-मिन्नतें करनेपर भी मैं आगे न बढ़ूँगा। इधर चरण-कमलोंनेभी जवाब दे दिया है। हाय! यदि भगवान् इस वक्त, मेरे, बजाय दोके, चार चरण कर दे, तो मैं उनका जन्म-जन्म उपकार न भूलूँ। ऐसा होनेसे, दो चरणोंको पेन्शन देकर, दोसे अच्छी तरह काम निकाल लूंगा।—अरे! यह सामने काला-काला कौन आ रहा है? भूत है या प्रेत? बापरे! तब तो आज यहाँ इतिश्री होनी दीखे है। ......अरे यह तो अच्छा-खासा, जीता-जागता आदमी दीखे है। भूख और थकावटसे मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। मैं

अच्छे-भले आदमीको, दिनमेंही बुद्धि और दृष्टिके दोष-वश भूत समझने लगा।"

वास्तवमें, उस समय पुरोहित महाराजको, अपने समीप न देख, वनके दूसरे भागमें ससैन्य ठहरे हुए महाराजने, कितनेही दूतों को उनकी खोज करनेके लिये भेज दिया था। उन्हींमेंका एक दूत पुरोहितजीको एक शिला-खण्डपर बैठा देख, शीघ्रतासे महाराजका सन्देश देनेके लिये यहाँ आ पहुंचा है।

दूतने आतेही आश्चर्य से कहा—"आप यहाँ बैठे हुए हैं?"

पुरोहित ज़रा विनोदी थे। बोले—"जी हाँ, मैं इस बगीचेकी सैर कर रहा हूँ। श्रीमान् कहाँसे पधारे हैं?"

दूत—महाराजकी आज्ञासे श्रीमान्को खोजने आया हूँ।

पुरोहित—अहा! महाराज बड़े दयासागर हैं! मुझपर उनकी अगाध कृपा है। अच्छा, इस समय महाराज कहाँ विराज रहे हैं?

दूत—इस वनके दूसरे हिस्सेमें हैं। वे आपको न देख, बड़े व्याकुल हो रहे हैं। कृपाकर शीघ्र चलिये।

पुरोहित—भाई! बातें करते हो या बातोंका तूफान ढाते हो। मैं तो तूफानकी तरह न दौड़ सकूंगा! तुम क्या अकेले ही आये हो?

दूत—जी; महाराजने चारों ओर बहुतसे दूत भेजे हैं। मेरा भाग्य प्रसन्न था, कि श्रीमान्के पास आ पहुँचा।

पुरोहित—भाई! तुम्हारा भाग्य प्रसन्न है, पर मारे भूखके

मेरा शरीर तो अवसन्न हो रहा है। मैं तो कमज़ोरी और थकावटके मारे अब एक क़दम आगे नहीं बढ़ सकता। अच्छा, पासमें कुछ खानेकी चीज़ भी है?

दूत हाथ जोड़कर नम्रतासे बोला—"देव! खाने पीनेकी चीज़ तो मैं नहीं लाया।"

पुरोहित—"मर मूर्ख! ब्राह्मण तो भूखके मारे मरा जा रहा है, और तुझसे इतना भी नहीं हुआ, कि पुरोहितजीको खोजने जा रहा हूँ, तो कुछ खाना-पीना भी साथ ले चलूँ!"

दूतने हाथ जोड़कर भीत कण्ठसे कहा,—"भगवन्! मुझे ऐसी आशा न थी, कि श्रीमान्‌से भेंट होगी ही।"

पुरोहित—मुझे मरा हुआ समझ लिया था क्या?

दूत—क्षमा करें भगवन्! अब शीघ्रता पूर्वक मेरे साथ आइये। श्रीमहाराज आपको देखे बिना बड़े व्यस्त हो रहे हैं। यदि आप बेहद थके हुए हैं, तो आइये, मेरे कन्धेका सहारा ले लीजिये। मैं आपको खूब धीरे-धीरे ले चलूँगा।

पुरोहित—अरे भाई! एकदम मुर्दा नहीं हो गया हूँ, जो ऐसा कह रहे हो।

दूत—तब आइये महाराज! ज़ियादः देर न कीजिये। आप इतनी ज़ुबान-दराज़ी तो कर सकते हैं और सौ क़दम चल नहीं सकते?

पुरोहित—अबे! तेरे देशमें क्या लोग मुँहके बल चलते हैं।

ज़ुबान-दराज़ी और चलनेसे क्या सरोकार ?.अच्छा बता, कितना दूर चलना पड़ेगा ?

दूत—बहुत थोड़ी दूर। वह देखिये भगवन्! मेरे लौटने-में विलम्ब होता देख, स्वयं महाराज ही आपके पास आ रहे हैं। ख़ैर, अब मेरी तो छुट्टी हुई। बेहद थक गया हूँ, थोड़ीदेर विश्राम करूँगा।

उस समय सचमुच महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुन अपने पुरोहित-को व्याकुलता पूर्वक खोजते-खोजते यहाँतक आ पहुँचे थे। आकर उन्होंने पुरोहित महाराजसे हँसते हुए पूछा—"कैसे मिजाज़ हैं महाराज !"

पुरोहित अपनी स्वभाव-सुलभ, विनोद-भरी भाषामें बोले—",अच्छी तरहसे ! सर्वाङ्ग सुन्दर ! शरीरमें जितना भी अपक्व रस था, वह उदरकी ज्वालासे भस्म हो चुका है। इस समय बद-हजमीका नाम भी नहीं रहा है। हाँ, एक तकलीफ़ हो रही है; शरीरके सारे हाड़ इस समय धीरे-धीरे टूट रहे हैं। पैरोंकी उँगलियाँ क्षुधाग्निसे जल गयी हैं।"

महाराज—यह कैसे ?

पुरोहित—महाराज ! पैरोंकी उँगलियाँ इसलिये कट गयी है, कि बेतरह चलना पड़ा है। आँतड़ियाँ क्षुधाग्निसे जल गयी हैं।

महाराज—ख़ैर, दो चीज़ोंसे बे-फ़िक्रीही हुई। अब मेरे साथ आओ।

पुरोहित—अब किस भाड़में पहुँचाइयेगा ?

महाराज—"अरे भाई ! कुछ खाओ—पियोगे या नहीं ?"

खाने-पीनेका नाम सुनतेही भूखे ब्राह्मणके मृत प्राय प्राण नव जीवन पा गये । बोले—"अच्छा, चलिये देर न कीजिये ।"

इसी समय किसीने मधुर कण्ठसे गाया ।

"सुन्दरबन अजब बनो ।"

"गिरिझर जल झर-झर बरसावत बेलि-चँदोव तनो ।
प्रकृति-पट्ट पहने नव वेली मधुर-स अङ्ग सनो ।

"आह ! मेरी तो सारी क्षुधा तृप्त हो गयी । कितनी मनोहर स्वर लहरी है । कैसी सुन्दर वीणाकी झङ्कार है, मानो रसका भाण्डार है !

"वह देखो मित्र ! इस गीतको गानेवाले सामने आ रहे हैं । यद्यपि ये चार ऋषिकुमार हैं, किन्तु देखनेमें रूपके आगार हैं ।

सायंकाल हो चला था । प्रकृति देवी सुन्दर शान्ति-साड़ी पहनकर, पति परमेश्वरके साथ विश्राम करनेके लिये षोड़श शृङ्गार कर रही थीं । वनके देवी-देवता उनके उस मांङ्गलिक कार्य्यमें सहायता प्रदान करनेके लिये सर्वत्र नीरवताका साम्राज्य विस्तार कर रहे थे । ऐसेही समयमें समीपवर्त्ती सरस्वती आश्रमके स्वामी, महर्षि जमदग्निके शिष्य ज्ञान, विज्ञान, न्याय और दर्शन पथ-भ्रष्ट अभ्यागतकी खोज करते-करते अपने देववरटसे साम-स्वरोंमें सुन्दर गान करते-करते, कार्त्तवीर्य्य और उनके पुरोहितके पास पहुँच गये । राजाने उन्हें भक्ति सहित प्रणाम किया । ऋषि-कुमारोंमेंसे ज्येष्ठ

ज्ञान-नामक बालकने आगे बढ़कर राजाको आशीर्वाद दिया और पूछा—"आप कौन हैं और इस निर्ज्जन वनमें किस लिये आये हैं?"

पुरोहितने आगे बढ़कर कहा—"हमारा नाम है, श्रीमान् देवधर देव शर्म्मा। महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुनके कुल-पुरोहित। ये मेरे ही साथ आये हैं। मेरे ही दोस्त हैं। नाम है हैहय वंशभूषण, चक्रवर्ती सम्राट् महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुन!"

ज्ञान—आज आश्रम कृतार्थ हुआ! हमारा आना साथ हुआ।

पुरोहित—हमारे चरणोंकी रजका ऐसा ही दिव्य प्रभाव है।

महाराज—ऋषिकुमार! इस आश्रमको कौनसे ऋषि पवित्र कर रहे हैं?

ज्ञान—क्या आपने कभी महाप्रतापी, तपोधन जमदग्निका नाम सुना है? वेही इस आश्रमके स्वामी हैं। महाराज! अनुग्रह-कर ऋषि जमदग्निके आश्रममें अतिथि-सत्कार ग्रहण कीजिये।

महाराज तो महर्षि जमदग्निके आश्रममें पहुँचनेकी तर्कीब सोचही रहे थे। किन्तु मार्गकी कठिनाईने उन्हें परेशान कर रखा था, इस समय अनायासही वहाँ तक पहुँचनेमें सहायता पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए और ऋषिकुमारोंके निमन्त्रणको ग्रहण कर फौरन अपनी सेनाके साथ सरस्वती आश्रमको चल दिये।

सत्कारका पुरस्कार

१७

पथश्रान्त और भूखसे व्याकुल महाराज कार्त्तवीर्यार्जुन, महर्षि जमदग्निके यहाँ अतिथि-सत्कार पाकर, सेना-समेत बड़े प्रसन्न हुए। प्रसन्न क्या, मानो उनके मृत शरीरमें नव जीवनका सञ्चार हो आया! उन्हें आनेके समय, यह न मालूम था, कि सरस्वती आश्रम तक पहुँचनेमें जानका ख़तरा है! यदि महर्षि अपने शिष्योंको भेजकर, उन्हें आसानीके साथ अपने आश्रममें न बुला लेते, तो यह निःसन्देह है कि, दो तीन दिनतक पहाड़ी बीहड़ स्थानोंमें भटक-भटककर, सबको भूखोंही जान दो देनी पड़ती, पर महर्षि जमदग्निने तो समस्त शिष्य और आश्रम निवासी मुनियोंको आज्ञा दे रखी थी, कि वे नित्य सायंकालको आश्रमके समीपवर्ती स्थानोंमें जाकर, विपन्न बटोहियोंका पता लगायें और सादर आश्रममें लाकर उनका यथोचित आदर-सत्कार करें। तदनुसार उस दिन ज्ञान-विज्ञानादि महर्षिके चार शिष्योंने, गुरुकी आज्ञा-पालन करनेके उद्देश्यसे, प्राण-संकटमें फँसे, ससैन्य, कार्त्तवीर्यार्जुनका उद्धार किया और आश्रममें

चे आकर उनका वैसाही सत्कार किया, कि जिस प्रकार एक राजाका होना चाहिये। राजा और उनके सैनिकोंने आधी रातके समय भी जिस वस्तुकी इच्छा की, महर्षिने अपने तपोबल और कामधेनुके प्रतापसे वही वस्तु उनको प्राप्त करा दी। उनलोगोंको नित्य ऐसे भोजन कराये, जो शायद राजमहलोंमें भी अप्राप्य थे।

वनवासीमें और इतनी क्षमता! भारत-सम्राट् तक जिस कामको आसानीसे नहीं कर सकता, उसे जङ्गली और उञ्छवृत्तिद्वारा निर्वाह करनेवाले एक ब्राह्मणने इस तरह बिना किसी असुविधाके बातकी बातमें कर दिखाया! धन्य ब्राह्मण तेरी ब्रह्मशक्तिको और धिक्कार है क्षत्रिय तेरी राज-शक्तिको! समस्त भारतका जो एकमात्र एकछत्र सम्राट्, उस तकमें यह क्षमता नहीं, कि असंख्य अतिथियोंके एक साथ आ जानेपर, उनका इच्छानुसार सत्कार कर सके और इस वृद्ध वनवासीने राज-सेना समेत राजाका असम्भव सत्कार कर दिखाया! यह सब कामधेनुकी करामात नहीं, तो और क्या है? कामधेनु न होनेसे समस्त भारतका सम्राट् होनेपर भी कार्त्तवीर्यार्जुन कङ्गाल है और जमदग्नि पर्णकुटीर-निवासी होकर भी, एकमात्र कामधेनुके प्रतापसे इन्द्र बना हुआ है! महाराज सोचने लगे कि, वह कौनसा उपाय है, जिससे वे आसानीसे कामधेनु पासके?

अब महाराज कामधेनुकीही चिन्ताके चक्करमें जा पड़े। दो दिन, दो रात, उन्होंने इसी धुनमें बिताये। इन चिन्ताओंके साथ जब कभी घरकी याद आ जाती, तो कामधेनुके लिये मना करने वाली वसुमती और पुत्र अजितपर उन्हें बड़ा क्रोध होता। "वसु-

मती बड़ी कुटिल है! मैं तो उसे अत्यन्त सरलहृदया और पवित्रा समझता था, पर उसदिन उसकी कुटिल मायाकी छलनामें फँस कर मैंने, उस समय वृथाही कामधेनुको न लाने की प्रतिज्ञा की! भद्रा सती है। उसने मेरे कल्याणके लियेही, कामधेनुका प्रत्यक्ष प्रभाव देखने और इस महा सम्पत्तिको प्राप्त करनेकी इच्छा उत्पन्न की! ओह! स्त्रियोंका चरित्र कैसा विचित्र होता है!"

आखिर जब महाराजसे किसी प्रकार भी न रहा गया, कामधेनु-प्राप्तिकी आवश्यकताने उन्हें अपना एकदम अनन्य दास बना लिया, तब उन्होंने विदा माँगनेके बहाने, महर्षिसे साक्षात् किया। महर्षि जमदग्निने और दो दिन रहनेका आग्रह करते हुए, सभ्यतानुरोधवश उनसे किसी आवश्यकतानुसार वस्तु माँगनेके लिये कहा।

राजा इस सुयोगपर न चूके। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "महर्षि! प्रसन्न चित्तसे मेरी एक प्रार्थना श्रवण कीजिये। आप राज-भेंटमें मुझे अपनी नन्दा कामधेनु दीजिये।"

जमदग्नि इस वाक्यको सुनतेही चौंक पड़े। मनही मन सोचा,—"यह कैसी प्रार्थना! यह कैसा उद्योग! मानो राजा मेरे सर्वस्वकोही समाप्त करना चाहते हैं।" बोले—"नरनाथ! क्या आप मेरे साथ हँसी कर रहे हैं? मालूम होता है, सम्राट्की इस प्रज्ञासे, श्रीमान्के अतिथि-सत्कारमें कोई त्रुटि हो गयी है अन्यथा जमदग्नि ऋषि तो किसी क्षत्रियके परिहासका पात्र नहीं है!"

राजा—परिहास नहीं ऋषिवर ! मेरे अनुचित आग्रहको क्षमा कीजिये। चाहे जिस मूल्यमें हो,—राज, धन, यहाँ तक कि, प्राण पर्य्यन्त बदलेमें देकर मैं कामधेनुकी कामना करता हूँ। कृपाकर आप मेरी इच्छा-पूर्त्ति कीजिये।

जमदग्नि—पृथ्वीनाथ! यह आप कैसी बातें करते हैं! जमदग्नि ऋषि क्या गाय बेचनेवाला है? क्या मैं उसे राज्य सम्पत्तिसे बदला कर बेचूँगा? धेनु—कामधेनु, मेरी नन्दा कामधेनु,—जो मेरी प्राण-स्वरूपा है, जिसे मैं जननीसे ज़ियादः समझता हूँ, जो मेरी कठिन तपस्याका सुफल है, क्या मैं भुजाओंके बलसे पायी हुई उस सम्पत्तिके बदलेमें तपोबलसे पायी काम धेनुको बेच दूँगा? क्या आप धन-बलद्वारा मेरी तपस्याका फल ख़रीदना चाहते हैं! ऐसा कहकर क्या आप मेरे धैर्य्यकी परीक्षा करना चाहते हैं?

राजा—अच्छा ऋषे! यदि आप उसे बेचना नहीं चाहते, तो दान ही कर दीजिये। मैं तो जिस तरह भी हो, आपकी नन्दाको लेना चाहता हूँ। यद्यपि मैं ससागरा पृथ्वीका एकछत्र सम्राट् हूँ। समस्त ब्राह्मण जाति मेरे ही द्वारसे नित्य भिक्षा प्राप्त करती है; इतना सोच लीजिये, कि इतना बड़ादानी आज सौभाग्यवश आपके द्वारपर भिक्षुकके रूपमें खड़ा है। कृपाकर नन्दाको मुझे दीजिये।

जमदग्नि—राजन्! आप तो दानके पात्र नहीं हैं!

राजा—ठीक, मैं क्षत्रिय हूँ, अतएव दान नहीं ले सकता,

पर इससे क्या? मेरे साथ राज-पुरोहित आये हुए हैं, आप उन्हें दान कर दीजिये।

जमदग्नि—महाराज! आप मुझे क्यों वृथा ठग रहे हैं? क्यों प्रतिनिधिद्वारा दान-ग्रहण करनेकी अयोग्य चेष्टा कर रहे हैं? मान लिया कि, आपका पुरोहित एक कुलीन ब्राह्मण है, पर उसका पालन तो आपकेही अन्नसे होता है? वह आपकी नौकरी तो करता ही है! अतएव वह जमदग्निका दान-पात्र कदापि नहीं हो सकता। आप ऐसी छलना-भरा संकल्प छोड़ दीजिये। नन्दा मेरी साक्षात् माता है; नन्दा मेरी इष्टदेवी भगवती है। नन्दाकी नित्य सेवा करनाही मेरे लिये सारधर्म है; अतएव प्रार्थना करता हूं, कि आप मुझे भूलकर भी धर्म-भ्रष्ट न करें।

राजा—देखो ब्राह्मण! हम क्षत्रिय सन्तान हैं, हमें बात करते क्रोध आ जाता है अर्थात् हम क्रोध-भैरवके उपासक हैं; याद रखो, मुझे क्रोध दिखाकर लाभमें न रहने पाओगे। नन्दाके बदलेमें मैं तुम्हें एक हजार दुधारु गायें देनेके लिये तय्यार हूं। अधिक क्या, मैं यदि तुम चाहो, तो इसके बदलेमें अपना आधा साम्राज्यभी दे सकता हूं; पर मेरी प्रार्थना मानकर कामधेनु अवश्य दो। अन्यथा याद रखो, प्रजाके धनपर राजाका भी अधिकार होता है!

जमदग्नि—महाराज! ब्राह्मणका सर्वस्व लेनेका लोभ क्यों करते हैं? प्रजाके धनपर राजाका अधिकार किस शास्त्रकी व्यवस्थाके अनुसार है? यह न कहिये महाराज! कि राजाके धन

पर प्रजाका पूरा अधिकार है। राज-सम्पत्ति राजाकी नहीं—प्रजाकी है! साधारण कार्य्यके लिये, प्रजाके लोग जो कुछ राजाको दिया करते हैं, उसीका नाम राजकर है। मैं क्या आपकी प्रजा हूं? मैं क्या आपको राजकर देकर आपके राज्यमें निवास करता हू? कैसा भ्रम है! देखिये महाराज! क्षत्रिय राजा अपने बाहुबलसे राज्यका विस्तार और राज्यका शासन अवश्य कर सकते हैं, किन्तु अनावृष्टि, अकाल मृत्यु, और दुर्भिक्ष दूरकर, राज्यका कल्याण नहीं कर सकते; क्योंकि यह कार्य बाहुबलसे सिद्ध नहीं होता, उसके लिये दैवबलकी आवश्यकता होती है; सो दैवबलपर क्षत्रियोंका अधिकार ही नहीं है; अतएव राज्यके कल्याणके लिये—अपनेही अधिकारमें ऋषि-मुनिलोग, अपने आश्रमोंकी प्रतिष्ठा किया करते हैं। हमलोग आपकी प्रजा नहीं, वरन् आश्रित हैं; सो आश्रितोका धन बलपूर्वक ग्रहण करना न तो राजाका धर्म है, न क्षत्रियोंका धर्म है और न मनुष्योका ही धर्म है!

जमदग्निकी ऐसी दृढ़ताको देखकर कार्त्तवीर्य्यार्जुन समझ गये, कि यह ब्राह्मण सहजमेंही मेरी बात न मानेगा, अतः दण्डनीतिसे भी काम लेना चाहिये। अतएव वे कुछेक क्रुद्ध कण्ठसे बोले—"जमदग्नि! अभी भी कहता हूँ कि, तनिक सावधान होकर मनमें विचार कर देखो। मुझे दैवबल दिखाकर डरानेकी चेष्टा न करो; मैं दैवबलका कङ्गाल नहीं हूँ। दत्तात्रेयमुनिके वर-प्रभावसे मैं दैवबलमें आपसे कमज़ोर नहीं हूँ। देखो, मानव-

समाजकी रक्षा करना, मनुष्योंके लिये परम आवश्यक कर्त्तव्य है। मैं क्षत्रिय राजा हूँ; इसलिये बाहुबलसे राज्य-पालन करना मेरा कर्त्तव्य कर्म है, क्योंकि क्षत्रिय बलवान् होते हैं। फिर मैं तो बाहु और दैव—दोनों बलोंसे बलवान् हूँ। तुम हो क्षीणप्राण दुर्बल ब्राह्मण; तुममें किसी प्रकारकी भी शक्ति-सामर्थ्य नहीं है। अतएव वेद, पुराण और शास्त्रोंको तुम्हारे हाथमें सौंपकर हम कृपाण, धनुष और विविध अस्त्र धारण करते हैं। राज्य-सम्पत्तियोंके बदलेमें अबतक तुम्हारी सेवा करते आते हैं। सृष्टिके आरम्भसे तुम्हारी पूजाकर मान वृद्धि करते आते हैं। इन सब बातोंपर विचार करके बताओ, कि ऐसी अवस्थामें ब्राह्मण श्रेष्ठ होंगे या क्षत्रिय? मानव समाजके कल्याणके लिये एक काम आप करते हैं और एक काम हम, पर यह तो बताओ, कि ब्राह्मणोंमें ऐसी कितनी आत्माएँ हैं, जो क्षत्रियोंकी भाँति, देशके लिये, समाजके लिये, अपनी छाती चीरकर खून दे सकती हों? हमलोग आपसे राजकर क्यों ग्रहण नहीं करते, क्या आप इसका रहस्य जानते हैं? आपलोग दुर्बल, दरिद्र और भिक्षुक हैं; अतः सम्भव है, आज थोड़ासा राज-कर दे सकें, पर कल तो आप उससे दस गुनी भीख माँग लेंगे? आप तो तपोधर्मी हैं, अतएव आपका राज-कर क्षमा हो सकता है, किन्तु ऐसे भी ब्राह्मण हैं, जो राजाको राजकर दिया करते हैं। फिर ब्राह्मण मेरी प्रजा कैसे न हुए? आप मेरी प्रजा हैं, अतएव आप राजकर स्वरूप नन्दाको मुझे अवश्य दीजिये।"

जमदग्नि—नरनाथ! क्षमा कीजिये। मुझे आपकी सारी

बातें स्वीकृत हैं। आप क्षत्रिय हैं, अतएव इस समय जो आप वार्त्तालाप कर रहे हैं, वह क्षत्रियोंकोही शोभा देता है। तथापि मैं आपके हितेच्छु ब्राह्मणकी हैसियतसे आपको, जो उपदेश देता हूँ, उसे कान लगाकर सुनिये; देखिये, आप ब्राह्मणका तिरस्कार न करें, क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय कभी समान नहीं होते। ब्राह्मण लोग क्षण भरमें क्षत्रियत्व धारणकर सकते हैं, किन्तु क्षत्रियलोग कभी ब्रह्मत्व लाभ नहीं कर सकते। उदाहरण स्वरूप देख लीजिये; विश्वामित्र महर्षि और महायोगी होनेपर भी आजतक ब्रह्मत्व नहीं प्राप्त कर सके, किन्तु मेरा पुत्र परशुराम क्षत्रियवृत्ति स्वरूपा मल्ल-विद्या सीखकर सब क्षत्रिय-श्रेष्ठ महावीर हो गया है। अतएव आप मेरा अनुरोध मानकर ब्राह्मणका अपमान न कीजिये; श्रेष्ठको निकृष्ट न समझिये। बल या छल-पूर्वक एक निरीह ब्राह्मणका सर्वस्व न लूटिये। आपको पाप-कर्मसे निवृत्त करना मेरा परम धर्म है। इसलिये मैं आपसे जो अनुरोध करता हूँ, आपको जो उपदेश देता हूँ—उसे अपने कल्याणके लिये सुनिये, मानिये। आपने यही न कहा, कि मैं दुर्बल हूँ ? यदि मैं दुर्बल हूं, तो दुर्बलोंकी रक्षा करना क्षत्रियोंका परम-धर्म है। आप राजा हैं, आप रक्षक हैं। लोभ दूर कीजिये; नन्दाको लेनेकी आशा परित्याग कीजिये। हाँ, आपको जब कभी जिस चीज़की ज़रूरत हो, उसे मुझसे कहिये; मैं उसे तपस्या या नन्दाके प्रभावसे प्राप्तकर आपकी अभिलाषा पूर्णकर दूँगा। नन्दा मेरी देख-रेखमें आपकेही राज्यमें निवास करती है। आप

पृथ्वीके सम्राट् हैं। नन्दा कभी इस पृथ्वीसे अलग नहीं हो सकती। आप कोई चिन्ता न करें; मुझे नन्दाकी सेवासे वञ्चित न करें। और एक बात है महाराज! कामधेनुकी प्राप्ति अनेक पुण्य और कठोर तपस्याओंसे होती है। मैंने नन्दाको बड़ी कठिन साधना करनेके बाद पाया है; अतएव नन्दापर सदा-सर्वदा मेरा ही अधिकार रहेगा, आप उसपर कदापि अधिकार नहीं कर सकते; इस लिये आप कामधेनु पानेकी आशाको परित्याग करदें।

महर्षि जमदग्निके उक्त युक्ति-युक्त वाक्योंको सुनकर कार्त्त-वीर्य गुस्सेसे झल्ला उठे। बोले—"सुन रे ब्राह्मण! मेरी अन्तिम बातको सुन। मैं तेरे साथ न्याय-शास्त्रके तर्क करने नहीं आया हूँ, मैं तो पहलेसेही स्थिरकर नन्दाको लेनेके लिये तेरे पास आया हूँ; अतएव तू नन्दाको देकर मेरे साथ मित्रता स्थापित कर। क्योंकि मैं ससागरा, सद्वीपा, पृथ्वीका एकेश्वर, हैहय वंशोत्पन्न चक्रवर्त्ती, महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुन हूँ। मेरे साथ मित्रता करनेसे तेरे जैसे जङ्गलमें पत्तोंकी कुटिया छाकर रहने और जङ्गली फल-पत्तोंपर बसर करनेवाले भिक्षा-जीवी ब्राह्मणका भाग्योदय हो जायेगा।

"सच तो यह है, कि ब्राह्मण जातिही कमअक्ल होती है। देख बूढ़े! फिर थोड़ासा समय देता हूँ— अच्छी तरह काम-धेनु देने या न देनेके परिणामोंकी विवेचना करले; पर यह भी निश्चित रूपसे जानले, कि चाहे जिस तरह हो—सीधे-सादे ढंग

अथवा ज़बर्दस्तीसे, नन्दाको विना लिये, मैं किसी तरह नहीं मानूंगा ; क्योंकि नन्दा तेरी टूटी-फूटी कुटीमें रहने लायक नहीं है; नन्दा मेरे राज-भवनोंके सुख भोगने लायक है। फिर निकृष्ट स्थानोंसे उत्कृष्ट रत्नोंका संग्रह करना, अधर्म नहीं माना जाता।"

जमदग्नि-महाराज! क्या आप अभी तक लोभके पञ्जेसे न छूट सके ? तब तो मैं समझ गया, कि आप ब्राह्मण-पालक राजा नहीं हैं; आप अक्षत्रिय, अहिन्दू और अनार्य हैं! मैंने सोलह दिन व्यापी निर्जल उपवास किया है। राजा भगवान्‌के अंशसे होते हैं; आजके दिन द्वादशीके व्रतकी पारणाकी शान्तिके लिये अतिथि-सेवा करना मेरा सनातन नियम है; सो आज आप सरीखे प्रजा पालक राजाको पाकर,मैं मन-ही-मन बड़ा खुश हुआ था; किन्तु अब देखता हूँ, कि मेरा खुश होना बेकार था।

इतना कहते कहते ऋषि कुछ देरके लिये मौन हो रहे। फिर कुछ देर बाद क्रोधसे काँपते हुए, गरजकर बोले—"पापी! दुष्ट! तेरे यहाँ आनेसे मेरा आश्रम अपवित्र हो गया। मूढ़! राजकुलके कलङ्क! अपने राज्य-गौरवसे अन्धा होकर क्या मुझे अपनी उपाधियोंकी छटा दिखाता है ? तू पृथ्वीका सम्राट् और राजराजेश्वर है—मान लिया ; पर मैं कौन हूँ, यह भी जानता है ? सुन, स्वयं नारायण वासुदेव जिनके चरण चिह्नको अनन्तकालसे अपनी छातीपर धारण करते आते हैं—उन्हीं भृगुका वंशधर—अग्नि-तुल्य तेजस्वी, संसारके महापुरुष, परशुरामका पिता स्वयं अग्नि स्वरूप जमदग्नि ऋषि हूँ ; क्या तू मेरी एक दरिद्र

पृथ्वीर वासी ब्राह्मण समझकर अवज्ञा करता है? बकवादी! "क्या अग्नि, काष्ठखण्डको छोड़, हीरे-मोतियोंमें रह सकती है। मेरे प्रत्येक क्षणमें, मेरे हरेक पलमें, तेरे जैसे कितनेही कार्त्तवीर्यार्जुन उत्पन्न और लय हो जाते हैं, यह भी जानता है? धैर्य और क्षमा करना तपस्वियोंके स्वभावका भूषण है अन्यथा अबतक इस जगत्‌में तेरे जैसे पाखण्डियोंका अस्तित्व बातकी बातमें लुप्त हो जाता।"

जमदग्निके इन कटुवचनोंसे राजाका क्रोध और दो गुणा हो उठा। वह जमदग्निको झिड़ककर बोला—"चुपरे नीच ब्राह्मण! मैं तेरे इस असार वागाडम्बरसे डरने वाला क्षत्रिय नहीं हूँ। दत्तात्रेय मुनिके प्रतापसे, मेरा शरीर, जीवन और सम्पत्ति तेरे तपोबलके सामने अक्षय और अमर है। किसमें सामर्थ है, जो मेरा बालभी बाँका कर सके? मैं तेरे जैसे अति सामान्य ब्राह्मणाधमके कोपानलसे डरनेवाला आदमी नहीं हूँ। यह देख, मैं तेरे सामने, छाती उन्नत किये, नन्दाको ग्रहण करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा किये, तद्वत् खड़ा हूँ, यदि तुझमें कुछ शक्ति है, तो मुझे परास्त कर या मेरे इस केशराशिमेंका एक छोटासा बाल भी बाँका कर। देखूँ, तेरे तपका प्रभाव कितना है? और सुन ब्राह्मण! मेरी प्रतिज्ञाको अच्छी तरहसे सुन! मैं नन्दाको पानेके लिये ब्रह्म-हत्यातक कर सकता हूँ। तेरा असार तप-प्रभाव किसी तरह भी नन्दाकी रक्षा न कर सकेगा।"

जमदग्नि—क्या कहा? इतनी स्पर्द्धा! पाखण्डी! हिन्दू-कुलाङ्गार!

ब्राह्मणका सर्वस्व हरनेके लिये ब्रह्म-हत्यातक करनेके लिये तय्यार है? बाहु-बलके गौरवसे अन्धा होकर मुझे प्राण-भय दिखाने आया है? नास्तिक! तू ब्राह्मणके कोपानलसे नहीं डरता? अरे मूर्ख! मैं तो तुझे ब्रह्म-कोपानलका तेज अच्छी तरह दिखा देता; किन्तु मैं ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मण सदा-सर्वदा ब्राह्मणही रहेंगे। वे कभी अपना धर्म नहीं त्यागेंगे। तुझ जैसे क्षत्रियाधमकी ब्रह्महत्या करनेमें प्रवृत्ति हो सकती है, किन्तु जमदग्निकी प्रवृत्ति आश्रममें आये अतिथिकी हिंसा करनेके लिये नहीं हो सकती। सूर्य्य-किरणें विष्ठाको सुखाकर उसे दुर्गन्ध-हीन कर सकती हैं, किन्तु विष्ठा कभी सूर्य्यको स्पर्श, दुर्गन्धमय या अपवित्र नहीं कर सकता। रे अहिन्दू क्षत्रिय-मल! तेरी दुर्गन्धि से ब्राह्मण-सूर्य्य कभी अपवित्र नहीं होगा। तू राजा है, अतः आज जमदग्निको प्राण-भय दिखाने आया है? हम क्या तेरी भाँति षड् रिपुओंके दोस्त हैं, जो प्राणोंकी मायासे कातर हो जायेंगे? हाय! हाय! नास्तिक! तेरेही जैसे अधर्मीने क्षत्रिय-कुलको अमिट कलङ्क दिया है? तू पृथ्वीका पालक नहीं, वरन् सर्वसहा पृथ्वीका भार है। यदि तूने नन्दाको पानेके लिये ब्रह्महत्या करने-का निश्चय कर लिया है, तो मेरी भी प्रतिज्ञा है, कि मैं नन्दाकी रक्षा करनेके लिये प्राण जानेपर भी अतिथि-हिंसा नहीं करूँगा वरन् सन्तुष्ट चित्तसे तुझे क्षमा कर दूँगा। तेरे जैसे दुर्बल क्षत्रिय की, फिर जो मेरा अभ्यागत है उसकी, हिंसा कर तपोवनको कलङ्कित न करूँगा।

राजा—तो हे ब्राह्मण! अब तेरी और मेरी दोनोंकी प्रतिज्ञा की रक्षा हो। आ, मेरे इस प्रचण्ड भालेके आघातसे प्राणत्याग कर, मैं बिना कामधेनु लिये घर नहीं लौटूंगा।

इतना कह कार्त्तवीर्य्यने अपना भाला उठा लिया।

यह देख जमदग्नि छाती खोलकर इसबार शान्त और शिष्ट भावसे बोले—"आओ पृथ्वीनाथ! मै आपकी कामना पूर्ण करनेके लिये तय्यार हो गया। मैं मौतसे नहीं डरूंगा।' क्योंकि मै वृद्धता और मृत्युके अधीन नही हूं। मेरी बिना इच्छाके, मुझे कोई नहीं मार सकता। पर आज मैं एक विशेष कारणवश अपने प्राण अवश्य नष्ट करूंगा। यदि आप अपने पापमय हाथोंसे नन्दाको स्पर्श करेंगे, तो सच जानिये, उससे मेरा तपोबल कलंङ्कित हो जायेगा। अतएव तपस्वीके लिये, उसके तपोबल कलङ्कित होनेसे पहले, शरीर-त्याग देनाही ठीक है। फिर आप जैसे पातकी अतिथिका सत्कार करनेसे मैं और मेरा आश्रम दोनों दूषित हो चुके हैं! अतएव मेरे लिये अब शरीरत्याग देना ही सर्वथा श्रेष्ठ है।"

इतना कहनेके बाद महर्षि चुप हो रहे। कुछ देरबाद आकाश की ओर देखते हुए, मन्द स्वरसे बोले—"सति रेणुके! अबतक तो तुम स्वर्गका, शायद आधा रास्ता तै कर गयीं होंगी! सति! तुमने अपनी इच्छासे शरीर-त्याग किया है। अब मै भी सति-सङ्ग-हीन जीवन नही धारण कर सकूंगा; इसलिये हे सति शिरोमणि! तनिक ठहरो, कुछ देर मेरी भी प्रतीक्षा करो, मैं भी तुम्हारे साथ

चलता हूँ। मा भगवती नन्दा ! मैं तुम्हारी रक्षाके निमित्त आत्म-दान कर रहा हूँ; पर इस आत्माके स्वर्ग चले जानेके बाद, यह दुष्ट तुम्हें यहाँसे लेही जायेगा; अतएव जाओ मा ! क्षत्रिय कुलान्त कारिणी बनकर कार्त्तवीर्य्यके साथ जाओ ! हे अनादि पुरुष ! तुम मेरे पुत्र रूपमें, कर्म-फलके साक्षी-स्वरूप मेरे घरमें, विराजमान हो; अतएव मेरा कर्म-फल ग्रहण करो। महाराज कार्त्तवी-र्य्यार्जुन ! जमदग्निका वक्षःस्थल तय्यार है। तुम अपनी नारकी प्रवृत्तिको चरितार्थ करनेके लिये, उसमें अस्त्राघात करो। विलम्ब होनेसे तुम्हारी इच्छा-पूर्ति न हो सकेगी।"

यह कह जमदग्नि एक ऊँची वेदीपर जा बैठे। महाराज ! कार्त्तवीर्य्यार्जुनने धर्माधर्मका तनिक भी ख़याल न कर, मदोन्मत्त हो, उनकी छातीमें अपना भाला भोकही दिया।

जमदग्नि इस आघातसे तनिक भी विचलित न हुए। वे कार्त्त-वीर्य्यार्जुनकी ओर दया-भरी दृष्टिसे देखकर बोले—"देखो, महाराज ! मैं इतनेपर भी तुम्हें क्षमा किये देता हूँ। पर याद रखो, उन सर्व शक्तिमान्, महाविचारपति और सर्व साक्षी भग-वान्‌के समीप, तुम भीषण दोषी हो; अतएव तुम्हें उनसे अपने इस ब्रह्महत्या रूप पापके लिये अवश्यही क्षमा माँगनी पड़ेगी। ओह ! देहके साथ प्राणोंका भी कैसा कठिन माया-बन्धन है ! मानो प्राण जाते-जाते भी नहीं जाना चाहते।" इतना कहते-कहते महर्षि की समाधि लग गयी। उपस्थित लोगोंमेंसे जिसने भी इस दृश्यको देखा, वही राजाको मन-ही-मन शतमुखसे धिक्कारने लगा।

इसी समय कार्त्तवीर्य्यार्जुनके पुरोहितको, खूनसे रँगी देह, दाँये हाथमें कठोर कुठार धारण किये, उन्मत्त-वेशी, परशुराम आते देख पड़े। उनका तत्कालीन भयानक भेष देख पुरोहित मारे भयके एक धीमीसी चीख मार उठा, जिससे सबका ध्यान जमदग्निकी ओरसे हटकर परशुरामकी ओर आकर्षित होगया।

वास्तवमें इस समय परशुरामका बड़ा विकट वेश था। उन्होने जबसे पिताके आज्ञानुसार मातृ-हत्या की है, तबसे वे दिन रात उन्मत्तोंकी भाँति संज्ञा-शून्यसे रहा करते हैं। उनके मनमें हरदम माताकी मधुर स्नेहमयी मूर्ति सजीव भावसे विराजमान रहती है।

हाँ, तो पिताके समीप आकर उन्होंने, अपनी उसी स्वाभाविक उन्मत्ततासे प्रेरित हो कहा—"पितः! देखिये। मैं आपकी आज्ञाका अक्षर-अक्षर पालन कर आया। देखिये, मेरा सारा शरीर माताके पवित्र रक्तसे रंगा हुआ है। आप तो इस रक्तको अवश्य पहचानते होंगे? कहिये, 'यह मेरी माताकाही रक्त है न? उन्हीं आपकी सहधर्मिणी; उन्हीं आपकी सती पत्नी, उन्हीं भगवती रेणुकाके शरीरका खून है न? (अपने हाथोंको देखकर) पितः! अच्छी तरहसे देख लीजिये! यह वही रक्त है, जो उन सतिके समस्त शरीरमें प्रवाहित हो रहा था अथवा जिससे मेरा यह पार्थिव शरीर बना है। (जमदग्निकी छातीसे रक्त बहता देखकर) यह क्या! यह क्या पितः! यह आपकी कैसी दशा! सारा शरीर खूनसे लद-पथ हो रहा है। मुँहपर मौतकी

हवाइयाँ उड़ रही हैं! छातीसे रक्तका सोता बह रहा है! ऐसा पैशाचिक कर्म किसने किया! ब्रह्म-हत्या! ऋषि-हत्या! अग्नि-तुल्य महातेजा जमदग्निकी हत्या! मेरे पिताकी हत्या! ओफ!"

इतना कहते-कहते उनकी दृष्टि सहसा कार्तवीर्यपर पड़ी; पूछा—"तुम कौन हो? अहा, तुम तो बड़े दयावान् हो! शायद ब्राह्मणका कष्ट देखकर तुम्हारा हृदय द्रवित हुआ होगा, इसीसे यहाँ आकर तुमने उनकी छातीसे यह अस्त्र निकाला है। शायद तुम क्षत्रिय हो? ठीक तो है; क्षत्रियके सिवा और दूसरा ऐसा कौनसा वर्ण हैं, जिसके प्राण ब्राह्मणका दुःख देखकर दयार्द्र हो। आओ भाई! मेरी थोड़ीसी मदद करो। देखें, ऋषिके कितना गहरा घाव लगा है?"

इतना कह परशुरामने जमदग्निके घावकी गौरसे परीक्षा की। परीक्षा करनेसे उन्हें मालूम हुआ, कि घाव अति सांघातिक दिखाई देता है। "चोट बड़ी गहरी लगी है; देखो न, उसमेंसे कितने वेगसे रक्त-धारा बह रही है। (जमदग्निके कन्धेपर हाथ रख,) बताइये पितः! यदि कुछ कहनेकी शक्ति है, तो बताइये; यह नृशंस काण्ड किसने किया है?"

जमदग्नि समाधि लगाकर परमात्माका ध्यान लगा रहे थे, पर पुत्रको देखनेकी उनकी भी तीव्र इच्छा थी, अतएव प्राण छोड़नेसे पहले ही पुत्रको आया देख, उन्होंने आँखें खोल दीं। क्षीण कण्ठसे बोले—"आओ पुत्र-रत्न! पानी—नहीं, मैंने अभी स्नान नहीं किया है। (इशारेसे राजाको दिखाकर) देखो—यह हमारे—राजा—प्रति

पालक—रक्षक—भय-त्राता—क्षत्रिय—महावीर—आः—आः—

परशुराम घबराते हुए उत्सुकतासे बोले—"बताइये पिता! ये कौन हैं? यहाँ क्यों आये हैं? इनका नाम क्या है?"

जमदग्नि—"ये पृथ्वीके सम्राट्! एकछत्री—राज-राजेश्वर कार्तवीर्य्यार्जुन हैं। मेरे प्राण-हन्ता! नन्दा कामधेनुके हर्ता और तुम्हारे आश्रमके अतिथि हैं, अतएव अतिथिपर दया करना पुत्र।"

परशुराम इतना सुनतेही क्रोधसे भर गये। दोनों नेत्र धधकते अङ्गारेकी तरह लाल और भयावने प्रतीत होने लगे। देहकी बोटी-बोटी फड़क उठी। आश्चर्य्यमें आकर कहा,—"कैसी विचित्र कैसी दुर्बोध्य, कैसी घोर कुज्झटिकामय पहेली सुन रहा हूँ! क्या राजा कार्तवीर्य्यार्जुन ब्रह्म-हन्ता हैं? क्षत्रिय-कुल-शिरोमणि महावीर कार्त्तवीर्यने मेरे पिता जमदग्निकी हत्या की है?" अनन्तर उन्होंने राजाके पास जाकर पूछा,—"बताओ राजन्! सच्ची बात बताओ। क्या सच-मुचही तुम इन जरा-जीर्ण और क्षीणदेह ब्राह्मणके घातक हो? तब तो कार्त्तवीर्य राजा नहीं, वरन् घातक चाण्डाल हैं। और राजा! ब्रह्म-हत्याके भीषण पापसे तो, चण्डाल भी, डरते हैं। इस लिये तुम चण्डालसे भी गये-गुजरे हो। तुम्हारा जन्म शायद किसी दानवके घृणित औरस और पिशाचीके गर्भसे हुआ है। यदि ऐसा था, तो तुमने अनधिकार चेष्टा क्यों की? तपस्वीके पवित्र तपस्याश्रममें तुम्हारे आनेकी क्या आवश्यकता थी?

क्या तुम अतिथि हो ? पिताने अतिथिका सत्कार करना ब्राह्मण-धर्म समझ तुम्हारा समुचित सत्कार किया और तुमने उनकी हत्या कर, हाथोंहाथ उसका योग्य पुरस्कारभी प्रदान कर दिया ?

"दुष्ट ! कामधेनुपर तूने मन क्यों चलाया ? वह तो कामधेनु है— तपस्याका धन है। उसके अधिकारी जो तपस्वीके सिवा उसके पुत्र, कन्या और राजा-गुरु तक अधिकारी नहीं होते। कामधेनुको सामान्य गायोंकी भाँति सबलोग अपने यहाँ नहीं रख सकते। फिर तुमने उसपर लोभ क्यों किया ? यदि विश्वास न हो, तो यह देखो, कामधेनु विल्व वृक्षके मूलमें बँध रही है। जाओ, उसे अपने यहाँ ले जाओ। जब वह तुम्हें तुम्हारी इच्छित वस्तु न दे ? तो तब इसी भावसे उसे भी मार डालना। ऐसा करनेसे ब्रह्म-हत्या रूप महा व्रतके उद्यापनान्तमें दक्षिणा स्वरूप गो-हत्याका दान हो जायेगा। जा पापी।"

— इतना कहते-कहते ऋषिकुमार परशुरामका कण्ठ रुँध गया। वे आँखें तरेरकर कार्त्तवीर्यकी ओर वक्र दृष्टिसे देखने लगे।

कार्त्तवीर्य्यने परशुरामकोभी पिताका योग्य पुत्र अर्थात् दूसरेके अपराधका दण्ड आपने आप ही लेने वाला समझा था। इसीसे उसने उन्हें भी अपनी फटकारमें लानेकी चेष्टा की। बोला—"चुप रे निर्बोध ब्राह्मणके छोकरे। अपनी इस बेलगाम जुबानको रोक। मैंने ब्रह्महत्या नहीं की, वरन् राजद्रोहीको दण्ड दिया है। मैं पृथ्वीका सम्राट् हूँ। मेरे लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य और शूद्र सभी समान हैं। अब ऐसी बद जुबान न बोलना वर्ना तेरी भी वही दशा होगी, जो तेरे बापकी हुई है।"

परशुराम—ओफ! इतनी देर बाद समझा, किन्तु दुष्ट! तू ब्राह्मण की क्षमाका पात्र नहीं है। तुझे अपने बाहुबलका घमण्ड है। पर देख, इस छोकरेके बाहुबलके सामने तेरा बाहुबल कितना तुच्छ है; परीक्षा करके देख ले। तू तो अपनेको पृथ्वीजयी, अमित पराक्रमी और बलका अवतार बताता है, और मैं दीन ब्राह्मण शरीरसे—उस शरीरसे, जिसे तूने अपने सामान्य शस्त्रसे घायल किया है, जन्माहुआ ब्राह्मण कुमार हूं। मैं अपने पिताकी आज्ञाका अनादर न करूंगा, भूलकर भी तेरे शरीरपर अस्त्राघात न करूंगा, तथापि सूने हाथ तेरे आक्रमणोंका निवारण, कर तुझे पराजित और दूर फेंक दूंगा।"

राजा, परशुरामके इन कटु वाक्योंको न सुन सका और उसने झट परशुरामके शरीरमे हाथका भाला, लक्ष्य करके मारा। परशुरामने उसे उछलकर हाथमें पकड़ लिया और इशारेसे ही तोड़कर दूर फेंक दिया। यह देख कार्त्तवीर्यने उनपर अपने खड्गका प्रहार किया; परशुरामने इस बारभी बांये हाथसे प्रहारका निवारणकर राजाके दोनो हाथ पकड़ लिये। कार्त्तवीर्यने अपने हाथ छुड़ानेके लिये कितनेही तर्कीबें की; कितनेही पैतरें बदले, पर परशुरामके एक हाथसे वह अपने दोनों हाथ न छुडा सका। आखिर हारकर हाँफने लगा। उस समय मृतप्राय जमदग्निने क्षीण कण्ठसे कहा—"पुत्र! क्षमा।'

परशुरामने इतना सुनतेही राजाके दोनों हाथ छोड़ दिये। बोले—"क्यों ? क्या यही क्षमाका अवतार महादेवके समान महावीर महर्षि तेरे साथ राजद्रोह करने गये थे ? ओह ! क्या करूं ! पिताने अपने आज्ञा-पाशमें बाँध रखा है, अन्यथा इसी क्षण तेरे इस पापी शरीरके असंख्य खण्ड कर डालता। अब तो बतला गर्वचूर हो गया न ? पृथ्वीजयी वीर एक सामान्य ब्राह्मण कुमारसे परास्त हो गया न ! जा दुष्ट ! अब तुझे क्या अधिक लज्जित करूँ। पिताकी आज्ञा है, कि तुझे बिना कुछ कहे-सुने छोड़ दूं। इसलिये जा, अपने घरको और शान्तिपूर्वक राज्य-शासन कर। पर याद रख, तेरी आयुका अन्तिम दिन मेरा है। उसकी प्रतीक्षा करना। मौत किसीने नहीं देखी, यद्यपि मैं तेरा काल हूँ। किन्तु जबतक तू इस तपोवनमें रहेगा तबतक तुझे एक काँटेका भी भय नहीं है। पर यह खूब याद रख, कि मैं पितृ-हत्याकी प्रतिहिंसाको अवश्यमेव पूर्ण करूँगा। तेरे राजसुखमय महलोंमें अकेला जाकर, एक ही अस्त्रसे एकही दिनमें सारी चतुरंगिणी सेनाके साथ तुझे यम-लोक भेज दूँगा। उस समय ऐसा कोई भी माईका लाल पृथ्वीपर खोजेसे न मिलेगा, जो मेरी गतिको रोक सके, अथवा तेरी रक्षा कर सके। यदि तुझे इस बातका घमण्ड हो, कि मैं दैवबलसे बली हूँ, संसारकी सारी शक्तियाँ मेरी सेविकाएं हैं, तो उस दिन तेरा यह घमण्डभी क्षणभरमें चूर-चूर हो जायेगा। अच्छा अब यहाँसे चुपचाप कान दबाकर चला जा।

वर्ना जबतक मैं तेरा मुख देखूँगा, तब तक मुझे क्रोध चढ़ता रहेगा। फिर तेरे स्पर्शसे आश्रम भी अपवित्र हो रहा है।"

इतना कहकर परशुरामने कार्त्तवीर्यके दोनों हाथ पकड़ बलपूर्वक पीछेसे धक्का दे दिया और आश्रमसे निकाल दिया। इसी समय वहाँ हाथमें दूधका पात्र तथा कमण्डलु लिये विजया आयी। उसने परशुरामकी दूरसेही रुद्र मूर्ति देखी। अतएव हाथका पात्र ज़मीनपर रख प्रार्थना-पूर्ण स्वरमें बोली—स्वामिन्! प्रभो! दयामय! यह क्या? आज आपने यह संहार-मूर्त्ति क्यों धारण कर रखी है? शान्त हूजिये महाराज! दासीकी प्रार्थनापर कृपात कीजियेगा। पिस्सूकी मानिन्द कार्त्तवीर्यके लिये महाप्राण परशुरामको इतनी व्यस्तता किस लिये?"

परशुराम—सती! वह दुष्ट मेरे पिताका हत्यारा है।

विजया—अनाथिनीके नाथ! यह तो मेरे स्वामीका भी हत्यारा है। क्या पिताकी अपेक्षा स्वामीका मूल्य कम है? क्या पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंको अपने प्रियजनके वियोगका दुःख कम होता है? क्या उनके प्राण पत्थरके बने हुए हैं? देखिये न, मैं आपके पास आकर कैसी स्थिर होकर रह रही हूँ। तब आपभी मेरे पास स्थिर होकर रहिये। नाथ! आइये, हम दोनों पिताकी सेवा करें।"

इतना कह विजया परशुरामको, हाथ पकड़ जमदग्निके पास ले गयी। परशुरामने पिताके पास जा विजयासे पूछा—विजये! पिताके शरीरमें क्या अभीतक जीवन है?"

विजया—हमारे पिता तो इच्छामृत्यु हैं ? यदि उनकी इच्छा न हो, तो किसमें ताकत है, जो उनका प्राण-नाश कर सके।"

इसी समय आँख मूंदे सिद्धासन लगाये महर्षि जमदग्निने क्षीण कण्ठसे पुकारा—"आओ बेटी विजया ! शान्ति रूपिणी विजया ! आओ, एक बार मेरे ललाटपर हाथ रखो।"

विजयाने तत्काल महर्षिकी आज्ञाका पालन किया। बोली—"पितः ! कृपाकर अपनी कामधेनु नन्दाका अन्तिम निवेदन सुनिये। मैं जब उसकी सेवाके लिये बिल्व-वृक्षके नीचे गयी, तब देखा, कि वहाँ एक अपूर्व ही दृश्य दिखाई दे रहा है। नन्दा मूर्त्तिमती गोमाता मुक्ति-धारण किये खड़ी है। उसके दोनों नेत्रोंमें सूर्य्य-चन्द्र चमक रहे हैं। ललाटमें नभो मण्डल है। सींगोंमें सुमेरु और कुमेरु हैं। चारों चरणोंमें धर्मराज हैं। मस्तकमें दशभुजा भगवती हैं। पीठमें महादेव, हृदयमें नारायण, उदरमें ब्रह्मा, स्तनोंमें मन्दाकिनी और पूछमें शेष या वासुकि नाग है। मुझे देख गोमाता रूपिणी नन्दा बोली—"विजया मुझे दुहो। दूधका प्रथम अंश मेरे मृत प्राय, पालक-पिता जमदग्निके मुखमें दो। तभी उनकी मुक्ति होगी तथा उसका प्रसाद परशुरामको दो। मेरे इस दुग्धपानसे परशुराम अनन्त कालके लिये अमर होजायेगा। सबके बाद इस दूधको अन्तिम प्रसाद तुम लो। तुम्हारी भी मनोरथ-सिद्धि हो जायेगी।"

"मुझे आज कार्त्तवीर्य्यके घर जाना होगा। उसके स्पर्शसे

मेरा शरीर अपवित्र होगा। अतएव मैं इस पापी शरीरको उसके घरमें छोड़ अन्य देह-धारण- करूँगी। सुनन्दाके नामसे गाभी मूर्त्ति में, वृहस्पतिके पिता आङ्गिराके घर उत्पन्न होऊँगी। इतना कहकर गोमाता रूपिणी नन्दा नीरव होगयी। मैं दूध दुह कर आपकी सेवामें ले आयी। पितः! अब उसकी इच्छा पूरी कीजिये।"

जमदग्नि—मैं अभी नहाया नहीं हूँ।

विजया—मैं थोड़ासा गंगाजल ले आयी हूँ, उसीसे आपका सर्वाङ्ग धोये देती हूँ।

इतना कहकर विजयाने हाथके कमण्डलके गङ्गा-जलसे ऋषि-के समस्त अङ्गोंको धो दिया। फिर नन्दाके दूधका पात्र उसके मुखसे लगा दिया। जमदग्निने उसमेंका थोड़ासा अंश पिया। बोले,—"राम! बेटा! लो, यह बचा हुआ दूध तुम पी जाओ।"

परशुरामने पिताकी आज्ञाका पालन कर दिया। और अव-शिष्ट दूध विजयाके हाथमें देकर कहा,—"लो विजया! तुम इसे बालकोंके साथ पी जाओ।"

विजयाने वैसाही किया। जब वह कार्य हो चुका, तब महर्षि जमदग्नि बोले,—"पुत्र! नन्दाका दूध पीनेसे मेरे शरीरमें दूना बल आ गया है। पकड़ो बेटा, पकड़ो, तुम्हारे कन्धेका सहारा लेकर धीरे-धीरे जाह्नवीके तटपर चला जाऊँ। गङ्गा-तटके सिवा मैं और कहीं भी शरीर-त्याग नहीं करूँगा।"—इतना कह जमदग्नि उठ खड़े हुए। परशुराम और विजयाने

तत्काल दोनों ओरसे उन्हें पकड़ लिया और गङ्गाकी ओर ले चले।

जाते-जाते विजयाने कहा,—"संसारके मनुष्यो देख लो। मेरे कन्धोंपर क्षत्रिय कुल तिलक कार्तवीर्य्यार्जुनकी कीर्तिकी प्रतिमूर्ति देखलो। पहले आपने एक बार मुग्ध बालिका विजयाके क्षीण शरीरमें उसे देखा था, अब एक बार तापसश्रेष्ठ जगन्मान्य जमदग्निके शरीरमें इसे देखलो। देखो, अन्तमें पक्षपात न करना। एक दिन इस हिंसाकी प्रतिहिंसा अवश्य होगी।"

परशुराम—हे समुद्र रूपी महाकाल! तुम्हारे घोर लोहित समान स्रोतोंमें मैंने अपने माता पिता दोनोंको ही बहा दिया। देखो महाकाल! यह समय और भी घोर होता जो रहा है। एक समय आयेगा, जब यह एकदम सुखमय हो उठेगा; उसी समय इस हिंसाकी प्रतिहिंसा होगी।"

अस्तु, आश्रम कुटीरसे थोड़ी दूर जानेपर ही गङ्गा-तट आ गया। जमदग्निने पहले शान्ति पूर्वक स्नान किया और अन्तमें योग द्वारा अपने प्राणोंका विसर्ज्जन कर दिया। यह देख परशुराम और विजया निर्विकार चित्तसे उनका अन्तिम संस्कार करने लगे।

कार्त्तवीर्य्यके हितैषी

१८

महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुन कामधेनुको लेकर अपने राज्यमें लौट आये हैं। नन्दा राजमहलोंमेंही रखी गयी है। पर न मालूम क्यों उसने जिस दिनसे यहाँ पैर रखा है, उसी दिनसे खाना और पीना सब छोड़ दिया है। दिन रात डकराना शुरू कर दिया है। उसके नेत्रोंसे निकले आँसुओंसे उसके बैठनेकी सारी भूमि भीगी रहती है।

उसकी इस दशाको देख, राज-परिवारके समस्त लोगोंको एक नयी चिन्ताने घेर लिया है। वसुमती, पुत्र अजितकुमार और परम राज-भक्त, मन्त्री तो बेहद चिन्तित हैं एवं इस चिन्ताका कोई प्रतिकार करनेके लिये प्रायः ही एकत्रित होकर विविध उपायोका विचार किया करते हैं। आजकी ही बात सुन लीजियेः—मन्त्रीने बड़ी रानी श्रीमती वसुमतीसे कहा,—"मा ! क्या कहूँ ? आपसे तो छिपा ही नहीं है। अग्नितुल्य, महातेजस्वी, महर्षि जमदग्निकी हत्या कर डाली गयी है! देवी कामधेनु उनके शोकसे खान-पान सब का

विसर्जनकर दिन-रात रोया करती हैं। इन पापोंकी प्रचण्ड अग्निसे चारों दिशाएँ भस्म हुई जाती हैं। कहीं ऐसा सुशीतल और शान्तिमय स्थान नहीं, जो उस आगकी लपटोंसे बचकर क्षणभरके लिये विश्रामकर प्राणोंको प्रसन्न किया जाये। हा भगवन्! महाराजकी ऐसी शुद्ध परम ज्ञानराशि धर्मके महासमुद्रको त्यागकर क्यों अधर्म-विष्ठा-ह्रदमें गिरी? क्या अब कोई इस सोतेकी गतिको रोक सकता है?"

वसुमतीने दीर्घश्वास छोड़ते हुए कहा,—"मन्त्रिन्! घबरानेकी तो कुछ आवश्यकता नहीं है। मैं स्त्री होकर भी अभी तक धैर्य्यका अवलम्बन किये हुए हूँ। मेरा सारा आशा-भरोसा तुम्हींपर है। असल बात यह है, कि जिस दिनसे इस पुण्यमय राज-संसारमें इस पापके साक्षात् उपग्रह धूमकेतुके साथ विप्रिभद्राका उदय हुआ है, उसी दिनसे भाँति-भाँतिके अमङ्गल होने आरम्भ हुए हैं—मानो राज्यमें सर्वनाशका अङ्कुर फूटा है। अब ऐसी महा विपत्तिके समय, व्याकुल होनेसे हमारा निश्चित लक्ष्य भ्रष्ट हो जायेगा। अतएव आओ, हम सब मिलकर इस बातकी चेष्टा करें, कि जिस भूमिमें देवि कामधेनुका अश्रु-पात हुआ है, वह भूमि महाश्मशान न बने। आज हम तीनोंको मिलकर एक साथ महाराजके चरणोंको पकड़कर यह विनय करनी चाहिये, कि 'वे नन्दाको फिर सरस्वती आश्रममें पहुँचा दें। जो कुछ हो गया, सो तो होही गया। पर अब भी नन्दाके लौटा देनेसे

राज्य का कल्याण है।' यदि वे मेरी प्रार्थनापर कर्णपात न करेंगे, तो मैं उन्हींके चरणोंके समीप बैठकर आत्महत्या कर लूँगी।"

अजितकुमारने कहा,—"आपके आत्म-हत्या करनेसे उनका क्या हानि-लाभ-होगा? जो आसानीके साथ ब्रह्महत्या कर सकते हैं, वे स्त्री-हत्यासे क्या डरेंगे? फिर उनको तो एक छोड़ दो, रानियाँ हैं, तुम्हारे मर जानेसे तो वे एक ओरसे निश्चिन्त हो जायेंगे। हाँ, मेरा उनके पास जाकर आत्मघाती होना ठीक है। क्योंकि मैं उनका इकलौता बेटा हूँ। यदि वे ढिठाई वश वंश-लोपकी भी कुछ परवाह न करेंगे, तो निश्चय जान लो मा! फिर उन्हें कोई न बचा सकेगा।"

मन्त्री,—भाई अजित—उतावले बननेकी ज़रूरत नहीं है। निश्चित होकर मेरा उपदेश सुनो। मैं तुम्हारे बाबाका शिक्षित वृद्ध मन्त्री हूँ। आत्मज्ञान-हीन उद्धत बनकर कोई काम करनेसे परिणाममें पछताना पड़ता है। अतएव मैं एक भारी काममें हाथ डालूँगा। मैं कामधेनुको चुप-चाप राज-महलोंसे निकलवाकर जमदग्निके पुत्र परशुरामके पास भिजवा दूँगा। ऐसा होनेसे फिर किसी अमङ्गलकी आशङ्का न रहेगी।

वसुमती—यदि राजा जान गये, कि आपनेही ऐसा काम किया है, तब आप किस प्रकार आत्म-रक्षा कर सकेंगे? याद रखो, त्रिष्टिमद्रा और धूमकेतु हमलोगोंके घोर शत्रु हैं, वे ताड़के पंखेसे महाराजकी क्रोधाग्निको प्रज्वलित कर देंगे।

उस समय सारे राज-भवनमें कौन ऐसा महावीर साहसी है, जो तुम्हारी रक्षा कर सकेगा ?"

अजित—मैं रक्षा करूँगा। मैं कहूँगा, कि 'पिता ! मन्त्री महाशयने कोई भी दोष नहीं किये हैं। मैं भारतके साम्राज्य-का राजकुमार हूँ, मन्त्री महाशयने मेरी आज्ञासेही ऐसा काम किया है। अतएव इनके अपराधके बदलेमें आप जिस दण्डकी व्यवस्था करें, उसे मैं सहर्ष ग्रहण करनेके लिये तय्यार हूँ।

मन्त्री,—अच्छा, यदि महाराज आपको राज-विद्रोही, पितृ-द्वेषी होनेके कारण राजनीति शास्त्रका अन्तिम दण्ड दें, तब हितमें विपरीत काण्ड हो जायेगा या नहीं ? प्रातःकालके क्षीण कान्तिवाले एक नक्षत्रकी रक्षा करनेके लिये अरुण महा-राज अस्ताचल जायें, यह दृश्य तो किसीको भी अच्छा नहीं लगेगा। कुमार ! मैं क्या अमर हूँ। अब मेरी आयुही कितनी है। नितान्त जराजीर्ण हो, सर्वाङ्गमें मल मूत्र लपेटकर मरनेकी अपेक्षा, जन्मसे लेकर आजतक जिस अन्नके द्वारा प्रतिपालित हुआ हूँ—उस वंशकी मंगल कामनासे प्राण त्याग करना क्या अच्छा नहीं है ?

अजित—मन्त्री महोदय ! आपके ज्ञान-वृद्ध पुरातन अनुभवी जीवनके मूल्यकी अपेक्षा मेरे इस अज्ञान-जीवनका मूल्य अधिक नहीं है। छोटी माताके गर्भसे मेरे कितनेही भाइयोंका जन्म होगा। राज-वंश उनकी कान्तिसे उज्ज्वल होगा और भविष्यमें उन्हींसे इसकी वृद्धि होगी। किन्तु आपके जैसे हितैषी,

निःस्वार्थ और ज्ञानवान् महामन्त्री और इस वंशको न मिलेंगे। क्यों मा! इसमें आपकी क्या राय है?

वसुमती—मेरी राय पूछना चाहते हो बेटा! अच्छा सुनो, आज तुम दोनों एक वार अन्तिम वारकी भाँति केवल एक बार राज-सभामें जाओ और सबके सामने महाराजको समझानेकी चेष्टा करो। यदि वे किसी तरह तुम्हारी बात न सुनना चाहें, तो तुम चले आना, उस समय मैं उनसे मिलूँगी और ऊँच-नीच समझाऊँगी। यदि वे इतनेपर भी अपने पक्के संकल्पमें परिवर्तन न करना चाहेंगे, तो हमलोग तीनों जने—नन्दाको ले जाकर परशुरामके चरणोंमें समर्पित कर देंगे।

मन्त्री—राजकुमार! यही युक्ति बड़ी अच्छी है। आओ! राज-सभामें चलें।

अनन्तर कुमार अजितसिंह और राजमन्त्री दोनों मिलकर एक सङ्ग राज-सभामें गये। रानी कामधेनुको कुछ पिलानेकी चेष्टामें गयीं।



विफल प्रयत्न

१९

अमरावतीकी शोभाको भी मात देनेवाली महिष्मती, आज बड़ेही नाज़में भरी, प्रदीपमालाओंके शृङ्गारसे सजी, गर्वीली गजगामिनी सुन्दरीके समान, इस समय बड़ी विचित्रशोभा विकीर्ण कर रही है। महाराजने कई दिन हुए देव-दुर्लभ वस्तु पायी है। अतएव राज्यभरमें विविध उत्सवोंका आयोजन हुआ है। नाच-गान, राग-रङ्गके मानो सर्वत्र फव्वारेसे छूट रहे हैं। ये खुशियाँ प्रजाकी इच्छासे नहीं, वरन् धूमकेतुके भयसे मनायी जा रही हैं। प्रजाके समझदार लोग, विशेषकर जिन्हें कामधेनुकी प्राप्तिका वास्तविक वृत्तान्त मालूम है, उनका मुँहतो मारे मातम के मुर्झाया हुआ है।

खैर, पाठक! हमें इन व्यर्थकी खुशियोंसे कोई भी सरोकार नहीं है। हम इस व्यर्थके उत्सवोंमें-अपना और आपका समय बर्बाद करना उचित नहीं समझते हैं। अतएव आओ, थोड़ी देरके लिये महिष्मतीके राजमहलोंमें चलें और देखें, कि इस समय महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुनका क्या हाल है?

* * * *

महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुनने अपनेको सब सुखी बनानेके लिये सब कुछ किया, तथापि उनकी आशा पूर्ण न हुई। उन्होंने कितने कष्टसे नन्दाको हस्तगत किया है। यह प्रायः सभी जानते हैं। इसके बाद भद्राके अभिमान मलिन मुखको हास्य-पूर्ण बनाना, वसुमतीकी कुटिल स्वार्थपरताको व्यर्थ करना, ब्राह्मणोंके वृथा प्राधान्य गर्वको खर्व करना—आदि सभी कार्य्य सिद्ध हो चुके; किन्तु विधाता उन्हें अब भी सर्वाङ्गसुन्दर सुखानुभूति नहीं दिलाना चाहता। क्योंकि वे नन्दाको सन्तुष्ट न कर सकेंगे। वह हरदम "हम्बा हम्बा" शब्द करके चिल्लाया करती है। उसकी इस दशाको देख राज्यभर व्यस्त है। किन्तु महाराजके भयसे कोई भी उसमें दस्तन्दाजी नहीं करना चाहता।

वास्तवमें नन्दा जबसे सरस्वती आश्रमसे यहाँ आयी है, तबसे उसने आजतक भोजन तो एक ओर, जलका स्पर्श भी नहीं किया है। अतएव वह दिन दिन दुर्बल होती जा रही है। महाराज स्वयं परेशान हैं। उन्होंने समस्त संसारको अपने वशमें कर लिया है, पर एक पशु लाख प्रयत्न करनेपर भी उनके वशमें नहीं आता! यदि ऐसा है, तो अबतकका उनका सारा किया-धरा व्यर्थ गया, मानो उन्होंने गोहत्या करनेके लियेही ब्रह्म-हत्या की!

जिस समय महाराजके मनमें यह ख़याल पैदा हो जाता है,

कि गो-हत्याके लिये। मैंने ब्रह्म-हत्या की, उस समय कुछ देरके लिये तो उनके सारे शरीरमें आग बल उठती है। किन्तु थोड़ी देर बादही फिर उनके विचारोंमें परिवर्तन हो जाता है। वे कहते हैं, गो-हत्या और ब्रह्म-हत्याओंको अन्यान्य जीव हत्याओं-से अधिक भयानक दोषावह और कुकर्म समझना, मनका कुसंस्कार मात्र है! जब राजाको शिकार, युद्ध और दण्ड-विधान सभी कुछ करना पड़ता है, तब उसे जीव-हत्याका पाप किसी तरह भी नहीं लग सकता? विधाताका नियम है, कि निकृष्ट जीव, अपने पाप-जीवनसे मुक्ति पानेके लिये उत्कृष्ट जीवके हाथों-से जीवन विसर्जित करते और उत्तम गति प्राप्त करते हैं। कार्त्तवीर्य राजा हैं; अतएव, भगवानके प्रतिनिधि हैं। तब क्या उनके जीवनसे एक भिखारी या पशुका जीवन अधिक मूल्य-वान है? नहीं, कदापि नहीं। ब्राह्मण लोग शास्त्रकर्त्ता हैं। उन्होंने आत्म-रक्षाके लियेही ब्रह्म-हत्याको महापापका स्वरूप देदिया है! इससे तो यह मालूम होता है, कि ब्राह्मणोंके प्राण हैं और अन्य जीवोंको मानों प्राण ही नहीं हैं! अतएव आजसे यह निश्चित हुआ, कि ब्रह्म-हत्या, गो-हत्या आदि कोई भी हत्या पाप नहीं—वरन्, जो है, सो सब मनका कुसंस्कार मात्र है।

महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुन राज-सभामें अकेले बैठे हुए थे और ऊपर लिखे विचार रह-रह कर उनके मनमें उठ रहे थे। इस विचार-मालाका जाप करते-करते महाराजको कुछ ही समय बीता था, कि इसी समय वहाँ राज-मन्त्रीने प्रवेश किया,

आते ही पूछा—"महाराज! एकान्तमें बैठे हुए आप किस सोचमें पड़े हुए हैं?"

मन्त्रीकी बोली सुनकर महाराज चौंक पड़े। बोले—"यह क्या मन्त्री! मैंने तो इस समय राज-सभाको बुलाया नहीं; फिर तुम मेरे पास क्यों आये?"

मन्त्री—महाराज! मेरे लिये राज-दरबारका प्रत्येक द्वार हरदम खुला हुआ है। मैं राज-सभा, अन्तःपुर और राज-भवनमें सब जगह बालककी भाँति बिना बाधाके घूमा करता हूँ। आप जानते हैं न, कि मैं आपके पिताका मित्र हूँ। आप बचपनमें ही पितृहीन हो, मेरी ही गोदमें पलकर आज जगन्मान्य राज-राजेश्वर हो गये हैं। पर आपने आजसे पहले तो कभी ऐसा प्रश्न नहीं किया।

राजा—नहीं, नहीं मन्त्री! आप दुःखित न हों। मैंने आप-से उक्त प्रश्न सामान्य भावसे किया था। मैं चिन्तामें पड़ा हुआ था, इसीसे सहसा तुम्हें देख विस्मित होगया।

मन्त्री—पृथ्वीनाथ! आपको किस बातकी चिन्ता है। आपको किस बातका अभाव है? रूप सौन्दर्य सम्पद्, ऐश्वर्य, स्त्री, पुत्र, आत्मीय, स्वजन, ख्याति, मान, और यश इनमेंसे प्रायः सभी चीजें भगवानने आपको दी हैं। फिर आपको किस बातकी चिन्ता है? आप नरलोक-वासी नर-मूर्तिमें सुरलोक-वासी देवता हैं। विधाताने आपके लिये मुक्त-हस्त होकर स्वर्ग-की समस्त सम्पत्तियाँ भेजी हैं। फिर आपको किस बातका

अभाव है? किस बातकी चिन्ता है? आप वृथाही क्यों कल्पना प्रसूता चिन्ताको हृदयमें बसाकर व्याकुल हो रहे हैं!

राजा—मन्त्री! मैं शान्तिहीन हूँ। मेरा मन सदाही दीप-शिखाकी भाँति चञ्चल रहता है। यद्यपि मैंने अपने हृदय रूपी कमरेके सारे किवाड़ बन्द कर रखे हैं, फिर भी वह दीप शिखाकी सी चञ्चल रहती है।

मन्त्री—महाराज! जिस शान्तिकी खोजमें आप इतने परेशान रहते हैं, वह शान्ति आपके मनमेंही है। आप जब चाहें तभी अपनेमें शान्ति स्थापित कर सकते हैं। आपने इस सुविशाल भारत साम्राज्यमें तो शान्ति स्थापित करदी, फिर अशान्तिका उदय क्यों हुआ? अस्तु अब मैं आपके गुप्त हृदयके भावोंको समझ गया हूँ। आपका स्वभाव तो अत्यन्त पवित्र है। किन्तु जब एक सामान्यसा पाप कर डालनेसे ही एक महान् पापीका मन संतप्त हो जाता है, तब आपके जैसे पवित्र स्वभावमें इतने बड़े पापका सञ्चार होनेसे साधारण अनुताप क्यों न होगा?

राजा—महापाप कौनसा मन्त्री! आप लोग तो सदाही दूसरेके पापोंपर दृष्टि रखते हैं। मैंने कोई भी पाप नहीं किया।

मन्त्री—क्यों महाराज! ब्राह्मणका धन हरण करना, और ब्रह्म-हत्या करना क्या पाप नहीं है? क्या महर्षि जमदग्नि-की हत्या कर कामधेनुको छीन लानेसे आपको पाप नहीं लगा?

राजा—मन्त्री! बुढ़ापा आ जानेसे शायद आपको बुद्धिकी तीक्ष्णता कुण्ठित हो गयी, तभी आप किसी कार्य्यके सूक्ष्म

तत्वको हृदयङ्गम नहीं कर सकते। राज-द्रोहियोंको दण्ड देनेसे कोई पाप नहीं होता। राजद्रोही यदि ब्राह्मण भी हो, तो उसे मारनेमें कोई पाप नहीं है। जमदग्निने मेरी प्रार्थनाको अग्राह्य किया था, अतएव वह राजद्रोही था और राजद्रोही होनेके कारण वह मेरा वध्या था।

मन्त्री—महाराज! आप राजनीतिके विद्वान् पण्डित हैं। आपको उपदेश देना, मानो ढिठाई करना है। किन्तु महाराज! महर्षि जमदग्नि वर्तमान समयमें सर्वजन पूज्य, अग्नि तुल्य और महातेजस्वी थे; वे आपकी प्रजा कभी नहीं हो सकते। आप भाग्यवान् हैं, इसीसे उनके जैसा ऋषि आपके साम्राज्यको देवरूपमें शोभा बढ़ा रहा था। कामधेनु उनकी तपस्याका धन था। तपस्याके धनपर सिवा तपस्वीके और किसीका अधिकार नहीं होता। आप नन्दाको बल-पूर्वक ग्रहण करनेके लिये उद्यत हुए थे, इसीसे उन्होंने आपकी इस चेष्टामें आपत्ति की; किन्तु इस न्याय-सङ्गत आपत्ति करनेसे वे आपके वध्य नहीं थे। तथापि आपने उन्हें कामधेनुके लोभवश मार डाला। आप क्या इसे ब्रह्म-हत्या नहीं समझते?

राजा—ओह! तुम निरे नासमझ हो। ओ भाई! जब जमदग्निने मेरी आज्ञा नहीं मानी, तब क्या वह राजद्रोही नहीं हुआ? यदि हुआ, तो राजद्रोही दण्ड पातेही हैं। फिर उसके मारनेमें क्या पाप हुआ?

मन्त्री—महाराज! आपने इस समय अन्याय-पूर्ण मत प्र-

हरण कर रखा है। महर्षि जमदग्नि किसी तरह भी विद्रोही नहीं हो सकते। क्योंकि वे आपके प्रजाही नहीं हैं और प्रजाके सिवा दूसरेपर शासन करनेका आपको अधिकार नहीं है और यदि आप उन्हें अपनी प्रजा मानभी लें, तो भी वर्तमान घटनाको देखते उन्हें कोई राजद्रोही नहीं कह सकता। आपने कामधेनुका हरण किस लिये किया? प्रजाके लिये या राज्यके लिये? अथवा अपने लिये? जमदग्निसे कामधेनुको आपने अपनेही लिये छीना है; अतएव वे राज्य या प्रजाके विरोधी नहीं, वरन आपके स्वार्थके विरोधी हैं। अतएव उनका राजद्रोही होना मैं किसी तरह नहीं मान सकता।

राजा—क्या कहा? क्या मैंने कामधेनुको अपने लिये हरण किया है? क्या उससे राज्यका कल्याण न होगा? क्या मेरे मंगलसे राज्यका मङ्गल न होगा?

मन्त्री—नहीं महाराज! आपके मङ्गलसे राज्यका मङ्गल नहीं होगा; क्योंकि राजाके लिये प्रजा नहीं है, वरन प्रजाके लिये राजाकी सृष्टि हुई है। राजा कोई चीज़ नहीं है, वह केवल प्रजाकी जाति, मान, धन और प्राणोंका रक्षक मात्र है। प्रजाके धनपर राजाका कोई भी अधिकार नहीं है। वरन राजाके धनपर प्रजाका अधिकार है। राजाके व्यक्तिगत स्वार्थको राज-धर्म नहीं कहा जा सकता और जो आदमी उस स्वार्थका विरोध करता है, वह राजद्रोही नहीं माना जा सकता। जमदग्नि सन्यासाश्रमी महर्षि थे। उन्हें आपकी प्रजा कोई भी नहीं ठहरा सकता।

यदि वे आपकी प्रजा भी थे, तो वे राजद्रोही नहीं हो सकते, और आप उन्हें राजद्रोही भी मान लें, तो वे ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण सदासे अवध्य रहे है। ब्राह्मण-वध करना किसी भी शास्त्र द्वारा अनुमोदित नहीं हैं। अतएव आप न्यायतः, धर्मतः और सर्वथा ब्राह्मण हरण करनेवाले और ब्रह्म-हत्या करने वाले हैं।

राजा—मन्त्रिन्! जुबान वशमें करो। पर मर्यादासे बाहर बातचीत न करो। राजनीतिज्ञके सन्ताप कालीन प्रलापको कोई भी राजनीति नहीं कह सकता।

मन्त्री—तब क्या ब्राह्मणके धन-हरण और ब्रह्महत्याको राजनीति कहते हैं?

राजा—सावधान! मुझे उपदेश देनेका तुम्हें तनिक भी अधिकार नहीं है।

मन्त्री—पूर्ण अधिकार है। आपके पापका सबसे पहला जबाबदेह मैं हूं और दूसरा है भारत-राज्य। फिर आप जिन पिताकी सन्तान हैं, मैं उन्हींका शिष्य हूँ। आप यदि एक राज्यके राजा हैं, तो मैं भी राज्यका मन्त्री हूँ। आप मुझसे ज्यादः राजनीति शास्त्र नहीं जानते। इस विषयमें आप अभी तक मेरे शिष्य ही हैं। आपके पुण्य-पापोंका फल हम सभीको भोगना पड़ेगा।

राजा—तुम्हें मेरे पापोंका फल क्यों भोगना पड़ेगा? मैं तुम्हारी कही हुई इस राजनीतिपर पदाघात करता हूँ। मैं जरा-जीर्ण और दुर्बल वृद्ध नहीं हूं। मैं पाप-पुण्य और अधि-

कार अनधिकारसे तनिक भी नहीं डरता। यह बाहु-बल ही मेरा अवलम्ब है। धर्म-बल और पुण्य-बल तुम जैसे अकर्मण्योंके बल हो सकते हैं। मुझे तुम्हारे बल और अवलम्बनकी आवश्यकता नहीं है। यदि तुम चाहो तो इसी समय पापोंसे अपना नाता तोड़ सकते हो।

मन्त्री—महाराज! मैं तो आपकी अनुमति मात्रकी प्रतीक्षा कर रहा हूं। यदि मैं अपनी इच्छासे पद-त्याग करूंगा, तो उससे मेरा गर्व प्रकाशित होगा। अतएव मैं महाराजकी आज्ञाकी ही बाट जो रहा हूँ। मैं धर्म-परायण और न्यायी राजाकी सेवा करनेके लिये हर समय तय्यार हूँ। पर ब्रह्मस्वापहारी और ब्रह्महन्ताकी सेवाकर मैं अपने इस वृद्ध जीवनको कलङ्कित करना नहीं चाहता।

राजा—बड़ी अच्छी बात है। आजसे तुम मेरे यहाँका काम छोड़ दो। जियादः कहा-सुनीकी आवश्यकता नहीं है। भला इसीमें है, कि बिना अपमानित हुए यहाँसे चले जाओ। मुझे भारत सम्राज्यका मन्त्रित्व करनेवाले असंख्य आदमी मिल जायेंगे। जाओ, आजसे मुझे अपना मुँह न दिखाना।

मन्त्री—महाराज! आज्ञा शिरोधार्य है। परमात्माने भ्रमके द्वारा इस राज्यके मन्त्रित्वसे अलग कराकर बड़ा ही अच्छा काम किया। क्योंकि अब मुझे अपने अन्नदाता राजवंशका अन्तिम शोचनीय परिणाम अपनी आँखोंसे नहीं देखना पड़ेगा। महाराज! वृद्धका अन्तिम राज-सम्मान ग्रहण की-

जिये। प्रणाम! इतना कहकर मन्त्री गव के साथ वहाँसे चले गये।

उनके चले जानेपर राजाने कहा,—"बूढ़ा कितना घमण्डी है। मुझे राजनीतिका उपदेश देने आया था'। बात पूरी भी न हो पायी थी, कि राजकुमार अजितने पिताके समीप आ साष्टांग प्रणाम किया।"

राजाने आश्चर्यमें आकर कहा,—"यह क्या अजित! तुम पढ़नेके समय कैसे आये? मैंने तो तुम्हें बुलाया नहीं।"

अजित—पिता! यह समय तो पढ़नेका नहीं है? और आज मैं विना बुलाये पहलेही थोड़े आया हूँ। विना बुलाये आनेमें क्या दोष है!

राजा—नहीं बेटा! दोष तो कोई नहीं है। आओ, बैठो, मेरी गोदीको धन्य करो। तुम्हारे निष्पाप, निश्चिन्त, निर्विकार अनुताप-शून्य, सुकोमल और सुशीतल अङ्गके स्पर्शसे अपना अशान्त हृदय शीतल करूँ। यह क्या बेटा! तुम्हारी आँखोंमें ये आँसू क्यों भर रहे हैं? क्या किसीने तुम्हें कोई अनुचित बातकही है?

अजितकुमार—नहीं पिता! किसीने कुछ नहीं कहा।

राजा—फिर क्यों रो रहे हो? जल्द बताओ। देर न करो।

अजितकुमार—पिता! आज गुरुदेवके मुँहसे सुना, कि ब्रह्म-हत्याके पापसे अनन्त कालतक नरकमें निवास करना पड़ता है और ब्रह्महत्याका धन हरण करना भी महापाप है। यदि ये बातें सत्य हैं, तो आपको इन दोनों महापापोंका दण्ड भोगना पड़ेगा।

राजा—तुम्हारे गुरु मिथ्यावादी हैं। वाचाल और मूर्ख हैं। तुम उनके पास कलसे पढ़ने न जाया करना। मैं शीघ्र ही तुम्हारे लिये नये और योग्य पण्डितकी व्यवस्था करदूंगा। कैसा प्रलाप है। मुझे और पाप? बेटा! मैं तो भारत-सम्राट् हूँ। मुझे प्रजा-शासनके लिये सभी कुछ करना पड़ता है। विद्रोहियोंको दण्ड और शत्रुओंका शासन करना हमारा परम धर्म है। इसमें पाप ही क्या होता—वरन् न करनेसे पाप होता है। तुम्हारा गुरुदेव बड़ा नीच है। मैं उसको इस नीचताका कलही दण्ड दूंगा। तुम इन बातोंके लिये कुछ भी चिन्ता न करो।

अजित—नहीं पिता! मुझे अन्यायकी बात न समझाइये। पालन करना और रक्षा करना राजाका परम धर्म है। ब्रह्म-हत्या और ब्राह्मणोंका धन-हरण कोई भी नहीं करता।

राजा—बालक! मेरे साथ तुम्हारा शास्त्र-विचार करना अनधिकार-चर्चा है। ढिठाई करना बालकोंके लिये बड़ी ख़राब बात है। आजसे ढिठाई करना छोड़दो।"

अजित—पिता! मैं आपका पुत्र हूँ। बालक-पुत्रपर शासन करना आपका परम धर्म है। किन्तु मेरा मन तो इससे स्थिर नहीं होगा। जिस समय शहरके लोग मुझे देखकर यह कहेंगे, कि यह ब्रह्मघाती, ब्रह्मस्वापहारक राजाका पुत्र है, उस समय मैं उन लोगोंको क्या कहकर समझाऊंगा। आपके भयसे सामने तो कोई कुछ कहनेका साहस नहीं करेगा, किन्तु उनके मनपर तो आपका कुछ अधिकार नहीं है।

राजा—अजित! तुम छाती फुलाकर और मुक्त-कण्ठसे सबसे कहो, कि श्रेष्ठ वस्तुको श्रेष्ठ जीवके लियेही सृष्टि हुई है। जिसकी जो वस्तु अपनी है, वह उसे बल पूर्वक ग्रहण करता ही है। नन्दन-वन इन्द्रका है, दैत्योंका नहीं, कौस्तुभमणि नारायणकी है, राहु-केतुकी नहीं, अमृत देवताओंका है, समुद्रका नहीं, उसे देवताओंने समुद्र मथकर निकाला था, अतएव उसे असुर नहीं भोग सकते। अमृतके लिये देवासुर संग्राम हुआ था और उसमें देवताओंने ही विजय पायी थी। नन्दा कामधेनु भारत सम्राट्की है भिक्षा-जीवी ब्राह्मणकी नहीं है। मेरी वस्तु मैंने ग्रहण करली, इसमें अन्यायही क्या हुआ?

अजित—पितः! क्या आप बिना ब्रह्महत्या किये उसे नहीं ग्रहण कर सकते थे?

राजा—अबोध पुत्र! तुम निश्चिन्त रहो। डरनेका तिलमात्र भी कारण नहीं है। मैं क्या पाप-पुण्य नहीं समझता? मैंने अपने भाग्य-बलसे श्रेष्ठ वस्तुपर अधिकार किया है। नन्दाके प्रभावसे मेरे सारे पाप दूर हो जायेंगे।

अजित—पितः! उस श्रेष्ठ वस्तुका पाना आपके लिये वृथा हुआ है। मैं नित्य प्रति उस नन्दाको अपनी आँखोंसे देखता हूँ। वह जबसे आपके राज-महलोंमें आयी है, तबसे निरन्तर रात-दिन करुणा-कण्ठसे चिल्लातीही रही है। उसने आज कई दिनोंसे तृण और जलका स्पर्श नहीं किया। उसकी आँखोंसे रात दिन आँसुओंकी धारा बहा करती है। उसकी रुदन ध्वनि

को सुनकर छाती फटती है। पिता! प्रेममय पिता! अपने एक मात्र पुत्रका एक अनुरोध अवश्य मान लीजिये। नन्दाका अभी परित्याग कीजिये अन्यथा वृथाही गो-हत्यामाथेपर मढ़ जायेगी।

राजा—यदि ऐसाही होगा, तो कुछ डरकी बात नहीं। ब्राह्मण-धन-हरण और ब्रह्महत्याके उपसंहारमें गो-हत्या भी हो, पर मैं जीवित नन्दाका परित्याग नहीं करूँगा। मैं महापातकी बनना स्वीकार करता हूँ, पर साधारण लोगोंके मुँहसे कायर बनना नहीं चाहता।

अजित—कायर किसे कहते हैं पितः! पापका परित्याग करलेसे क्या लोग कायर हो जाते हैं? जो लोग महापातकी हैं वे क्या कायर नहीं हैं? मेरा विश्वास है, कायरता क्षत्रिय जीवनके इस लोकका दोष है। और महापाप सभीके लिये परलोक की ग्लानि है। पितः! आप नन्दाका परित्याग कर दीजियेगा।

राजा—अजित! पिताके सामने पुत्रकी नाईं बात-चीत करो। सावधान! पुत्रके कर्त्तव्यको न भूलो।

अजित—पितः! मैं पिताके सामने पुत्रका कर्त्तव्यही पाल रहा हूँ। मैं आपके चरणोंपर पड़ता हूँ, आप नन्दाका परित्याग कर दीजिये।

राजा—बेटा! देखो, मैं अब भी तुम्हारी ढिठाई क्षमा किये देता हूँ। भ्रमको त्यागो। और मैं अन्तिम बार स्पष्ट भाषामें कहे देता हूँ, कि मैं तुम जैसे सैकड़ों पुत्रोंका परित्याग करदे

सकता हूं, किन्तु प्राण रहते मैं नन्दाका परित्याग नहीं करूँगा, नन्दा मेरा ब्रह्महत्यासे पाया हुआ धन है।

अजित—पितः! आप मेरा खुशीसे परित्याग कर सकते हैं। क्योंकि भगवान्‌की कृपासे आपके एकके स्थानपर सैकड़ों पुत्र हो सकते हैं; किन्तु मैं आपके सिवा दूसरेसे 'पितृ-स्नेह न पा सकूंगा। अतएव आप अपने एक मात्र पुत्रकी यह अभिलाषा तो पूर्ण कर दीजियेगा।

राजा—सुनो पुत्र! पिता चाहे जो कोई हो, पर वाह है अपने पुत्रका पिताही। तुम यदि मेरी अपेक्षा अपने कल्पित धर्मको अधिक पसन्द करते हो, तो मेरा उपदेश सुनो। पिता पुत्रसे भिन्न नहीं होते; दोनोंके पाप-पुण्य दोनोंको भोगने पड़ते हैं। पुत्रके प्रायश्चित्तसे पिताके पाप खण्डित हो जाते हैं! यदि मैंने भ्रान्ति-वश कोई पाप कर डाला है, तो तुम मेरे पुत्र हो। प्रायश्चित्त करके पिताको पापमुक्त कर दो। ऐसा करनेसे पितृ-भक्तिका परिचय मिल जायेगा।

अजित—यदि आपका यह विश्वास ठीक है, तो मैं आपके चरणोंकी शपथ खाकर कहता हूँ, कि मैं आपके लिये अवश्य यथा विधि प्रायश्चित्त करूँगा। मैं शास्त्र नहीं जानता; अतएव मेरा सामान्य ज्ञानही छहों शास्त्र हैं। अब प्रायश्चित्त कैसा होगा, उसका भी संक्षिप्त विवरण सुनिये; आपने ब्राह्मणके सर्वस्वका हरण किया है, अतएव मैं अपना सर्वस्व ब्राह्मणको दान कर दूंगा, आपने ब्रह्म-हत्या की है, अतएव मैं किसी वीर-विद्वान् ब्राह्मणके

चरणोंमें जीवन-दान करूँगा। यही मेरा प्रायश्चित्त है। यही मेरी प्रतिज्ञा है। अब आप आशीर्वाद दीजिये, कि मेरी समस्त प्रतिज्ञायें पूर्ण हों।

इतना कहकर अजित शीघ्रतासे वहाँसे चला गया। महाराज उसकी बातें सुनकर आश्चर्य्यसे अवाक् हो रहे। जब कुछ ज्ञान हुआ, तब मनही मन कहने लगे—"अहा! अग्निके क्षुद्र अङ्गार-की भाँति इस बालकका हृदय कितना तेजोमय है! इसमें स्निग्ध प्रभामय पुण्यका विकाश भी दीखता है। पापके प्रति इसकी घोर घृणा है। इतनेपर भी यह मुझे पापी बताता है। तब क्या मैं सचमुच पापी हूँ? हृदय भी धीर स्वरमें, रह-रहकर कहता है, कि तुम पापी हो; पर मन—मेरा कठोर और साहसी मन—इस बातकी गवाही नहीं देता, कि मैं पापी हूँ! वह कहता है, कि तुम जो समझो, वही ठीक है, जो कहो, वही सत्य है, अच्छा; एक बार पुरोहितजीसे भी इस विषयमें विचार करना चाहिये!"

यह स्थिरकर उन्होंने उसी समय एक द्वारपाल द्वारा पुरो-हित महाराजको बुला भेजा। यथा समय पुरोहित आगये। कार्त्तवीर्यने उनसे घबराकर पूछा—"मित्र! लोग कहते हैं, मैंने जो जमदग्निको मारकर उससे कामधेनु ली है, वह महान् पाप हुआ! क्या तुम भी मेरे इस कामको पाप समझते हो?"

पुरोहित हँसते हुए बोले—"कौन मूर्ख कहता है, कि ब्रह्म-हत्यासे पाप होता है? महापुण्य! महाधर्म! महाराज! मेरी

व्यवस्था सुनिये; इस बार राज्य भरसे योग, यज्ञ, पूजा, व्रत, जप, तप सारे काम एकदम दूर करा दीजिये और सर्वत्र ब्रह्महत्याका प्रचार करा दीजिये। ऐसा होनेसे समस्त साम्राज्यसे महामारी और अकालका भय जाता रहेगा।

राजा समझ गये, कि पुरोहित भी मेरा परिहास करता है। अतएव कुछेक हताश होकर बोले—"मित्र! ब्रह्महत्या करनेसे तुम भी मेरी हँसी उड़ाते हो?"

पुरोहित—महाराज! सिवा हँसीके मुझको आताही क्या है? और सामर्थ्यही कहाँ है?

राजा—यदि और भी सामर्थ्य होती, तो क्या करते? क्या मेरे पापका दण्ड देते?

पुरोहित—दण्ड मुझे कहाँ मिलता महाराज! पापका दण्ड भूलोकमें नहीं है? जहाँ है, वहाँ पहुँचनेकी मुझमें क्षमता नहीं है। पता अवश्य जानता हूँ। शास्त्र कहते हैं:—

नदी वैतरणी नाम दुर्गन्धा रुधिरा वहा।
उष्ण तोया-महावेगा अस्थिकेशा तरंगिणी॥
यम-द्वारे महाघोरे तप्त वैतरणी नदी।

राजा—पुरोहित! आजकल तुम्हारे वार्तालापमें पहलासा विनोद नहीं रहा!

पुरोहित—महाराज! नवीन ज्वरमें चटनी बुरी मालूम होती ही है।

राजा—भाई! ज्वर किसे है? मैं तो सर्वथा स्वस्थ हूँ!

पुरोहित—यदि रोगी अपने रोगका निदान स्वयंही कर लिया करें, तो संसारमें चिकित्सकोंकी तनिकभी ज़रूरत नहीं। मैं तो आपमें ज्वरके सारे लक्षण देख रहा हूँ। आपका क्रोध कम्प है। अनुताप वमन है। आशा पिपासा है। हिंसा ज्वर है। ईर्षा दाह है। भ्रान्ति विकार है। इस ज्वरको लोग पाप ज्वर कहते हैं। यह व्याधि अत्यन्त असाध्य है।

राजा—फिर वही बात? अरे भाई! मैंने कौनसा पाप किया है? बकवाद छोड़ो और सरल शब्दोंमें समझाओ, कि मेरे कौनसे कर्मों द्वारा पापका सञ्चार हुआ है?

पुरोहित—महाराज! सत्य और सरल बातें बड़ी रूखी और कठोर होती हैं। इन बातोंके दोषसे मन्त्री पद त्यागी और राजकुमार सर्वस्व त्यागी हो जाते हैं। मेरे पास यद्यपि इन दोनों बातोंमेंसे एक भी नहीं है, तथापि श्री महाराज! अपनी जानका डर किसे नहीं है?

राजा—वह औरोंको हो सकता है, तुम्हें किस बातका डर है?

पुरोहित—तब क्या श्रीमान् मुझे अभय प्रदान करते हैं?

राजा—हाँ, अवश्य।

पुरोहित—महाराज! आप त्रैलोक्य दुर्लभ ऐश्वर्य्यके अधिकारी हैं। दत्तात्रेय मुनिके प्रभावसे विधाताने मुक्त हस्त होकर आपको वाञ्छित सुख-शान्ति दी है। आपने कर्म-फल और भाग्य-बलसे सभी कुछ पा लिया है, किन्तु विधाताने

उस नन्दा कामधेनुको आपको न देकर, जमदग्नि ऋषिको क्यों दिया ? भाग्यबलसे पाने योग्य धन किसीसे मांगना नहीं पड़ता और यदि वह अप्राप्त हुआ और किसीसे याञ्चा द्वारा मांगा गया, तो वह किसी तरह नहीं मिलता। नन्दा आपका प्राप्य धन नहीं है, अतएव आपने ब्राह्मण-धन-हरण किया है।

राजा—ब्राह्मण-धन कैसा; परधन ग्रहण किया है कहो।

पुरोहित—अच्छा महाराज ! ऐसाही सही, और ब्रह्महत्या भी की।

राजा—ब्रह्महत्या कैसी ! नर-हत्या कहो।

पुरोहित—जो आज्ञा। आप ब्राह्मणोंको वर्णश्रेष्ठ क्यों स्वीकार नही करते, यह मैं अभी तक न जान सका !

राजा—इस लिये स्वीकार नहीं करता, कि ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठता मनुष्य-कल्पित और ब्राह्मणोंकी ही मानी हुई है, ईश्वरदत्त नहीं है।

पुरोहित—महाराज ! शारीरिक अथवा मानसिक शक्तिमें उम्रके बड़प्पनके लिहाजसे ज्येष्ठही श्रेष्ठ होता है। क्योंकि ज्येष्ठ ही पहले उत्पन्न होता है। हमारी हिन्दू जातिके चार भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय परस्परमें चार सहोदर हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन सबमें ब्राह्मण ज्येष्ठ हैं। क्योंकि ब्राह्मणसे पहले किसी क्षत्रियने जन्म ग्रहण न किया था। कर्मरूप अवस्थाके अनुसार सभी उत्तरोत्तर ज्ञान-मार्गपर अग्रसर हों। अतएव बड़ेकी अपेक्षा सबसे छोटा कभी श्रेष्ठ नहीं हो सकता। इस लिये ब्राह्मणही सर्वथा श्रेष्ठ हैं।

राजा—अच्छा, यदि मान लूँ कि, ब्राह्मण वर्ण-श्रेष्ठ हैं। पर ब्रह्महत्या साधारण नर-हत्यासे अधिक पाप कैसे हुआ?

पुरोहित—महाराज! आप जिस प्रकार भारतवर्षके राजा हैं, उसी प्रकार ईश्वर विश्व-ब्रह्माण्डके राजा हैं। अतएव जिस प्रकार आपकी प्रजाके लिये राजद्रोहिता करना दोष है। उसी प्रकार जीवके लिये ईश्वर-द्रोहिता करना दोष है।

राजा—भाई! मैं तो ब्राह्मण-द्रोही हू, ईश्वर द्रोही तो मैं किसी प्रकार भी नहीं हो सकता!

पुरोहित—सुनिये महाराज! नारायण ईश्वर हैं और वे समस्त प्राणियोंमें वर्तमान हैं, किन्तु श्रेष्ठ वस्तुमें अधिकतर स्पष्ट भावसे विद्यमान हैं। पृथ्वीपर अन्यान्य समस्त प्राणियों-की अपेक्षा जीव श्रेष्ठ है। समस्त जीवोंकी अपेक्षा मनुष्य श्रेष्ठ है और समस्त मानवोंकी अपेक्षा हिन्दू श्रेष्ठ है। हिन्दुओंके चार वर्ण हैं। चार वर्णोंमें सर्व श्रेष्ठ ब्राह्मण वर्ण है। ब्राह्मण समस्त प्राणियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, अतएव ब्राह्मणोंके शरीरमें नारायण प्रत्यक्ष स्वरूपमें वर्तमान रहते हैं। यानी नारायण ही ब्राह्मण हैं और ब्राह्मण ही नारायण हैं। अतएव ब्रह्महत्याकी अपेक्षा भयानक ईश्वर द्रोहिता और नहीं होसकती है।

राजा—इन सब अप्रत्यक्ष काल्पनिक युक्तियोंपर मैं विश्वास नहीं करता। मैंने हज़ारों ब्राह्मण देखे हैं; परन्तु नारायण तो किसी समय भी नहीं दिखाई दिये। क्या तुम नारायण और ब्राह्मणोंको एक रूपमें प्रत्यक्ष दिखा सकते हो?

पुरोहित—मैं स्वयं नारायण रूपी ब्राह्मण हूँ और हरदम आपके सामने विद्यमान रहता हूँ। आँखें खोलकर देख लीजिये।

राजा इस बातको सुनकर ठठाकर हँस पड़े। बोले—"वाह! वाह!! बलिहारी! तुम तो मुझे कुछ भी नहीं मालूम होते। यदि तुम्हारे स्थानपर कोई शुद्धाचारी ब्राह्मण ऐसी बातें कहता, तो उसका कहना कुछेक ठीक भी माना जासकता था; किन्तु तुम तो क्षत्रिय-सेवक, क्षत्रियोंके दिये टुकड़ोंपर जीवन बितानेवाले और भ्रष्टाचारी ब्राह्मण हो। तुममें अब ब्रह्मत्व कहाँ रहा?

पुरोहित—महाराज! ब्रह्मणोंका ब्रह्मत्व सहजहीमें नहीं जाता। तुलसीके पेड़पर यदि कुत्ते पेशाब करदें, तब भी तुलसी नारायणके सेवा-कार्य्यमें लगती है। तदनुसार आपकी सेवकाई करनेसे मेरा ब्रह्मत्व अपवित्र नहीं हुआ। मैं अब भी नारायण रूपी ब्राह्मण हूँ। भ्रान्त क्षत्रिय! अब भी ज्ञानके नेत्रोंको साफ कर; अब भी भ्रान्तिकी निद्रा-ग्लानि दूर कर। ज्ञानसे विस्फारित और भक्तिसे प्रफुल्ल नेत्रोंको खोल। ऐसा स्वर्ण राज्य, ऐसी स्वर्ण भारतभूमि पापानलसे जलाकर भस्म न कर।

इन स्पष्ट वचनोंको ज्वाला कार्त्तवीर्य्य न सह सका। झुँझलाकर बोला—"मुझे यह भाँड़पन पसन्द नहीं है। यदि तुम सत्य कह रहे हो, तो मुझे नारायण और ब्राह्मणोंका अभिन्न भाव प्रत्यक्ष दिखाओ। यदि तुम मेरी इस आज्ञाका पालन न कर सकोगे, तो याद रखो, मैं तुम्हें प्राणदण्ड दूँगा।

परशुराम



प्रकाशमें देवी विजया।

"ब्राह्मणका अपमान न कर रे चाण्डाल! तेरी आयुके दिन समाप्त ही हो चले हैं।" (पृष्ठ २३३)

"ब्राह्मणका अपमान न कर रे चाण्डाल !! तेरी आयुके दिन अब समाप्त ही हो चले हैं।"

यह वाक्य बड़े मधुर शब्दोंमें कहा गया था। किन्तु कार्त्तवीर्य्य इसे सुनतेही चौंक पड़ा। उसने घबराकर ऊपरकी ओर देखा, कि अति मधुर प्रकाशके भीतर उज्ज्वल ज्योतिस्वरूपा एक देवीमूर्ति बैठी हुई है और अपने क्रोध-कषायित नेत्रोंसे उसकी ओर देखती हुई उक्त वाक्य कह रही है। राजा उसे देखकर मारे भयसे दो कदम पीछे हट गये। कम्पित स्वरमें पूछा—"भयङ्कर रमणि! बताओ तुम कौन हो? मैंने तुम्हें कहीं देखा है।"

फिर वैसेही स्वरमें उक्त देवी-मूर्त्ति बोली—"ज़रूर देखा है। क्योंकि मैं भी तेरी सताई हुई हूँ। मेरा नाम विजया है। देवदत्तकी विधवा स्त्री। पहचाना! लोग मुझे ही "प्रतिहिंसा" कहते हैं। सावधान! अब इस ब्राह्मणका अपमान न करना। अन्यथा इसी क्षण तेरा अन्त कर दिया जायेगा।"

यह कहकर विजया अन्तर्द्धान हो गयी। राजा और पुरोहित देर तक सोचते रहनेपर भी विजयाकी वाणीका वास्तविक अभिप्राय न निकाल सके।

२०

आज सरस्वती आश्रमके उस भागमें; जिसमें महावीर परशुरामकी अतिथि-शाला बनी हुई है और जिसमें आज कल देवी विजयाका निवास है, असंख्य लोग भरे हुए हैं। इनमें कई दल हैं। और ये दल भारतके भिन्न प्रदेशों, राज्यों, नगरों और ग्रामोंसे आये हैं। क्यों आये हैं, उसका संक्षिप्त विवरण इस बार फिर सुनिये।

सम्राट् कार्त्तवीर्य्यार्जुनने भारतके समस्त क्षत्रियोंको वर्ण श्रेष्ठ सिद्ध करनेके लिये उत्तेजन दिया है और आज्ञा दी है, कि मेरे साम्राज्यके सारे राज्य, अपने-अपने देशमें रहनेवाले ब्राह्मणों-को श्रेष्ठ पदोंसे च्युतकर उनपर अपना अधिकार करलें तथा भारतके नामी-नामी ब्राह्मण-ऋषियोंके मुखोंसे अपनेको श्रेष्ठ कहला लें। इस कामके लिये, वे सब तरहकी नीतियाँ काममें ला सकते हैं। साम, दाम, दण्ड और भेद द्वारा अपने इस कामको सिद्ध करना चाहिये। और यदि उक्त नीति तथा उपायोंसे भी अपना मतलब सिद्ध न हो; तो ब्राह्मण वर्णको सारी पृथ्वीसे

नेस्त-नाबूद कर दो। ऐसा होनेपर महाराज कार्त्तवीर्य्य फिरसे वर्ण-विभाग करेंगे और उस समय अग्रासन क्षत्रियोंकोही प्रदान किया जायेगा।

इस आज्ञाके प्रचारित होनेसे अधिकांश रजोगुणी क्षत्रियोंकी विवेक-बुद्धि भ्रष्ट हो, स्वेच्छाचार-प्रकाशन-प्रवृत्ति जाग उठी और उन्होंने बड़ी तत्परतासे सम्राट् कार्त्तवीर्य्यकी आज्ञा-पालन करना आरम्भ कर दिया। इस चेष्टाके आरम्भ होतेही देशमें भीषण क्रान्तिकी आग भभक उठी। धर्म-प्राण ब्राह्मण राज और माननीय पदोंसे हटाकर नीच कर्मोंमें नियुक्त कर दिये गये। जिन्होंने उनकी इस चेष्टाका विरोध किया, वे अपमानित होकर राज्यसे निकाल दिये गये, राजविद्रोहके अपराधमें दण्डित हो फाँसीपर लटकवा दिये गये और कितनोंहीकी सम्पत्तियाँ लूट ली गयीं।

इस तरह क्षत्रियोंके हाथोंसे मानावमानित हो ब्राह्मणलोग बड़े परेशान हुये। उन लोगोंको क्षत्रियोंके अत्याचारोंसे त्रस्त होकर नगर छोड़ वनवासी होना पड़ा। किन्तु वनवासी लोग भी निरापद नहीं थे। जो ब्राह्मण अपनी विद्वत्ता, मानता और कुलीनताके कारण, अति प्रसिद्ध या बहुप्रसिद्ध थे, समर्थ क्षत्रियोंने उनसेही अपनी श्रेष्ठता स्वीकार करानेके लिये विशेष उद्योग किया और उन्हींमें ऐसे लोगोंकी संख्या अधिक थी जो प्राणोंकी तनिक भी परवाह नकर शास्त्र वाक्योंका सम्मान करते थे। वे क्षत्रियोंके अत्याचारोंको छातियाँ खोल

खोल कर सहते थे, किन्तु अपनी आन कभी न खोते थे। उनमेंसे कितनोंहीने हँसते-हँसते इस क्रान्तिका विरोध करते समय जान देदी, पर क्षत्रियोंकी श्रेष्ठताको स्वप्नमें भी स्वीकार नहीं किया। "स्त्रियाँ और बच्चे हमारे बाद दर-दर मारे फिरेंगे, इन बेचारोंकी, फिर कोई भी सुधि न लेगा; अतएव येभी बिना मौत मर जायेंगे।" इस पापसे बचनेके लिये केवल मुख मात्रसे क्षत्रियोंका श्रेष्ठत्व स्वीकार कर लेना पाप नहीं, कर्त्तव्य है, यदि वे ऐसा सोचकर अपनी प्राण-रक्षा करना चाहते, तो कर सकते थे; किन्तु नहीं, जो प्रणवीर होते हैं, वे कभी प्राण-भय नहीं करते। उस समय धर्मवीर ब्राह्मणोंने धर्मके नामपर, जातिके नामपर आत्म-बलि करना उत्तम माना; पर प्राणभयसे त्रस्त हो, जान बचनेकी इच्छासे—डरकर,सदाके लिये अपनी जातिको पदोनत करना ठीक नहीं समझा। वे लोग खुशीसे मर गये।

धीरे-धीरे उक्त अत्याचारोंकी आग प्रचण्ड हो उठी। भारतभर भीरु ब्राह्मणोंके भयंकर हाहाकारोंसे भर गया। उद्दण्ड क्षत्रियोंके मूर्खता पूर्ण-विचारोंका, अत्याचार-पूर्ण अनाचारों का कहीं अन्त ही न था। अबलाएँ अनाथ होकर, पुत्रगण पितृ-हीन होकर अपने बचाव और आश्रयके लिये तरसने लगे। दीन ब्राह्मणोंको और किसका आसरा! रक्षकभी क्षत्रिय और भक्षक भी क्षत्रिय। कितने ही और कहीं-कहीं ऐसेभी क्षत्रिय थे, जो कार्त्तवीर्य्यार्जुनके वर्ण-श्रेष्ठ बनने-विषयक विचारोंको उन्मत्तता और अविचारिता समझते थे। उनका ईश्वर-

के अविच्छेद्य विधानोंपर अविचल विश्वास था। वे शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार ब्राह्मणोंको निरीह-अतएव पृथ्वीके देवता समझते थे। किन्तु जबर्दस्तका रास्ता सिरपर होता है। कार्त्तवीर्य्य उन दिनों समस्त पृथ्वीका एकच्छत्र सम्राट्-क्षत्रिय-मण्डलका माननीय माण्डलीक और शासन-विधियोंका विधाता था। वह एक बार भी जिस बातको अपने मुँहसे निकाल देगा, साम्राज्य भरमें उसका सोलह आना पालन होगा। न करने वालेकी खैर नहीं। कुछ क्षत्रिय ब्राह्मणोंको इस प्रकार पदो-न्नत करनेके विरोधी अवश्य थे, किन्तु इस विरोधको प्रत्य-क्षमें प्रकट करनेका भी उनमें साहस न था। अतएव उन्होंने जब ब्राह्मणोंको एकदम उत्सन्न होता देखा, तब दया परवश हो, ब्राह्मणोंके प्रसिद्ध और स्वतन्त्र प्रदेश, महर्षि जामदग्निके सरस्वती आश्रममें उन सबके भेजने और रहनेकी व्यवस्था करादी। विधवा विजयाने ही उक्त क्षत्रियोंको वैसा करनेके लिये उत्ते-जित किया था।

हाँ, तो अब कितनेही अनाथ ब्राह्मण परिवारोंके लोग धर्म भीरु क्षत्रियोंकी संरक्षतामें सरस्वती आश्रममें पहुँचने लगे और वहाँ धीरे-धीरे ब्राह्मणोंकी दुर्दशाका दमनीय चित्र खींचकर ब्राह्मण-कुमारोंको उत्तेजित करने लगे। जब वहाँ रक्षा प्राप्त असंख्य ब्राह्मण-परिवार आकर एकत्रित होगये और विजया द्वारा उन सबको इस बातका पता लग गया, कि तपोनिधि महर्षि जमदग्निके पुत्र, महावीर परशुरामने केवल ब्राह्मणोद्धार और

ब्रह्म-विद्याकी प्रतिस्थापनाके लिये ही अपना जीवनोत्सर्ग कर दिया है और वे इस विषयमें पूर्ण सिद्धि पानेके लिये चिरकालसे ही बड़ी-बड़ी दुःसाध्य साधनायें कर रहे हैं, तब तो मानो उन्हें अपनी चरमोन्नतिका शुभागम प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। एक दिन उन्होंने परस्परमें सलाहकर महावीर परशुरामके पास आकर अपनी दुःख गाथाका सुनाना निश्चित किया। इसी समय ब्राह्मण महासभाकी ओरसे इन ब्राह्मणोंके पास सन्देश आया, कि आजसे चौबीस वर्ष पूर्व, जब भारतके ब्राह्मण और स्वर्गके देवताओंने परस्पर मिलकर अमरावतीमें ब्राह्मण धर्मके उद्धार-प्रश्नपर विचार किया था और अन्तमें कोई उचित उपाय स्थिर न होनेपर जब वसुन्धरा देवी स्वर्ग-लोकमें गयीं और भगवान विष्णुसे ब्राह्मण महासभाकी बातें कहीं, तब उन्होंने हम लोगोंके पास यह सन्देश भेजा था, कि महर्षि जमदग्निके यहाँ श्रीमही परशुराम नामसे ईशविभूतिका जन्म होगा। वही ब्राह्मण-धर्मकी प्रतिष्ठा करेगी। देवाधिदेव द्वारा हमलोगोंको मालूम हुआ है कि, अब उक्त विभूतिका जन्म होगया और आज कल वह उत्तरीय सरस्वती आश्रमके किसी विजन प्रान्तमें बैठकर अपनी शक्तिकी साधना कर रही है। आजसे सात दिन बाद सायं कालके समय उस साधनाकी समाप्ति हो जायेगी। आपलोग उस दिन यथा समय उनके पास पहुँच जायें और ब्रह्मविद्या स्वरूपिणी भगवती विजयाको अपना अध्यक्ष बना, उससे ब्राह्मणोद्धारकी प्रार्थना करें। वह अवश्य तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर लेगी।

इस सन्देशसे उक्त ब्राह्मणमण्डलीको आशापूर्ण होनेका आभास मिला। अतएव वे सब मिलकर पहले दिन विजयाके पास गये और हाथ जोड़कर बोले—"मा! आप साक्षात् गायत्री ब्रह्मविद्या स्वरूपा और सर्वान्तर्यामिनी हैं। आज कल हम लोगोंकी कैसी दुर्दशा हो रही है, इसे बतानेके लिये हमें पिछले इतिहास न सुनाने पड़ेंगे। दुर्दान्त क्षत्रियोंके अत्याचारोंके कारण हम लोग मर मिटे हैं। अब अमरावतीकी ब्राह्मण-महासभासे हमारे पास सन्देश आया है, कि हम परशुरामके पास जायें और आपकी अध्यक्षतामें हमलोग उन्हींसे अपने सारे दुःख निवेदन करें। आशा है, वे हमारी रक्षाका कोई न कोई सहज उपाय अवश्य निकाल देंगे।"

विजया बोली—"मैं स्वयं उस समयकी प्रतीक्षा कर रही थी, जिस समय तुम लोगोंको भगवान् परशुरामकी शरणका आश्रय दिलाऊं। मैं ब्राह्मणसभा और आप लोगोंकी आज्ञाका पालन करनेके लिये हरदम तय्यार हूं।"

"बहुत अच्छा मा! तब इस मासकी शुक्ल पक्षीय सप्तमीको वहां जाना होगा।" इतना कह ब्राह्मण-मण्डली अपने-अपने कुटीर निवास को लौट गयी।

यथा समय शुक्लपक्षीय सप्तमी भी आ गयी। मा विजया उसी वेशमें, जो वेश उनका पति-मरणके समय था—सजकर ब्राह्मणोंके पास आ गयीं। उन्हें देख समस्त ब्राह्मण क्षणभरमें एकत्रित हो गये। चन्दनके सिंहासनपर विजयाका अध्यक्ष पद

पर अभिषेक किया गया। सरस्वती आश्रमसे उत्तरकी ओर एक बड़े भारी मैदानमें दूर-दूर तक ब्राह्मण लोग बैठ गये। अगणित लोक-संख्या थी। ब्राह्मणोंका अभाव क्या था? मानो जन-समुद्रका उफान था।, सबके बीचमें विचित्र वेशधारिणी विजया, साक्षात्, कमलनिवासिनी, लक्ष्मीसी प्रतीत होती थीं। कुछ देर बाद महाविद्या विजयाने अपने पदपर खड़े हो, ऊँचे स्वर से कहा—"सज्जनो! मैं जानती हूँ कि, दुर्द्धर्ष क्षत्रियोंके अत्याचारोंसे धरातल रसातल जानेकी तय्यारी कर रहा है। क्षत्रिय लोग रजो और तमोगुणके अधीन हो सदा, सीधे ऋषि, मुनियोंके, योग, यज्ञ और तपस्याओंमें विघ्न डाला करते हैं। निरीह ब्राह्मण और ब्राह्मणहितैषी क्षत्रियोंपर मनमाना अत्याचार किया करते हैं। इसी पापसे पृथ्वी भी बोझसे दबी जा रही है। यदि और कुछ दिनों तक यही हाल रहा, तो शीघ्रही समस्त सृष्टि क्षार-क्षार हो जायेगी। आप लोगोंने यद्यपि सर्व प्रथम मेरा पल्ला पकड़ा है, किन्तु आपकी दुर्गतिका निवारण करना मेरी सामर्थ्यसे भी बाहरका काम है। मैं स्वयं महावीर्य्यशाली कार्त्तवीर्य्यके अत्याचारोंसे दुःखित हूँ। हाँ, उपाय भगवान् परशुरामके हाथमें है। वह देखिये, भगवान् इसी ओर आ रहे हैं। आप सब उनका खड़े होकर स्वागत करें।" यह कह विजया अध्यक्ष पदसे उतरीं और समस्त ब्राह्मण मण्डली के आगे जाकर खड़ी हो गयीं। कुछ देर बाद उसी स्थानपर परशुराम आ गये; सबने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया।

अनन्तर काष्ठ-निर्मित आसनपर बैठाकर यथाविधि उनकी पूजा की गयी। फिर सबने एक स्वरमें मिलकर कहा—"आदिदेव! हम देव और द्विजगण आपके चरणोंमें सादर प्रणाम करते हैं। भगवन्! हमारी रक्षा कीजिये।"

परशुराम बड़े शान्तस्वर और आश्चर्य-हीन भावसे बोले—"हे देवगण! कृपया बताइये, आपलोग यहाँ किस लिये एकत्रित हुए हैं? आज यहाँ मैं विजयाकोभी बड़े दीन वेशमें देख रहा हूँ।"

अत्रि ऋषिने आगे बढ़ और हाथ जोड़कर कहा—"हे दीनानाथ! इस संसारमें ऐसी कौन बात है, जो आपको न मालूम हो? आप योगियोंके योगेश्वर और सबके हृदयोंकी जाननेवाले हैं। भगवन्! आपसे क्या बताया जाये। आजकल इस पृथ्वीपर दुर्जन क्षत्रिय लोग साधु-द्विजोंको प्रतिक्षण पीड़ित किया करते हैं। धीरे-धीरे संसारसे सारे धार्मिक अनुष्ठान उठे जा रहे हैं। हमलोगोंके पास न तो इस समय खानेके लये अन्न है और न पहननेके लिये वस्त्र। हमारे परिवार मारे भूखोंके दिन-दिन क्षीण होते चले जाते हैं इस प्रकार संसारमें ब्राह्मणजातिके जीवित रहनेकी आशा बहुत ही कम है। बेचारे घर-हीन आश्रय-हीन होकर दर-दर मारे फिरते हैं। ब्राह्मण पदका जितना और जहाँ तक अपमान हो सकता था, वहाँतक हो चुका। समस्त वर्णोंके राजा ब्राह्मण आज अपने समस्त कर्म-धर्मोंसे हीन हो, केवल प्राणोंके भयसे क्षत्रियोंकी गुलामी, साधारण लोगोंकी गालियाँ और शूद्रोंके

आपके हाथमें यह निर्णय रहे हैं। भगवन् ! उन सबको आत्म्यावर गमन करा कर आप शीघ्र ही कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे संसारसे आगमनागमन और जन्म-मरणोंका नाश न हो जाये। और अधिक हम क्या कहें !"

जिनदासकी माँ हाथ जोड़कर कहने लगी [illegible] आपका [illegible] एक [illegible] कहा [illegible] ! अब तो हम [illegible] जिन [illegible] शुभ [illegible] जिन [illegible], आपकी [illegible] और [illegible], जिससे आपके [illegible], [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]



परशुराम-प्रतिज्ञा ।

"जबतक संसारमें ब्राह्मणोंकी प्रधानता व्याप्त न हो जायगी, तब तक बराबर उनके विरोधियोंका नाश करता रहूंगा ।" (पृष्ठ २४२)

प्रतिष्ठा, अनाचारियोंका उच्छेद और मेरी प्रतिहिंसा प्रवृत्तिकी निवृत्ति ।"

परशुराम—विजये और उपस्थित शिरसावन्द्य पूज्य ब्राह्मण-वृन्द ! संसारमें साम्यभावका प्रचार करना, और ब्राह्मण धर्मकी प्रतिष्ठा करना तो मेरे जीवनका मुख्य व्रत ही है। मैं अभीतक, उस व्रतमें दीक्षित होनेके लियेही कठोर साधना कर रहा था। आज मेरी वह साधना समाप्त हो गयी। अब मैं उसके उद्यापन-कार्य्यमें लगूंगा। जबतक संसारमें ब्राह्मणोंकी प्रधानता व्याप्त न हो जायेगी, तबतक बराबर उसके विरोधियोंका नाश करता रहूँगा। अधिकार और धनके मदसे मतवाले क्षत्रियोंके रक्तसे पृथ्वीके समस्त पाप-चिह्न धोकर उस पवित्र, निर्मल और निष्पाप-राज्यमें ब्राह्मण-धर्म और ब्रह्मविद्याकी प्रतिष्ठा करूंगा। विजये ! सबसे पहले तुम्हारे स्वामिहन्ता, और अपने पितृहन्ता उस भयंकर महापापी कार्त्तवीर्य्यको मार, उसके खूनसे अपने कृपाण, कुठार और धनुष-बाणका अभिषेक करूंगा। वह पापी आजकल दिग्विजयी और एकच्छत्र सम्राट् बनकर अत्यन्त गर्वित हो गया है। पहले उसी पापवृक्षका मूलोच्छेद करूंगा और बादको उसकी शाखा प्रशाखारूप ब्रह्मविरोधी क्षत्रियोंका नाश करूंगा। बोलो,तुम उस भयङ्कर ध्वंसकारी प्रलयदृश्यको देखकर डरोगी तो नहीं ? माताओंका करुण चीत्कार, पत्नियोंका हताशरोदन, कन्याओंके आर्त्तनाद और असंख्य विधवाओंके शोचनीय दृश्यको अनायास देख सकोगी न ?

विजया—प्रभो ! आप इस विश्व-क्षेत्रके सर्वप्रधान कृषक हैं ! आज कल आपके क्षेत्रके धर्मवृक्षकी जड़में पापके कण्टक पैदा हो गये हैं। उन कण्टकोंको बिना उखाड़े तो धर्मवृक्ष बढ़ही न सकेगा। मैं उस विश्व-वनक्षेत्रमें वनदेवीकी भाँति वनविहार करूँगी। प्रभो ! आप अपने खेतको अवश्य निष्कण्टक कीजिये। मैं परमानन्दसे उक्त दृश्योंको देख सकूँगी।

"तब ब्राह्मणो ! आजसे तुम्हें अभय दिया जाता है। अब तुम जहाँ चाहो, रहो; जहाँ चाहो जाओ। मैं अब तुम्हारे कार्यमेंही आत्मार्पण करता हूँ।"

भगवान् परशुरामकी इस प्रतिज्ञाको सुन समस्त ब्राह्मणोंने एक साथ मस्तक झुकाकर उनका अभिवादन किया और "साध्य देव परशुरामकी जय" का घोर शब्द करते हुए वे अपने-अपने स्थानको चले आये।

श्रेष्ठ कौन है ?

२१

राजपुरोहित अपने आश्रयदाता कान्तवीर्यके परम हितचिन्तक थे। वे अजितकी तरह आज्ञा-पालक और सुरथकी तरह स्वामिभक्त थे। उस दिन राजाके हाथोंसे अपमानित होकर भी और उसे दिनपर-दिन उद्दण्ड, अत्याचारी और प्रमादी बनता देख-करभी, आजकलके मित्रोंकी भाँति उन्होंने राजाकी चाटुकारी कर अपना घर भर लेना ठीक नहीं समझा; वरन् राजकुमार अजित, और मन्त्रिवर सुरथके साथ सलाह-मशविराकर वे महाराजको सुपथ-पर लानेकी अचल चेष्टा करने लगे। उन्होंने स्थिर किया, कि आजकल राजाके यहाँ दो दल ऐसे हैं, जो अपनेको उनका हि-तैषी बताते हैं; पर उन दोनोंमें एक दल ऐसा है, जो ऊपरसे भाँड़ सज भीतरसे पेटमें छुरी मारनेका यत्न कर रहा है। और उससे सबसे बड़ा भय यह है कि, राजा इसीको अपना परम अनुरक्त समझते हैं। अतएव विश्वासके भुलावेमें पड़ राजा बुरी तरह मारे जायेंगे, राज्य भी अपने हाथोंसे जायेगा। अब कोई उपाय ऐसा होना चाहिये, जिससे महाराज इन गृह-शत्रुओंके चंगुलसे बचें।

पुरोहितको महाराज अपनी उद्दण्ड प्रकृतिकी उत्तेजना वश, कभी-कभी अपमानित ज़रूर कर बैठते थे, पर पीछे बिना पुरोहितके उन्हें एक पल बिताना भी दूभर हो जाता था। तद्नुसार उस दिन अपने परम अन्तरङ्ग मित्रको अपमानित कर राजाको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने उस दिन रातकोही अपने राजमहलोंमें पुरोहितको बुला अपराधकी क्षमा याच्ञा की, पुरोहित सच्चे थे—दिलके साफ थे। अतः वे सवेरेकी घटनाको पहलेही भुला बैठे थे। उन्हें तो राजाके कल्याणकी चिन्ता थी। राजाके क्षमा माँगनेपर उन्होंने राजाको कितनेही, काम लायक उपदेश दिये। उन्होंने बड़ी चतुराईसे चाटुकार दलकी सारी पोल खोली, विशिभद्रा, धूमकेतु और मधुच्छन्दकी आन्तरिक इच्छाओंको सजीव रूपमें दिखा दिया और इस बातका वचन दिया, कि समय मिलने पर मैं अपने कथनका प्रत्यक्ष प्रमाण भी देसकूँगा। तदनुसार आज पुरोहितने पहले रानियोंकी परीक्षा लेनेका विचार राजाके आगे प्रकट किया। पुरोहित और महाराज असली वेशको छिपा, सिपाही-वेशसे सजकर छिपे-छिपे राज-अन्तःपुरमें गये। सबसे पहले महाराज वसुमतीके कमरेमें गये और चुपकेसे भीतरका दृश्य देख पुरोहितके पास लौट आये। पुरोहितने पूछा—"महाराज सच बताइये आपने महारानी वसुमतीके कमरेमें क्या देखा ? आज मैं आपकी सारी भ्रान्तियाँ दूर करूँगा। आप समझते हैं, विशिभद्रा सरला, स्वामि-परायणा और धार्मिका है। वसुमतीको स्वार्थ-परायण और स्वामि-विद्वेषिणी समझकर आप पहलेही

त्याग चुके हैं। अब बताइये, आपकी वह समझ ठीक थी या ग़लत? यद्यपि इस समय सौभाग्यदिन बीत चुका है, भयानक अन्धकारमयी अमावास्याकी रात सामने है, अर्थात् इस समय आपकी भ्रान्तिके दूर होनेसे भी कोई लाभ न होगा; शत्रु अपना स्वार्थ सिद्ध कर चुके हैं। तथापि आप यह तो जानही जायेंगे, कि सच्चे हितैषी कौन थे? बताइये, वसुमती इस समय क्या कर रही थीं?"

महाराज—प्रियमित्र! मैंने पर्देकी आड़से देखा कि, वसुमती अपने सारे सुन्दर वस्त्राभूषणोंका परित्याग कर एक साफ-सादी धोती पहने हुए हैं। रातका दोपहर हो जानेपर भी कठोर कुशासनपर बैठ, एकमनसे शिवा-पूजा कर रही हैं। पासमें ही बैठा हुआ अजितकुमार चुपचाप, आँखोंमें आँसू भरे, उस पूजनको देख रहा है।

पुरोहित—अच्छा, अब आइये, अपनी सती, साध्वी, सरला, प्रेममयी और गुणवती रानी विप्रिभद्राकोभी एक बार चलकर देख लीजिये। देखिये, वे क्या कर रही हैं।

राजा बड़ी उत्सुकतासे वसुमतीका वास-भवन छोड़, विप्रिभद्राके विलासागारमें पहुँचे। भवनके पिछले हिस्सेके एक झरोखेमें जाकर उन्होंने जो कुछ भीतरका दृश्य देखा, उससे तो उनका हृदय काँप उठा। शरीर पसीना-पसीना हो गया! मानो मूर्च्छासी आने लगी। किन्तु उसी समय पुरोहितने पास आकर उन्हें सम्हाल लिया और कानमें कहा—"महाराज! यहाँ कुछ देर

स्थिर होकर ठहरना पड़ेगा !" राजा मनको एकाग्रकर फिर चुपचाप भीतरका दृश्य देखने लगे।

उन्होंने देखा, विष्टिभद्राके सोनेका कमरा बड़ी-बड़ी विचित्र विलास-सामग्रियोंसे सज इन्द्रके भवनको परास्त कर रहा है। कमरेके मध्य भागमें रत्न-जटित एक सोफ़ा पड़ा है, उसपर विष्टि-भद्रा और कौशिककुमार मधुच्छन्द गलेमें हाथ डाले बैठे हैं। भद्रा कह रही है—"प्रियतम ! आज तुम इतने क्यों घबरा रहे हो ? सारा मुंह पसीनेसे भीग रहा है। शान्त होकर यहाँ थोड़ी देर विश्राम कीजिये, मैं आपका पंखा करती हूँ !" इतना कहकर वह स्वयं चन्दनका पंखा झलने लगी। मधु-च्छन्द अत्यन्त थके हुओंकी भाँति चुपचाप बैठा रहा। भद्रा फिर नम्र स्वरसे पूछने लगी—"बोलो प्रियतम ! जल्द बोलो। देखो, तुम्हारी इस क्लान्तिको देख मेरी तो छाती फटी जाती है।"

इस बार मधुच्छन्द बोला—"भद्रे ! प्रियतमे ! घबराओ मत, सुनो। राज्यमें महावीर परशुरामने प्रवेश कर युद्ध करना आरम्भ कर दिया है। आपके पति कार्त्तवीर्य्य महाराजकी बहुतसी सेना मारी जा चुकी है। तुमने परशुरामका नाम ज़रूर सुना होगा। वे महर्षि जमदग्निके पुत्र हैं। तुम्हारे महाराजने उनके पिताकी बड़ी बेरहमीके साथ हत्या की थी। उसी हत्याका बदला लेनेके लिये वे आज महाराजको परिवार-समेत मार डालेंगे। अब बहुतही थोड़ा समय रह गया है, जब कि वे यहाँ घुसकर

महाराजको पकड़ ले जायेंगे। अब बताओ, हमलोगोंकी रक्षाका कौनसा उपाय है?"

भद्रा—बस, सारी बात यही थी? आप डरते क्यों हैं? ईश्वरकी हमपर कृपा है। मैं दिनरात विषम उत्कण्ठासे ऐसे सुयोगकी प्रतीक्षा किया करती हूँ। मैंने अजितकुमार और महाराजको मरवादेनेके लिये असंख्य उपाय किये थे, पर अफसोस! आज तक उनमेंसे कोई कारगर नहीं हुआ। इस बार भगवान्ने आशा पूर्णकर मेरी प्रार्थनापर कर्णपात किया है। अब महाराजके पाप पूरे हो गये; वे यदि वंश-सहित मारे जायें, तो हमलोग सहजमेंही निष्कण्टक हो जायेंगे। आप तय्यार हो जाइयेगा। चलिये, मैं तो अभी आपके कौशिकराज्यमें जानेके लिये तय्यार हूँ। थोड़ासा समय दीजिये, कि मैं अपना सारा जेवर और हीरा-मोती इकट्ठा करलूं। इतने आप थोड़ी देर विश्राम कीजिये।

यह सुनकर मधुच्छन्दका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। विष्टिभद्रा उपपतिको उचित सान्त्वना दे अपना गहना और धनरत्न इकट्ठा करके बाँधने लगी।

* * * *

पुरोहित—महाराज! आपने इन पापियोंकी सारी बातें सुन लीं न? विष्टा केवल व्यभिचारिणीही नहीं, वरन् पूजनीय स्वामीको सवंश नष्ट कर देनेके लिये वर्षोंसे चक्र चला रही है। ओह! असती स्त्रियोंके चरित्र कैसे भयङ्कर होते हैं! जाइये महाराज, अपनी सती-साध्वी रानीकी पद-सेवा कीजि-

येगा। जिसके लिये आपने ब्राह्मणोंका सर्वस्व-हरण किया, ब्रह्महत्या जैसा महापाप किया, अपनी उसी कुललक्ष्मी रानीके साथ आनन्दके आलाप कीजिये।'

अपनी व्यङ्ग-भरी भाषाके तीखे तीर मार कर पुरोहित महाराज वहाँसे प्रस्थान कर गये। राजा क्रोधसे थर-थर काँपते हाथमें नङ्गी तलवार ले, भद्राके शयनागारमें घुस गये और उग्र कण्ठसे, पुकारा—"भद्रा!"

भद्रा और मधुच्छन्द एकाएक कालस्वरूप कार्त्तवीर्य्यको सामने खड़ा देख पत्थरके पुतलेकी तरह निर्वाक्, निस्पन्द भावसे खड़े हो रहे।

राजा—भद्रे! आओ, जीवन भरके लिये आजही एकबार प्रेमालाप करलो। तुम मुझे बड़ी प्रिय हो। मधुच्छन्द! कौशिक-राजकुमार! आप डरिये नहीं! स्थिर भावसे बैठकर हमारा प्रेमालाप सुनिये। भागनेकी चेष्टा मत कीजिये। यदि भागोगे, तो जानसे मारे जाओगे। भद्रा! चुप क्यों हो रहीं? कुछ कहो।

भद्रा मारे डरके थर-थर काँपती राजाके चरणोंपर गिर पड़ी। बोली—"महाराज! सचमुच मैं अपराधिनी हूँ। सच्ची बात छिपानेसे इस समय काम नहीं चलेगा। आप मेरा अपराध क्षमा करें; अबला स्त्रीकी-हत्या न करें।"

राजा—क्या सारी बातें सच-सच कहोगी? मेरे प्रश्नोंका ठीक ठीक उत्तर दोगी?

भद्रा—पहले यह प्रतिज्ञा कीजिये, कि आप मुझपर अस्त्रा-घात तो नहीं करेंगे!

राजा अट्टहास्य करते हुए बोले—"प्रेमिका होकर भी प्राणों-का इतना मोह !"

भद्रा—महाराज! मोह इस लिये है, कि अभी तक मेरे जीवनकी सारी आशाएँ पूरी नहीं हुई हैं।

राजा—यह क्या कह रही हो भद्रा ! संसार-विजयी-चक्र-वर्त्ती सम्राट् कार्त्तवीर्य्यार्जुनकी परम प्रियतमा प्रेयसी रानी होकर, उनके निष्कलंक, परम पवित्र अन्तःपुरमें बैठो-बैठी स्वामीके नेत्रोंमें धूल झोंकती हुई, ऐसे भयानक घृणित पापके रास्तोंपर निर्भयता पूर्वक विचर रही हो, इतने पर भी तुम्हारी आशा पूर्ण नहीं हुई! क्या इससे ऊँची भी कोई आशा स्त्री-जीवनमें हो सकती है?, अच्छा उठो, मैं तुम्हें नहीं मारूँगा।

भद्रा हाथ जोड़ती उठ खड़ी हुई। रुँधे हुए स्वरसे बोली—"महाराज! मैं वास्तवमें महापापिनी हूँ। आप मेरे पापोंको क्षमा कीजिये।"

राजा—भद्रे! सच बताओ। सत्य,रूप, यौवन, धन, सम्पत्ति ऐश्वर्य्य, शौर्य्य, वीर्य्य-इनमेंसे मेरे पास सभी कुछ है। फिर तुम्हें मैं सदा अपनी इष्टदेवीकी तरह पूजा करता हूँ; तुम्हारे लिये—तुम्हारे रूठ जानेके डरसे—मैं प्रफुल्ल सुपर्णकमल देव-कुमार जैसे, स्नेहधन अजितकुमारको मन भरकर प्यार नहीं कर सका। साक्षात् देवी प्रतिमाकी भाँति बड़ी रानी वसुमती-

के साथ एक दिन भी मुँहखोलकर नहीं बोला। फिर बताओ भद्रे! किस अभावकी पूर्त्तिके लिये तुमने पाप-पथपर पैर रखा!"

इसी समय पुरोहित महाराज व्यस्तताके साथ दौड़े आकर महाराजसे बोले—"महाराज! सत्यानाश होगया! जिसके लिये आपने अनेक असाध्य कामोंको सिद्ध किया था, वही नन्दा काम धेनु मौतके मुँहमें गिरी जा रही है। हाय! हाय! आज राजपुरीमें गो हत्या भी हो गयी!

राजा—जाओ मित्र! नन्दाको मरने दो। उससे कहना कि जल्दी न करे, शान्ति पूर्वक मरे। देखो भद्रा! मैंने तुम्हारे लियेही ब्रह्म-हत्या और गोहत्या की। तुम्हें प्रसन्न करनेके लियेही मैंने संसारके सारे बहुमूल्य हीरोंका प्राणोंकी तनिक भी परवाह न कर, संग्रह किया और तुम्हारे चरणोंमें लाकर उन्हें चढ़ा दिया; इतनेपर भी तुम्हारी आशा पूरी नहीं हुई! बताओ न, तुमने पाप-पथका अवलम्बन किस लिये किया!

भद्रा—महाराज! मेरा पाप ही इस समय मेरा धर्म है, और वह पापरूपी धर्मही मेरा साक्षी है। मैं एक अक्षर भी असत्य न बोलूँगी। आपके जैसा सर्व गुणमय पुरुष संसारमें दुर्लभ है। किन्तु महाराज! यदि आप आज मेरे पति न होकर परपुरुष होते, तो मुझे आज किसी तरहका क्षोभ न होता।

राजा—आह भद्रे! तुम्हारी प्रवृत्ति इतनी नीच है! ऐसे भुवन-मोहन सौन्दर्य्यमें इतना भयानक कालकूट! विधातः!

भद्रा तुम्हारी कैसी अभूत पूर्व सृष्टि है। आपने ऐसी सुन्दरी मोहिनीको इतना राक्षसी बनाया है !

भद्रा—महाराज ! विधाताका दोष नहीं, मेरा भी दोष नहीं, सारा दोष आपकाही है। आज मैं आपसे प्राणोंकी आशा-त्यागकर सत्य बात कहूँगी। दोष आपका ही है। आप अन्धे हैं, भला वसुमतीके रूपके साथ और मेरे रूपकी तुलना ! उनका रूप देवियों जैसा है और मेरा रूप वेश्याओंके जैसा है। जिस प्रकार आप उच्च वंशके भूषण हैं, उसी प्रकार वसुमती भी उच्च वंशकी कन्या है। पर योग्य पत्नीको पाकर भी आप उसकी गौरव-महिमाको न पहचान सकनेके कारण, मेरे रूपपर मुग्ध हो रहे। क्षमा करें महाराज ! मैं एक वैश्यकी कन्या हूँ। मेरी माता व्यभिचारिणी थी, उसके गर्भ और एक देवल-ब्राह्मणके औरससे मेरा जन्म हुआ था। अब बताइये, इसमें मेरा क्या दोष है ! मेरा जैसा-शुक्र-शोणित है, जैसा वंश है, वैसी ही मेरी प्रवृत्ति है। क्योंकि अमड़ा कभी आम नहीं हो सकता।

राजा—तुमने आजसे पहले—कभी—इस कथाको क्यों नहीं कहा ?

भद्रा—मेरे कहनेकी अपेक्षा आपकोही विवाह करते समय अनुसन्धान करके मेरा हाल जानना उचित था। आपके हाथमें एक नहीं, करोड़ों नरनारियोंका जीवन है। सुकुमार अजितकुमारको गोदमें लिये खड़ी देवी वसुमती आपकी राज-महिषी

हैं, और फिर भी आप एक नीचवंशीया मायाविनीके ऊपर मुग्ध हो रहे!! महाराज! यह दोष किसका है मेरा है या आपका?

राजा—हाँ, मेरा। सरासर मेरा दोष है। भद्रा! आज तुम मेरी दीक्षागुरु हुई। मधुच्छन्द! तुम भी निर्दोष हो। तुमने भी अपने स्वभावानुसार ही काम किया हैं। जो बिना कारण अपने देवता जैसे भाईको मरवा दे, मातृसमा भ्रातृ-जायाके ऊपर अत्याचार कर सकता है, उसके लिये अपने आश्रयदाताके अन्तःपुरकी पवित्रता नष्ट करना बायें हाथका खेल है। फिर जिसकी मायामें मैं मुग्ध था, उसके फन्देमें तुम्हारा फँस जाना बड़ी आसान बात थी। अब यह बताओ, कौशिक-कुमार! कि तुम्हारे इस काममें मदद करनेवाला कौन है?

मधुच्छन्द—आपका प्रधान सेनापति धूमकेतु।

राजा—ओह, धूमकेतु? भद्रा! सच बताओ, यह धूमकेतु तुम्हारा कौन है! यह तुम्हारा भाई तो मालूम नहीं होता!

भद्रा—महाराजका अनुमान ठीक है। यह मेरा भाई नहीं, वरन् कुमारी-अवस्थाका उपपति है। यह एक डाकूका लड़का है।

राजा—अहा—हः हः-हः! कैसी कुहेलिका है! कितना भयङ्कर षड्यन्त्र है! हे जगदीश! आपकी यह सृष्टि बड़ी विचित्र है। आपने एकही समयमें दोनों उदाहरण उपस्थित कर दिये! वसुमती और भद्रा; पुरोहित और धूमकेतु; देवदत्त

और मधुच्छन्द ; मैं और जमदग्नि-पुत्र परशुराम। अर्थात् स्वर्ग और नरक सब इसी संसारमें हैं। किन्तु स्वर्गकी अपेक्षा नरक का गौरव अधिक है। क्योंकि आज मैंने नरकमें पड़कर ही अधिक ज्ञान उपार्ज्जन किया है। (पलङ्गपर रखी एक पोटली उठाकर) यह क्या है भद्रा!

भद्रा—महाराज! आपने समय-समयपर मुझे जो अमूल्य मणि-मुक्ता दिये थे, उन्हें ही मैं इस पोटलीमें बाँधकर लिये जाती थी!

राजा—बड़ी अच्छी बात है! जाओ भद्रे! जाओ कौशिक-राज-कुमार! जाओ। मेरेही सामने दोनों परस्पर हाथ पकड़-कर हँसते-हँसते, नायक-नायिकाकी भाँति अति स्वच्छन्दतासे चले जाओ। किसी प्रकारके भयकी बात नहीं है। यदि नहीं जाओगे, तो सच जानो, अभी दोनोंका सिर काट डालूँगा।

यह सुनकर भद्रा और मधुच्छन्द अलङ्कारोंकी पोटली ले नीचा सिर किये, चुपचाप चले गये। महाराज कमरेमें अकेले कर्त्तव्य-विमूढ़ भावसे खड़े रहे। थोड़ी देर बाद जब चेतना हुई, तब एक गरम श्वास छोड़ते हुए बोले—"ओह! आज नयन सार्थक हुए और जन्म सफल हुआ। अब तो जीवनभर अपने पापोंके लिये अनुतापही करना पड़ेगा। संसार! आँख पसार कर देखले! कुसङ्गियोंके कुचक्रोंमें पड़कर एक चक्रवर्त्ती शक्ति-शाली व्यक्तिकी अन्तमें क्या दशा हो जाती है। अर्थात् मैंने

स्वयंही जीवनभर जलनेका उपाय उपस्थित किया है। इन्हीं दुष्टोंके फेरमें पड़कर मैंने इतनी ब्रह्म-हत्याएँ कीं और करवायीं। खैर जैसा होगा, वैसा देखना और भोगना पड़ेगा।"

इतना कहते-कहते वे अपने शयनागारमें चले गये और वह रात उन्होंने शय्यापर पड़े-पड़े बेचैनीके साथ करवटें बदलते-बदलतेही बितायी।



प्रतिकार

२२

महावीर परशुरामकी अभयवाणी, विजयाके आशाभरे वाक्य और सरस्वती आश्रम तथा अमरावतीकी ब्राह्मण महासभाके देव-द्विजोंसे सहायता प्राप्तकर, क्षत्रियों द्वारा सतायी ब्राह्मण-मण्डली अब फिर नया जीवन लेकर उठ खड़ी हुई। अब उसने अपने पूर्वजोंकी भाँतिही, अपने विरोधी क्षत्रियोंका छाती खोलकर सामना करना आरम्भ कर दिया। पर पहले सामनेसे यह सामना निराला था! इस बार पहले सबके पास चेतावनियाँ भेजी गयीं, कि यदि क्षत्रियलोग इन ब्राह्मणोंपर अधिक अत्याचार करेंगे, तो यह मण्डली उनका समुचित शासन और निर्बल ब्राह्मणोंकी रक्षा करेगी। अतएव समर्थ क्षत्रियगण धन-बल-हीन, विभु-भजन-व्रती, सरल ब्राह्मणोंको सताकर भगवान्‌के कोपका सञ्चय न करें।

किन्तु गर्वित क्षत्रिय—धन-बल और समुचित सहाय्य-प्राप्त राज-मद-मत्त क्षत्रियोंने, उक्त चेतावनीकी तनिक भी परवाह न की और उत्तरमें बड़े कटु शब्दोंमें कहला भेजा, कि यदि तुम्हें अपने परशुरामकी हिमायतका घमण्ड हो, तो उसेही हमारे पास क्षमा-प्रार्थना और ब्राह्मणोंका हीनत्व स्वीकार करने भेजो।

इधर महावीर परशुराम और विजय-स्वरूपा, विघ्नघा विज-याने, तत्कालीन गर्वित और अत्याचारी क्षत्रियोंके सम्राट्, अपने पुरातन शत्रु, कार्त्तवीर्य्यार्जुनके पास प्रतिहिंसा स्वरूप युद्धका सन्देश भेजा। उस सन्देशको सत्यानाशी धूमकेतु और मायावी मधुच्छन्दको प्ररोचनाओंमें आकर महाराजने बड़े घमण्डके साथ स्वीकार कर लिया और युद्धकी तिथिभी निश्चित होगयी।

यथा समय महावीर परशुराम केवल विजयाको साथमें लिये महिष्मतीपर चढ़ आये। इधरसे भी सेनापति धूमकेतु, नौ लक्ष चतुरङ्गिणी सेनाको साथमें ले उनका सामना करने-के लिये किलेके मैदानमें आ जुटा। उसने बड़ी चतुरताके साथ मोर्चाबन्दी की और प्रातःकालसेही परशुरामको ललकार दिया। धूमकेतु पहले सबसे आगे जाकर शत्रुओंको पुकारकर बोला,—"परशुराम! मातृ-पितृ-हीन ऋषि-बालक! आज किस-के बहकानेमें आकर मौतको सिरपर चढ़ा, आगमें आहुति देने आ या है? अगर लड़नेकी हौंस थी, तो किसी साधारण क्षत्रियसे लड़कर हौंस पूरी कर लेता, सम्राट्—भारतीय साम्राज्यके एक-च्छत्र अधिकारीसे, सेनाहीन, अस्त्रहीन—केवल एक परशुके सहारे लड़ने चला आया! निश्चयही तेरा मस्तिष्क विक्षिप्त होगया है। जा, अबभी जान लेकर भाग जा!"

परशुराम इन वाक्योंको सुन और तत्काल रुद्र-रूप धारण-कर कालिकावेशी, मुक्तकेशी और खड्गहस्ता विजयाको साथ ले, हृदय-भेदी हुङ्कार करते रण-क्षेत्रमें आ कूदे। विजयाने अपने

अट्टहाससे आकाशको गुंजाते हुए कहा—"अधिक बकवाद न कर रे बकवादी पशु! यदि लड़ने आया है, तो सेनाको आगे कर।"

धूमकेतुने भी क्रोधमें आकर अपनी सेनाके प्रथम विभागको आज्ञा दी, कि इन दोनों व्यक्तियोंको अभी पीस दिया जाये।

अपने सेनापतिकी ऐसी आज्ञा पाकर सारी सेना उन दोनों प्राणियोंको मारनेके लिये टूट पड़ी।

किन्तु वाह रे! परशुराम और शाबाश विजया! जिस प्रकार शरद्कालीन बालक सूर्य्यपर कोहासेका आक्रमण होता है, और जिस तरह वर्षाकालीन पूर्ण शशिपर मेघ मंडराया करते हैं, उसी प्रकार कुछ देरके लिये, एकाएक असंख्य लोगोंका आक्रमण होनेसे विजया और परशुराम दोनों बेतरह घिर गये। पर कुछही देर बीतते न बीतते, अपनी प्रखर किरणोंसे जिस प्रकार सूर्य्य कुहासेको उड़ा देता है, उसी प्रकार परशुरामने सारी सेनाको अपने अद्भुत परशुसे ज़मीनपर सदाके लिये सुला दिया।

इसके बाद वे क्रमशः व्यूहके सारे दरवाज़ोंको तोड़ते सेनाके प्रत्येक विभागका नाश करते, सायङ्कालके समय अन्तिम भागमें जा पहुंचे। यह भाग महिष्मतीके किलेके पास ही था और प्राण-प्रणसे उसकी रक्षाके लिये तय्यार था। इसने परशुरामसे दिल तोड़कर युद्ध किया, किन्तु सांझ होते न होते, इसके भी पैर उखड़ गये और प्राण-भयसे, सेनापति धूमकेतुको भागता देख स्वयं भी भाग खड़ा हुआ। विजय विजया और महावीर परशुरामकी ही रही।

विद्रोही-विक्रम

२३

क्षत्रियोंके उद्दण्डता-पूर्ण उत्तरको पाकर ब्राह्मण मंडलीके माण्डलीक परशुरामने तत्काल अपने तीन भाई और विजयाके चारों पुत्रोंको बुलाकर दक्षिण दिशाके राजाओंपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी। अपने पूज्य अभिभावककी आज्ञा पाकर, ये सप्तरथी तत्काल परशुरामके जयजयकारसे दसों दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए, असंख्य ब्राह्मणोंके साथ विरोधियोंका दमन करने चल दिये।

परशुरामके प्रताप, ब्राह्मणोंके आशीर्वाद और देवताओंके दिव्योपदेशसे इन्होंने पहले जाते ही श्वेतद्वीपके राजा श्वेतकेतुपर आक्रमण कर विजय प्राप्त की और वहाँ क्षत्रियराज्यको उखाड़कर ब्राह्मण-राज्यकी स्थापना की। सामान्य बली श्वेतकेतु अपने राज्यपर असंख्य ब्राह्मण सेनाको आते देख पहलेही परिवार समेत कहीं भागकर छिप गया था; अतएव परशु-दलको वहाँ विशेष युद्ध भी न करना पड़ा और वहाँ सहजमें ही उसकी प्रभुता प्रतिष्ठित हो गयी। दलके वे ब्राह्मण यहीं रह गये, जो

शान्त-स्वभावके थे। इनकी संख्या भी कम न थी। यहाँका राज-प्रबन्ध अस्थायी रूपसे विद्वान् ब्राह्मणोंको सौंप दिया गया। इसके बाद ब्राह्मण-मण्डली, आगे बढ़ी। अब यह दक्षिणेश्वर महाराज वृषकेतुके राज्यमें पहुँची। इसने जातेही वृषकेतुके राज्यपर आक्रमणकर किलेको हस्तगत कर लिया। और वृषकेतुके सेनानिवासको भी हस्तगत कर, महाराजको कैदी बना लिया। अनन्तर परशुरामके विजयी समरथी, पाटण प्रदेशमें पहुँचे और वहाँ भी १२ दिन युद्धकर, पाटणको जीत, जीमूतवाहनके प्रणवप्रस्थपर चढ़ गये। जीमूतवाहनने मारे भयके विना युद्धकेही ब्राह्मणोंका आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार दक्षिणके कई देश और उस दिशाके प्रधान शासकके बन्दी हो जानेकी बात सुन, वहाँके अन्यान्य राजगणोंने अपने-अपने राज्य ब्राह्मणोंको सौंप दिये और स्वयं ब्राह्मणोंके भक्त बन, उनकी सहायता करनेके लिये उक्त ब्राह्मण-मण्डलीके, सेना-समेत, साथ हो लिये।

अब ब्राह्मण-मण्डली पूर्व दिशाकी ओर चलदी। इस समय इसका बल बहुत कुछ बढ़ गया था। साथमें कितनेही राजा और उनकी अनन्त सेनाएँ होनेके कारण, यह जिधर जाती, उधर ही अनायास विजय प्राप्त हो जाती थी। पूर्व प्रदेशके बंग, उपबङ्ग, कलिङ्ग और समंत्र नामक कई देश बड़ेही बलशाली थे। इनके राजाओंके पास अगणय सेना और बड़े पराक्र

क्रमी सामन्त थे। इन लोगोंके राज्योंके किले बड़े सुदृढ़ और सुविशाल थे। अतः इन देशोंमें विजयिनी ब्राह्मण मण्डलीको सहजमें विजय मिलनी कठिन थी। अतएव परशुरामके उन सप्त रथियोंको यहाँ विकट समस्यासे सामना करना पड़ा। पहले ये लोग वङ्गेश्वरसे लगातार २१ दिन तक लड़े, फिर कलिङ्ग देशमें १५ दिन घमासान युद्ध किया। इस प्रकार इन चार देशोंमें विजय प्राप्त करनेमें इन्हें छे मास लग गये।

विजय प्राप्त और पूर्व दिशाओंके २२ राजाओंको बन्दीकर सप्तरथीगण उत्तर दिशाकी ओर गये। यहाँपर क्षत्रिय-राज्योंकी संख्या उँगलियोंपरही गिनने लायक थी। किन्तु पहाड़ी और जलप्रायदेश होनेके कारण उन थोड़ेसे राज्योंपर अधिकार करना बड़ी टेढ़ी खीर था। किन्तु उस समय ब्राह्मणोंकी भाग्य-श्री सीधी थी। अतः यह प्रदेश भी इन्होंने घोर-युद्ध द्वारा छीन लिया।

इस प्रकार भारतकी तीन दिशाओंमें ब्राह्मण-साम्राज्य स्थापित कर, विजयिनी ब्राह्मण-मण्डली अब अपने सरस्वती आश्रम को, आनन्दका नाद करती हुई लौट पड़ी।

कार्त्तवीर्य-संहार।

२४

माहिष्मती नगरीपर आज विधाताकी वक्रदृष्टि पड़ी है। अविवेकी धूमकेतु और महादुष्ट मधुच्छन्दके फेरमें पड़कर महाराज कार्त्तवीर्य्यने अपने पैरोंपर अपने आप कुल्हाड़ी मारी है। जिस समय महावीर परशुरामने उनके पास अत्याचार-परिहारका उपदेश और उनके शरण-ग्रहणका शिक्षा-सन्देश भेजा, यदि उस समय वे सुबुद्धिसे काम और मन्त्रीके परामर्शोंपर कान देते, तो आशा थी, शायद वे उसके अक्षम्य अपराधोंको क्षमा कर देते। पर उसपर तो कुबुद्धिका भूत सवार था! मौत सिरपर मँडरा रही थी! वह क्यों परशुरामसे क्षमा माँगता? अतः अपनी सारी फ़ौज गँवा बैठा। परशुराम और विजयाने उसके सारे सैनिकोंको छाँट-छाँटकर काट डाला और अब वे ढूँढ़-ढूँढ़कर क्षत्रिय-विनाश कर रहे हैं।

प्रजामें त्राहि त्राहि मच गयी। हाहाकारके प्रचारसे सारा नगर भर गया। जो जिधर देखता, प्राणरक्षा करनेके लिये

उधर ही भाग जाता । , सबको अपनी जानोंके लाले पड़े हैं। पुत्र और कलत्र किसीको कुछ परवाह नहीं। सब परशुराम रूप कालकी प्रत्यक्ष कल्पनाकर चीत्कार करते भाग रहे हैं।

धीरे-धीरे यह भगदड़ राजमहलोंमें भी पड़ गयी। स्वामि-भक्तिका दम भरनेवाले, महाराजके पसीना गिरनेवाले स्थानपर खून बहानेके लिये तय्यार सेवकगण, राज-परिवारके लोगोंसे मुँह छिपाकर चल दिये। पर एक व्यक्ति, केवल एक राजाश्रित महापुरुषको इस समय भी महाराजके प्राणोंका मोह था। और वे थे उनके कुल-पुरोहित। जिस समय उन्होंने सुना, कि महा-राजकी सारी सेना शत्रु परशुरामके हाथों नष्ट हो गयी और वे महावीर क्षत्रियोंका विनाश करते हुए महाराजको मारने आ रहे हैं, उस समय वे अपने स्त्री और पुत्रोंकी तनिक भी परवाह न कर स्वामि-यज्ञमें आहुति होनेके लिये, निडरोंकी भाँति राज-महलोंको चल दिये। जाते समय विचारने लगे—"मेरा उद्देश्य तो सिद्ध हो गया। मैंने महाराजको दूधका दूध और पानीका पानी करके दिखा दिया। अब महाराज अनुताप करते हैं, तो अब अनुताप करनेसे होता ही क्या है! सिरपर शत्रु आ धमका! मौतकी पुकार हो चुकी।"

"स्वार्थ भी कैसा भयङ्कर शैतान है! जिन्होंने महाराजका जीवन भर नमक खाया, जो सदा महाराजके सामने अपनेको उनका परम हितैषी साबित करते रहे, वेही इस दुःसमयमें मुँह छिपाकर भाग गये। क्या मैंभी ऐसाही करूँ? नहीं, ऐसा

करनेसे अधर्म होगा। मैंने महाराजका आजीवन अन्न खाया है। अतः महाराज मेरे धर्मपिता हैं !"

पुरोहित इसी प्रकार अपने मनमें विचारोंकी गङ्गा बहाते रास्तेमें जा रहे थे, कि इसी समय उनकी धूमकेतुसे भेंट हो गयी। धूमकेतु उन्हें देखतेही चरणोंपर गिर पड़ा। भीतभाव से बोला—"पुरोहित महाराज ! तुम्हारे चरणोंपर पड़ता हूँ, कृपा कर मेरी रक्षा कीजिये। इस समय मेरा सर्वनाश उपस्थित है।"

पुरोहित—क्या है सेनापति ! इतने क्यों घबरा रहे हो ! पाँव छोड़कर शान्तिके साथ बताओ, मामला क्या है ?

धूमकेतु—"महाराज ! सच-सच कहता हूँ, सुनो; इस समय हमलोगोंका पूरा सर्वनाश उपस्थित है। महावीर परशुराम कालका वेश धारण किये नगरमें घूम रहे हैं। राज्यकी सारी क्षत्रिय-प्रजा और क्षत्रिय-सेना उनके हाथोंसे मारी जा चुकी है। उन्होंने प्रतिज्ञा करली है, कि मैं सारी पृथ्वीको क्षत्रिय-हीन करूँगा। पितृहत्याकी प्रतिहिंसा पूर्ण करनेके लिये आज उन्होंने इस राज्यपर चढ़ाई की है। मैं इस समय युद्ध-क्षेत्रसे भागा आ रहा हूँ। मैंने बहुत देरतक उनसे सेना समेत युद्ध किया, किन्तु उनके कुठारसे सारी सेनाको मरा देख मैं अपने प्राण लेकर भाग आया हूँ। अब पुरोहित महाराज ! आपही मेरी रक्षा कीजिये।

पुरोहित—भाई ! मैं तुम्हें कैसे बचा सकता हूँ ?

धूमकेतु—महाराज ! मैंने परशुरामको, प्रजामेंसे किसी

ब्राह्मणको मारने नहीं देगा। उन्होंने राज्यकी स्त्रियों और ब्राह्मणोंको अभय दे दिया है। क्षत्रियोंको मारनाही उनका व्रत है। तुम ब्राह्मण हो, अतएव मुझे अपने चरणोंमें आश्रय दो। अपना यज्ञोपवीत मुझे पहना दो। जब वे मुझे मारने आयेंगे, तभी मैं उन्हें अपने गलेमें पड़ा यज्ञोपवीत दिखाकर रक्षा पा जाऊँगा।

पुरोहित—तुम तो क्षत्रिय हो। तुम्हारे गलेमें भी तो यज्ञोपवीत होगा। उसेही इस समय खींच-खाँचकर पोशाकसे बाहर निकाल लो। जब परशुराम तुम्हारा नाम पूछें, तब धूमकेतु उपाध्याय कहकर अपना परिचय दे देना।

धूमकेतु—पुरोहितजी! क्षमा करें, मैंने आज तक आप लोगोंसे अपनेको क्षत्रियही बताया। किन्तु मैं वास्तवमें क्षत्रिय नहीं, शूद्र हूँ। इसलिये मेरे पास यज्ञोपवीत नहीं है।

पुरोहित—तुम शूद्र हो! और ब्राह्मणोंका जनेऊ पहनकर प्राणरक्षा करना चाहते हो? महापुरुष परशुरामके नेत्रोंमें धूल झोंकनेकी चेष्टा? खैर, परशुराम शूद्रोंका स्पर्श नहीं करते। तुम सत्य बात कहकरही अपनी जान बचा सकते हो।

धूमकेतु—नहीं भाई! परशुरामने मुझे योद्धाके वेशमें देखा है, वे मुझे किसी तरह न छोड़ेंगे। जनेऊ दो, जनेऊ। कह दूँगा, ब्राह्मण होकरभी मैं दबावमें पड़ा, क्षत्रियका काम करता था।

पुरोहित—अच्छा भाई! जब तुम मेरी शरणमें आये हो, तो तुम्हारी रक्षाका उपाय अवश्य करूँगा।

इतना कहकर पुरोहितने अपने गलेमें पड़े यज्ञोपवीतमेंसे तीन तार धूमकेतुके, गलेमें डाल दिये। धूमकेतुने झट सारे कपड़े उतार डाले और जल्दीसे जनऊको सीधे कन्धेपर डाल लिया।

इसी समय वहाँ क्षत्रिय-विनाश-परायण महावीर परशुराम आ पहुँचे और आतेही बोले—"बताओ, तुम लोग कौन हो?"

धूमकेतु भयसे थर्राता हुआ बोला—"महाराज! मेरे साथी ब्राह्मण और मैं क्षत्रिय······नहीं भूला, मैं ब्राह्मण—वे ब्राह्म··· नहीं मैं ब्राह्मण और वे क्षत्रिय हैं।"

परशुराम—अरे! तुम तो मुझे राज-सेनापति मालूम होते हो, अभी रण-क्षेत्रसे भागे आ रहे हो!

धूमकेतु—नहीं महाराज! आपको भ्रम होगया है। यह देखिये, मैं जनेऊ पहन रहा हूँ।

परशुराम—यह क्या? जनेऊको सीधे कन्धेपर क्यों पहना है? पापी! मेरे साथ भी छल! हाथमें अस्त्र ले और मेरे साथ युद्ध कर।

इतना कहकर परशुरामने अपने हाथका खड्ग उसके आगे फेंक दिया। किन्तु इसी समय वहाँ विप्रिभद्रा और मधुच्छन्द भागते हुए आ पहुँचे। धूमकेतुको सामने देख भद्राने मधुच्छन्दसे कहा—"राजकुमार! यह देखो, आप भय्याको खोजते थे, वे यहीं मिल गये।"

परशुरामने भद्राका व्यस्तता पूर्ण वेश देख धीर-स्वरसे

पूछा—"रमणि! तुम कौन हो? और क्यों ऐसी घबरायी हुई भागी आरही हो?"

भद्राने कहा—"महाशय! मैं महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुनकी राजमहिषी चित्रभद्रा हूँ; मैं... ..क्या आपकाही नाम परशुराम है? दोहाई महाराज! आप मुझ अबलापर अस्त्राघात न करें।"

परशुराम—रमणि! तुम्हारे इस परिचयपर मुझे विश्वास नहीं होता। तुम कार्त्तवीर्य्यार्जुनकी राजमहिषी नहीं हो। आजकल क्षत्रियलोग पापाचारी अवश्य होते हैं, किन्तु क्षत्रियोंकी स्त्रियाँ अब भी इतनी नीच, पतिता और कलङ्किता नहीं हुईं, कि ऐसे विषम विपत्तिके समयमें अपने पतियोंको अकेला छोड़कर भाग जायें। अतएव तुम निश्चयही कोई महाराजकी नटिनी या वेश्या हो। तथापि अभय! तुम स्त्री हो, मैं तुम्हारे ऊपर हाथ नहीं उठाऊँगा।

"आ रे नर-पिशाच सेनापति! मुझसे युद्ध कर।"

मृत्युको सामने खड़ा ललकारता देख, धूमकेतुने योंहीं मरना स्वीकार न किया। परशुराम भी उसे वैसेही नहीं मारते। अतएव उसने इस आशासे, कि शायद मेरे किसी दाँवसे परशुराम मारे जायें, तलवार उठाकर बड़े ज़ोरसे परशुरामपर प्रहार किया, पर परशुरामने उसके वारको बड़ी सफाईसे बचा दिया और अपने परशुके एकही वारसे उसका सिर काट गिराया। प्राण-रक्षाके प्रेमी धूमकेतु सदाके लिये अनाथ भावसे पृथ्वीपर पड़ रहे।

परशुराम



परशुराम-धूमकेतु युद्ध।

" आ रे नरपिशाच सेनापति! मुझसे युद्ध कर।"

[पृष्ठ २६८]

मधुच्छन्द अवाक् और निस्पन्द भावसे खड़ा-खड़ा इस युद्धको देख रहा था। मानो उसकीभी बुद्धि मारी गयी थी। धूमकेतुको मार गिरानेपर परशुरामने उसे भी ललकारा। कहा—"कौशिक-राजकुमार! मैं तुम्हें अच्छी तरहसे जानता हूँ। तुम्हारी पाप-गाथा भी मुझसे छिपी हुई नहीं है। तुम भी क्षत्रिय हो; अतएव मेरे शिकार हो। आओ, युद्ध करो।"

मधुच्छन्द परशुरामके उक्त परशु-समान कठोर वाक्योंको सुनकर बड़ी पसोपेशमें पड़ा! उसने सोचा,—"यह तो बड़ी बेढब समस्या उपस्थित हुई। मैंने तो सोचा था, कि कार्त्तवीर्य्य परशुरामको क्रोधाग्निमें जल मरेंगे और मैं आसानीसे भारत-सम्राट् हो जाऊँगा। भद्रा मेरी पटरानी होगी। किन्तु विधाता-के विधानने तो सब बिगाड़ दिया! अब तो जानके भी लाले पड़ गये! लाओ लड़कर ही जीतनेकी चेष्टा करूं! इनसे सीधे तौरसे बचना तो मुश्किल ही है।" यह सोच उसने भी अस्त्र उठा लिया और प्राणोंका मोह छोड़ बड़ी वीरताके साथ परशु-रामसे लड़ने लगा। किन्तु कहाँ विश्व-विजयी परशुराम और कहाँ महाविलासी-कायर कौशिककुमार! क्षणभर भी उसके सामने न टिक सका और मारा गया।

राज-मार्गको रक्तधारासे प्लावितकर परशुराम अब पुरो-हितका हाथ पकड़कर बोले,—"ब्राह्मण! आओ, निर्भयता पूर्वक मेरे साथ आओ। मैं यहाँ क्षत्रिय-वंश-ध्वन्सकर ब्राह्मण-गौरव-

की प्रतिष्ठा करने आया हूं। चलो, अब इस यज्ञके प्रधान पशु कार्त्तवीर्य्यका संहार करें।"

पुरोहित—नहीं महाराज! यह न होगा, मैं अपने प्रभुकी मृत्यु अपने सामनेही होते न देख सकूंगा। अतएव पहले आप मुझेभी मार डालिये।

परशुराम—महोदय! आप मेरे भाई हैं।! मैं आपको कैसे और क्यों मारूँ? आपने क्या इस नराधम क्षत्रिय-सम्राट् द्वारा कम कष्ट सहे हैं? उसीदिन वह दुष्ट आपको ब्राह्मण और नारायणमें समानता न दिखा सकनेपर प्राण-दण्ड देता था, किन्तु आज आप उसकी हत्या होते नहीं देख सकते! धन्य ब्राह्मण! आपको शत बार धन्य है!

* * * *

महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुन इस समय कहाँ हैं? जो महावीर, दत्तात्रेयके वर-प्रभावसे आजतक संसारमें अजेयके नामसे प्रसिद्ध था। जिसने एक-एककर समस्त पृथ्वीके समस्त वीरोंको पराजितकर, माण्डलीकका मुकुट धारण किया था, जिसने रावणसे बली, सुरजयी राजाको भी कई मास तक अपने यहाँ बन्दी रखा, आज वही पराक्रमशाली सहस्रार्जुन था कार्त्तवीर्य्यार्जुन कहाँ है? आइये, पाठक! आपको उसका आसानीसे पता नहीं चलेगा! क्योंकि वह इस समय ऐसे स्थानपर होगा; जहाँ साधारण लोग तो एक ओर, उसके सगे-सम्बन्धियोंका जाना भी दुश्वार है। किन्तु कवि या लेखकोंको सर्वत्र

गमन करनेकी शक्ति स्वयं परमात्माको ओरसे प्राप्त है। अतएव आप यदि हमारा पल्ला पकड़ें, तो उसके पास आसानीसे पहुँच सकते हैं।

राजमहलके सबसे भीतरका वह कमरा, जहाँ राजरानी, राज-पुत्र और राजमन्त्री, सबका जाना निषिद्ध है, जिसमें साधारण या अपरिचित आदमी आसानीसे नहीं पहुँच सकते, वहीं, सारी खिड़की और दरवाजोंको भीतरसे बन्दकर, जिससे वायु भी भीतर प्रवेश न कर सके, कार्त्तवीर्य्य इस समय अकेला बैठा हुआ है। वह स्थान और यह समय उसने अपने एक गूढ़ प्रश्नकी मीमांसाके लिये निर्वाचित किया है। यहाँ वह आपही प्रश्न करेगा और आपही उसका उत्तर दे मनको सन्तुष्ट करेगा। इस समय उसके मनमें एक प्रश्न उठ रहा है, कि क्या वास्तवमें पाप सत्य है? क्या वास्तवमें ब्रह्महत्या करना महापाप है? हृदयने कहा, हाँ, पाप भी पुण्यका प्रतिवादी एक कर्म है। ब्रह्महत्याको साधारण नरहत्यासे अधिक गुरुता इस लिये प्रदान की गयी, कि ब्राह्मण वर्णके द्वारा संसारका सर्वाधिक उपकार साधित होता है। सृष्टिसे लेकर आज तकका इतिहास उठानेसे यही मालूम होता है, कि संसारमें जितने भी कल्याण हुए, जितने भी मंगल हुए सब ब्राह्मणोंकी कृपासे। वेदान्त विद्या, जिससे संसारके सारे ज्ञानका विकास हुआ है, वह इन्हींकी सृष्टि है। राजाका राज्य और प्रजाका परिवार इनके किये हुए सुकृतों और आशीर्वादोंकेही फलसे अबतक निर्विघ्न रहे हैं। ईश्वरने वर्णविभाग

करते समय, ब्राह्मणोंको ज्ञान, क्षत्रियोंको प्रभुता और वैश्योंको धन दिया। किन्तु ज्ञानकी समता न प्रभुता कर सकती है और न धन। अतएव जो वस्तु सबसे बड़ी है, उसके अधिकारियोंका गौरव भी सबसे महान् है। महान् पुरुषोंकी अकारण हत्या करनेसे संसारमें अज्ञानका प्रवेश होगा और उससे सर्वत्र विश्रृंखलता फैलेगी, अतएव उनका अकारण मारना वास्तवमें महापाप है। किन्तु कार्त्तवीर्य्यकी तो यह प्रतिज्ञा है, कि मैं पापोंको चरम सीमातक पहुँचा दूंगा; संसारमें जितने भी पाप हैं, उन सबको प्रत्यक्ष करके देखूँगा; सो सब उसने कर डाले। ब्रह्मस्व-हरण, ब्रह्महत्या और गो-हत्या आदि सभी पापोंको सम्पूर्ण कर दिया। अब केवल सुरापान रूप पाप बाकी रह गया है। सो अब वह इसेभी निश्चिन्त मनसे करेगा और यही नहीं, मदके मदसे मत्त हो स्त्री-हत्या और पुत्र-हत्या तक कर डाले, तो कोई आश्चर्य्य नहीं!

अब कार्त्तवीर्य्यने सामने मेज़पर रखी सुराकी बोतलको उठा लिया और उसमेंसे गिलासमें सुरा ढाल मौजके साथ पीने लगा। सुरा पीकर बोला—"आह! सुधा-प्रस्रविणी सुरा कैसी आनन्दमयी है। इसके पीतेही मानो प्रसन्नताके फव्वारे छूटने लगते हैं। स्वर्गके नन्दन काननके मधुर दृश्य, इन्द्र-सभाकी अप्सराओंका निर्दोष नाद-नृत्य अनायास आँखोंके आगे प्रत्यक्ष हो जाता है। इसका आश्रय लेकर सारे पाप-पुण्योंका विभेद जाता रहता है।" यह कह कर उसने फिर एक प्याला सुरा पी।

इसी समय वहाँ, न मालूम कैसे, रण-रंगिणीके वेशमें विधवा विजयाने प्रवेश किया। उसे देखतेही कार्त्तवीर्य्य चौंक पड़े। आश्चर्यसे आँखे फाड़ते हुए पूछा—"तुम कौन हो? इस अन्धकारमय और अप्रवेश्य स्थानमें तुम कैसे आयीं?"

विजया—पहचानते नहीं महाराज! मैं विधवा विजया हूं और भिक्षाकी आशासे आपके घर आयी हूं। वह भीख क्या है, सुनिये! मैं भिक्षामें चाहती हूँ, आपके हृदयका गरमागरम खून! आपका सर्वनाश! आपके वंशका विध्वन्स और आपकी सुहागिनी रानियोंका वैधव्य!! आप मुझे पहचानते नहीं? अपनी कीर्ति-पताकाका इतना शीघ्र विस्मरण! मै वही सती नारी हूँ, जिसके पतिके हत्यारे तुम हो। मैं वही भाग्यवती हूँ, जिसके भाग्य-राहु तुम हो! आज मैं दीन, हीन, दुःखित, मलिन, अनाथ, गलित-वसना और रूक्षकेशीके रूपमें तुम्हारे सामने भिखारिणी बनकर आयी हूँ। राजन्! लाओ, प्रतिहिंसाकी भीख! लाओ मेरी भीख!!

यह सुनतेही कार्त्तवीर्य्यका मस्तिष्क एकदम चकरा गया और वह पृथ्वीपर बेहोश होकर गिर पड़ा। उसी बेहोशीकी हालतमें सहसा उसे दिखाई दिया, कि सिरसे पैरतक, घोर काले कपड़ेसे अपने सारे शरीरको ढके, एक मूर्त्ति उसके सामने आयी। उस मूर्त्तिका भाव बड़ा भीषण और रौद्र-पूर्ण था। उसके दोनों नेत्र क्रोधसे उद्दीप्त और आगकी मानिन्द लाल-लाल हो रहे थे। उसके शरीरसे आगकी लपटें निकल रही थीं, जिनसे

उसका सारा शरीर जला जाता था। अतः उसी बेहोशीकी हालतमें कार्त्तवीर्य्य उस प्रेत-मूर्त्तिसे बोला—"हे अनल रूपी अनल-देवता! तुम कौन हो? ऐं! ये तो महर्षि जमदग्नि हैं! क्यों महाराज! आप मेरी ओर ऐसी तीखी नज़रसे क्यों देख रहे हैं? ओह! छाती खोलकर, दोनों हाथोंको खूनसे रंगकर, मुझे यह क्या दिखा रहे हैं? क्या यह ब्रह्महत्याका दृश्य है? महापापका दृश्य है? मेरी कीर्त्ति है? इसीसे शायद यह पापकी अग्नि मेरी ओर अपनी लोल जिह्वाको लपलपाकर दौड़ी आ रही है!..जाओ! जमदग्नि! विस्मृतिके अन्धकारमें मिल जाओ! मैं अपने भयसे सूखे धूलिमय कण्ठको सुरासे सींचूँगा और अपनी इस घोर पिपासाको मिटाऊँगा।"

यह कहकर जैसेही वह उठा, वैसेही खूनसे नहाये, हाथमें कठोर कुठार लिये, भीषण मूर्त्ति परशुरामने उस कमरेमें प्रवेश किया। आतेही वे अपने कठोर कण्ठसे बोले—"महाराज! आज आपकी आयु पूर्ण हो गयी! याद करो उस दिनको, याद करो उस तपोवन और उस कीर्त्ति-क्षेत्रको जब आपने अपने शिर कर्णोंसे मेरी क्षत्रिय-वधवाली प्रतिज्ञाको सुना था, आज मैं अपनी उसी प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके लिये आया हूं। मैं जमदग्निका पुत्र परशुराम हूँ और आप मेरे पितृहन्ता, ब्रह्मघाती, ब्रह्मस्वापहारी डाकू हैं। आपके जीवन-व्यापी समस्त पापकर्मोंके परिणाम स्वरूप मृत्यु-रूपमें आज मैं आपके पास आया हूँ। अब आत्मरक्षार्थ अस्त्र-धारण और मरनेके लिये मृत्युका आवाहन कीजिये। आपने

'जिसे ऋण दिया था, उसके पुत्रसे उसका परिशोध कीजिये। अब सैन्य-सामन्त तथा सेवक गण सहायता करने न आयेंगे, क्यों कि प्रजामेंसे जितने भी शस्त्र-धारी क्षत्रिय थे, सब एक-एक करके मारे जा चुके हैं।"

कालकी सजीव मूर्त्तिको सामने खड़ा देखकर भी कार्त्त-वीर्य्य पागलोंकी तरह बकने लगा। बोला—"क्या तू उसी जंगली ब्राह्मणका पागल पुत्र है, जिसने ब्राह्मणोंको संसारमें पूजनीय प्रसिद्ध करनेका पाप किया था? क्या तू युद्धके साजसे सजकर मुझसे लड़ने आया है? भाग जा हिरनके छोकरे! मृगघाती सिंहके मुखमेंसे निकलकर भाग जा। ओह! मैंने तो सोचा था, कि अब ब्रह्महत्या न करूँगा, किन्तु इतनी निर्भीकता, इतनी दाम्भिकताको चुपचाप देखते रहना, कभी वीर-धर्म नहीं है। क्यो रे छोकरे! तूने इतनी निर्भयता कहाँसे सीखी? कार्त्तवीर्य्यार्जुनके राज-अन्तःपुरमें चोरोंकी तरह प्रवेश? कैसा विकट साहस है! सशस्त्र योद्धाका वेश और अक्षुण्ण शरीरसे घुस आकर भी इतनी उद्दण्डता? इतना भारी पागलपन? जा भाग जा! तू मेरे साथ युद्ध करने योग्य नहीं है। यदि लड़नेकी हौंस है, तो किसी सामान्य सिपाहीसे लड़कर उसे पूरा करले। मृगेन्द्रगण मनमें शत्रु-भाव रख, हरिण-शिशुसे लड़ना नहीं चाहते। जा, जा, दूर जा।"

परशुराम—कार्य्यके डाकू! मनके चोर और बकवादके महावीर! मैं कार्त्तवीर्य नहीं हूं। मेरे पास वाक्योंका

अस्त्र और कपटका कवच नहीं है। मेरा परिचय तू इस झरोखेसे बाहरका दृश्य देखनेसेही पा जायेगा। देख, सारी राजधानी उजाड़ पड़ी है। सर्वत्र महाश्मशानका दृश्य व्याप रहा है। यह जो सामने पर्वतसा दिखाई दे रहा है, यह क्षत्रियोंके मृत शरीर हैं। सामने जो नदी बह रही है, यह सुजला नदी नहीं, वरन् क्षत्रियोंके शरीरसे निकली रक्तधारा है। प्रकृतिने आज राक्षसी-वेश धारण किया है। यह समस्त क्षत्रियोंका रक्त पीकर ही शान्त होगी। तू भी अपनी मौतके लिये सम्हल।

कार्त्तवीर्य्य—जा लड़के! छोटे मुँहसे बड़ी बात मत कह! मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि तू अपनी पितृशोक ज्वालाको अपने शरीरके रक्तसे सींचना चाहता है। मैं काठका टुकड़ा या जङ्गली पेड़ नहीं हूँ, जो तेरे इस कुल्हाड़ेसे कटकर गिर पड़ूँगा।

परशुराम—वृथा बकवाद न कर रे मूढ! तू काठ है या तिनका, इसका निर्णय शस्त्र द्वारा होगा। आ, शस्त्र लेकर मुझसे युद्धकर या आत्मरक्षाके लिये भागजा।

उक्त बातको सुनकर कार्त्तवीर्य्य चिढ़ उठा और कमरसे खड्ग निकालकर महलसे बाहर, उस स्थानपर आया, जहाँ परशुरामने नर्मदाके तटपर समस्त क्षत्रियोंके रक्तकी दूसरी नदी बहा दी थी। वहाँ आतेही वह अपने शत्रु परशुरामसे भिड़ गया।

परशुराम महावीर अवश्य थे, पर कार्त्तवीर्य्य भी कम न था। एक दिन महात्मा दत्तात्रेयके वर-प्रभावसे उसने अपने ही भुजबल द्वारा सारे संसारको परास्त किया था। अतएव

समान बल होनेके कारण दोनोंका युद्ध देखने लायक था। परशुरामपर इस समय वह बड़े विकट दाँव-पेंच खेल रहा था। और परशुराम भी बडी बुद्धिमानी और चतुरतासे उसके आक्रमणोंको बचाकर अपना वार करते थे। एकबार कार्त्तवीर्य्यने महावीर परशुरामके मस्तकपर इस ज़ोरसे आघात किया, कि यदि उस समय वे न हो कर, कोई दूसरा होता, तो फ़ौरन वहीं गिर पड़ता, पर परशुराम उस आघातको सहजमें ही सह गये और क्रोधमें आकर उसके सिरमें इस जोरसे कुल्हाड़ा मारा, कि कार्त्तवीर्य्यका सिर धड़से कटकर अलग जा गिरा वह निष्प्राण हो कर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

शत्रुको मारकर परशुरामने कहा—"जाओ पाप-मुक्त हो गये और मैंभी ऋणमुक्त हो गया।"

परशुराम अभी अपना वाक्य पूरा न कर पाये थे, कि कार्त्तवीर्य्यका एकमात्र पुत्र, पितृभक्त अजित, वीर-वेशसे सजा हुआ उस स्थानपर आ पहुँचा और सामने ही पिताके मृत शरीरको पड़ा देख रुद्ध कण्ठसे बोला—"जाओ पिता! क्षत्रिय-कुलके मध्याह्न सूर्य्य! यदि दो पहरकोही अस्ताचल जाना चाहते हो, तो जाओ। किन्तु सुनो, स्वर्गमें जातेही मैं दुःसह ब्राह्मण-हत्याका पाप परमात्माके चरणोंमें समर्पितकर आपके पाप-भारको हलका करनेकी चेष्टा करूंगा। पिताके लिये पुत्रका कर्त्तव्य यथा साध्य पूरा करूंगा।"

इतना कह उसने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया, अनन्तर

कुछ दूरपर परशुरामको खड़ा देख बोला—"आप कौन हैं? आपके हाथमें अस्त्र है; पर वेश ब्राह्मणोंकासा है! आपही मेरे पितृहन्ता हैं न? खैर, आप चाहे जो हों, पर आप देखनेसे ब्राह्मण प्रतीत होते हैं, अतएव प्रणाम।"

परशुरामने बड़े मधुर शब्दोंमें उसे आशीर्वाद देते हुए पूछा "तुम कौन हो?"

बालकने कहा—"मैं महाराज कार्त्तवीर्य्यार्जुनका पुत्र अजित कुमार हूँ।"

परशुराम—और मैं क्षत्रिय कुलान्तक परशुराम हूँ। तुम मेरे शत्रु-पुत्र हो, अतएव वध्य हो। लो, मरनेके लिये तय्यार हो जाओ। तुम्हारी अवस्था शायद बारह वर्षसे अधिक न होगी। खैर, आओ, युद्ध करो।

अजितकुमार—मैं आपके शत्रुका पुत्र अवश्य हूँ, पर शत्रु नहीं हूँ। हाँ, आप मेरे पितृहन्ता होनेके कारण परम शत्रु हैं। मैं मौतसे डरता नहीं, किन्तु आप ब्राह्मण हैं। आपने मेरे प्रणामके उत्तरमें कहा कि तेरी जय हो, फिर भी आप मेरी हत्या करनेके लिये तय्यार हैं। तब क्या ब्राह्मण-वाक्य मिथ्या होंगे?"

परशुराम—नहीं बालक! ब्राह्मण-वाक्य कभी मिथ्या न होंगे। तुम युद्ध करो, और युद्ध द्वारा अपने महापापी पिताके औरससे जन्मे इस अपवित्र शरीरको त्याग दो। परकालमें तुम्हारी अवश्य जय होगी।

अजित—परकालमें जय अवश्य होगी, किन्तु इस कालके लिये भी मैं आपसे सामान्य जयकी प्रार्थना करता हूँ। कृपाकर उसकी भिक्षा दीजिये।

परशुराम—कैसी जय चाहते हो?

अजित—मेरा एक सामान्य दान ग्रहण कीजिये।

परशुराम—तुम आदर्श क्षत्रिय कार्त्तवीर्य्यार्जुनके पुत्र हो, अतः तुम्हारा दान लेनेमें किसी तरहका भी दोष नहीं है। बताओ, किस वस्तुका दान करोगे?

अजित—अपने पिताकी मृत्युके बाद मैं ही तो पितृ राज्यका अधिकारी हूँ?

परशुराम—हाँ, तुम्हीं अधिकारी हो।

अजित—तब मैं आपके श्रीचरणोंमें अपना भारत-राज्य अर्पित करता हूँ। कृपाकर ग्रहण कीजिये।

परशुराम—यह दान किस लिये कर रहे हो?

अजित—मेरे पिताने एक समय ब्रह्मस्वापहरण किया था। मैं अपना सर्वस्व ब्राह्मणके चरणोंमें समर्पितकर उसका प्रायश्चित्त करता हूँ। दूसरा दान मैं आपको बिना युद्धके जीवनदान करूँगा। क्योंकि पिताजीने ब्रह्महत्याका महापाप भी किया था। मैं ब्राह्मणके चरणोंमें जीवनदानकर उस पापका भी प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ।

परशुराम—धन्य! आदर्श क्षत्रिय, पितृभक्त, पुत्र धन्य! तुम वास्तवमें स्वर्ग दुर्लभ पुत्र हो। तुम्हारा दान ग्रहण करनेमें

मेरा गौरव है। वत्स, अजितकुमार ! क्षत्रिय-कुल ध्वन्स करना मेरे जीवनका व्रत है, इसीसे मेरा हृदय दया और स्नेहसे शून्य है। अन्यथा तुम्हें गोदमें ले, जगत् समाजको दिखाता, कि अपवित्र क्षत्रिय कुलकी सुपवित्र विजय-पताका तुम्हीं हो। किन्तु वत्स ! मैंने जीवनकी सार-व्रत-स्वरूपा साधनाके लिये स्नेह, दया, प्रेम और भक्ति अर्थात् मानव-हृदयकी समस्त कोमल वृत्तियोंको भागीरथीके तटपर, महाश्मशानमें अपने पिताकी चितामें जला दिया है। वत्स ! आशीर्वाद देता हू, कि तुम स्वर्गमें अक्षय पदको प्राप्त करो। आओ, कठिनके आघातसे कोमलताका विनाश करदूँ। बस, तुम्हारा प्रायश्चित्त पूर्ण हो जायेगा।

बालक प्रसन्न हृदयसे मृत्युके लिये तय्यार हो गया। यह देख परशुरामने तत्काल उसका भी सिर काट लिया।

अजित कुमारकी मृत्युका सवाद राजमहलोंमें वसुमतीके पास भी पहुँचा। उसे सुन वसुमती शोक-विह्वला हो पगलीकी तरह परशुरामके पास दौड़ आयी और बोली—"हे, कालान्तक यम ! हूँ मैं—महाराज कार्त्तवीर्य्यकी राजपुरीका शेष जीवित प्राणी मैं हूँ। यदि आप मुझे मेरे स्वर्गीय पति-पुत्रकी सहगामिनी कर सकें, तो जानूँगी, कि आपके कुठारका अग्रभाग कितना तीक्ष्ण है। आओ बेटा अजित ! तुम आज बड़ी बेखबरीसे सोये हुए हो। क्या पाषाणोंकी कठोर गोदसे भूमितल कोमल है ? तुम्हें यहाँ किसने सुलाया ? (परशुरामको देख) तुमने ! हे कालान्तक यम ! तुम कौन हो ?"

परशुराम—"मैं परशुराम।"

वसुमती मेघ गम्भीर स्वरसे बोली—"मैंहू महाराज कार्त्त-वीर्य्यार्जुनकी राजमहिषी। मैं आपको अब पहचानी। आप साक्षात् भगवानके अवतार परशुराम हैं। अच्छा, महाराज! जब आपने मेरे सुवर्णके-साम्राज्यको श्मशान बनाया है, तब कृपाकर मुझे भी मेरे पतिके समीप भेजनेका कष्ट उठाइये।"

परशुरामने कहा—"तथास्तु।"

उनके इतना कहतेही, उसी स्थानपर तीक्ष्ण अग्नि भभक उठी और बातकी बातमें मृत कार्त्तवीर्य, अजितकुमार और सती वसुमतीके शरीरोंको स्वर्गमें लेगयी।

समीपमें खड़ी विजयाने घोर शब्दसे अट्टहास्य किया और "प्रतिहिंसा पूर्ण हुई" कह आप भी उसी आगमें कूद पड़ी। परशुरामने उससे कुछ नहीं कहा।

इस प्रकार अपने उद्देश्यको पूर्ण और पृथ्वीको नि:क्षत्रिय हुआ देख, परशुराम शान्त मनसे सरस्वती आश्रममें लौट आये।

उपसंहार ।

२५

आज सरस्वती आश्रममें हम फिर वही दृश्य देख रहे हैं, जो पहले ब्राह्मण-सभाके अधिवेशनके दिन देखनेमें आया था। आश्रमके अत्यन्त विस्तृत मैदानमें, ज़मीनपर ही लाखों ब्राह्मण प्रसन्न मुख और शान्त मनसे बैठे हुए हैं। उनके आगे भारतके समस्त राजगण सादी पोशाक और अतीव नम्रभाव धारण किये विराजमान हैं। सबके मध्यमें एक चन्दनका बना बहुतही ऊंचा सिंहासन रखा है, जिसपर भगवान् परशुराम विराजमान हैं। पासही उनके भाई और विजयाके चारो पुत्र हाथमें चंवर, छत्र और पताकादि धारण किये खड़े हैं। सामनेकी ओर अमरावतीसे आये कितनेही देवगण विराजमान हैं।

अब भगवान् परशुराम, अपने सिंहासनके ऊपरी भागपर खड़े हो मेघ-गम्भीर स्वरसे बोले—"सज्जनो! आज आपको यह सुनाते हुए मुझे परम हर्ष हो रहा है, कि मैं अपने जीवनका कर्त्तव्य इस थोड़ीसी अवस्थामें ही सम्पूर्ण कर चुका। हिमालय शिखरपर समस्त धर्मोंके साररूप ब्राह्मणधर्म, सर्व विद्या स्वरूपा

विजयिनी ब्रह्मविद्या विजया, तथा उसके पुत्र दर्शनादिकी गौरव-प्रतिष्ठा हो चुकी। संसारने एक मत होकर उक्त शक्तित्रयकी श्रेष्ठता स्वीकार कर ली। मैं ब्राह्मण वर्ण और ब्राह्मणधर्मकी ग्लानि करनेवाले धनमद-मत्त क्षत्रियोंका सत्तानाश कर चुका। क्षात्रधर्ममें जो-जो विकार घर कर बैठे थे, उन सबका उन्मूलन हो गया और आज भारत-साम्राज्य सात्विकी ब्राह्मणों द्वारा शासित होरहा है। किन्तु वास्तवमें ब्राह्मणगण इस कामके योग्य नहीं हैं। वे धर्माचार्य, शास्त्राचार्य्य तथा तपाचार्य्य होनेमें ही अपना गौरव समझते हैं। अतएव आज मैं यहाँ भारत-साम्राज्यको पुनः क्षत्रिय राजाओंके हाथमें अर्पित करता हूँ। ये लोग सदा साम्य भावका गौरव रखते हुए, समस्त वर्णोंका प्रति पालन करेंगे। इन्हें याद रखना चाहिये, कि राष्ट्रके राज-नीतिरूप शरीरका आत्मा राजा है। क्योंकि उस शरीरका कार्य्य-संचालन उसीके द्वारा होता है। वह राजा चाहे परम स्वतन्त्र हो और चाहे राष्ट्रके प्रतिनिधियोंका बनाया हुआ हो, प्रत्येक दशामेंही वह जबतक अपने उस पदपर स्थित रहेगा, उसका दर्जा साधारण जनोंसे श्रेष्ठ रहेगा। यदि ऐसा न हो, तो राष्ट्रमें विप्लव मच जायेगा। किन्तु इस श्रेष्ठ-ताके यह माने नहीं, कि वह इसकी बदौलत उच्छृङ्खलताको अपना बैठे। यदि ऐसा करेगा, तो वह अपने पदपर कभी नहीं रह सकता। उसके जो कर्त्तव्य हैं, उनका उसे भलीभाँति पालन करना चाहिये। उनके पालनमें कभी असावधानता

नहीं करनी चाहिये। प्रजाने उसके हाथोंमें जो अधिकार दे दिये हैं, उसका वह न्यायपूर्वक उपयोग करे। यदि वह उन अधिकारोंका दुरुपयोग करेगा, तो उसकी सारी शक्ति क्षीण हो जायेगी और एक समय ऐसा आयेगा, कि सारा राष्ट्र उसका पतन करनेके लिये तय्यार हो जायेगा। क्योंकि 'राजाके सब अधिकार राज्य वासियोंसेही प्राप्त हैं और वे उसे इसी लिये दिये गये हैं, कि वह उनका न्याय-पूर्वक उपयोग करता रहे। जिन क्षत्रियोंको आज मैं देशका शासन-भार दे रहा हूँ, वे राज्यशासनके वास्तविक उद्देश्यको समझते हैं। इनका शिक्षण मेरेही द्वारा हुआ है। ये भारतीय वर्णाश्रम धर्मके वास्तविक महत्वको भली भाँति जानते हैं। अतएव इनके हाथमें देशका शासन-सूत्र जाते देख आपको अवश्य प्रसन्नता होगी"

इतना कह परशुरामने विजयाके न्याय, दर्शन, और विज्ञानादि चारों पुत्रोंको बुलाया और उन्हें वहीं चारों दिशाओंका राज्य दे दिया।

उपस्थित जनता उनके इस निःस्वार्थ भाव और सुव्यवस्थासे प्रसन्न होती हुई, रह-रहकर उनका जय-जयकार मनाने लगी।

बस, यहींसे परशुरामने सरस्वती आश्रमको छोड़ स्यमन्तक पर्वतका आश्रय ग्रहण किया। यहाँ वे निश्चिन्त मनसे परमात्मसाधना करने लगे।

* * * *

परशुरामके लोकोत्तर कार्य्योंका वर्णन समाप्त हो गया। वे अपने महान् कार्य्योंकी समाप्तिकर, जो संसार त्यागी हुए; कि फिर उन्होंने लोकालयका दर्शन नहीं किया। त्रेताके मध्य युगमें एकबार वे जनकपुरीमें अवश्य आये थे। उस समय मिथिलेश महाराज जनककी राज-पुत्री जगन्मान्या जानकीके लिये धनुर्यज्ञ हो रहा था। किन्तु वहाँ क्षत्रिय-शक्तिमें भगवान्की विभूतिको देख, उन्होंने अपना परशु त्यागकर 'रामकी महत्ता" स्वीकार कर ली।

अबसे जो वे ब्रह्म-चिन्तन और योगाभ्यासमें लगे, कि फिर कभी देखेही न गये। उन्होंने योगाभ्यास द्वारा सहस्रों वर्षोंकी आयु प्राप्त की थी। द्वापरमें इन्हींका शिष्यत्व स्वीकारकर महावीर भीष्म संसारमें अजेय कहलाये। भगवान् कृष्ण भी समय-समयपर इनसे परामर्श लेने जाया करते थे। किन्तु इन अवसरोंके सिवा पुराणोंमें अन्य किसी अवसरपर उनका जिक्र नहीं आया।

* * * *

सुकृति, पुण्यात्मा और धर्मप्राण व्यक्तियोंकोही स्वर्ग प्राप्ति होती है यही नहीं, जिनका जीवन आदर्श, चरित्र लोकोत्तर और कर्म अलौकिक होते हैं, उनका स्वागत करनेके लिये स्वयं देवगण पुष्पक विमानोंपर चढ़कर उपस्थित हुआ करते हैं। उनका आदर देवराज इन्द्र और प्रजापति ब्रह्मा तकको करना पड़ता है। देवर्षि नारद और देवकुमार सनक-

सनन्दादि उनका सम्मान करनेमें अपनेको गौरव-शाली समझते हैं।

जगत्‌देव, महावीर और पुण्यरूप परशुरामकी माता रमणी-श्रेष्ठा रेणुकाने अपने जीवन व्यापी पुण्यों द्वारा समस्त महिला-समाज, समस्त सती-मण्डलमें अग्रासन प्राप्त कर लिया था। किन्तु अन्तिम जीवनमें कुटिल कार्त्तवीर्य्यरूप परपुरुषका अज्ञान-से दर्शन करनेसे उन्होंने अपने उस पार्थिव शरीरको अपवित्र माना। इसीसे उन्होंने पतिद्वारा प्रायश्चित्त व्यवस्था ग्रहणकर पुण्यरूप परशुरामके हाथोंसे जीवन त्याग दिया। इससे उनका शरीर-जन्य-दोष जाता रहा और पुत्र परशुराम द्वारा प्राप्त, पति जमदग्नि द्वारा दत्त, वर-प्रभावसे वे सतीसी सती और सावित्रीसी पवित्रा हो गयीं।

महा पुरुषकी जन्मदात्री, अद्वितीय महर्षि जमदग्निकी महिमा मयी भार्य्या और ब्रह्मविद्या स्वरूपिणी विजया द्वारा सेविता होनेके कारण, स्वर्ग प्रयाण करनेके समय, स्वर्गकी समस्त प्रसिद्ध देवियाँ उनका स्वागत-सम्मान करने भूलोक आयी। एवं विविध पूजाओं द्वारा उन्हें पूजितकर छैमास बराबर उन्हें स्वर्गा-नन्द प्रदान करती रहीं।

इसी बीच उन्हें सुनन्दा नामक देवकन्या द्वारा ज्ञात हुआ, कि उनके पति, परमेश्वर, पूज्य जमदग्नि स्वर्ग आये हैं। तपो-वन-निवासाभ्यासी होनेके कारण स्वर्गके समस्त सुरगणोंने कुछ दिनोंके लिये उन्हें नन्दनवनमें निवास दिया है।

परशुराम



स्वर्गमें पतिदर्शन।

"उन्होंने दूरसे देखा,—देववंती, उनके पति नन्दन काननकी कुसुम-कुंजके आगे एक पाषाण-शिलापर ध्यानस्थ हुए बैठे हैं।

[पृष्ठ २८०]

सुनतेही रेणुका समस्त आनन्द-प्रमोदोंको भूल, उनसे मिलनेके लिये व्याकुल हो उठीं। उन्होंने देवरानी इन्द्राणीके पास जाकर प्रार्थना की—"देवि! सुना है। मेरे पूज्य पतिदेव, महर्षि जमदग्नि नन्दन काननमें आये हैं। क्या कृपाकर आप मुझे वहाँ पहुँचवानेकी व्यवस्था कर सकेंगी?" यह सुन देवराज-रानीने तत्काल अपनी सेविका, दो अप्सराओंको बुलाकर, प्रसन्नतापूर्वक देवी रेणुकाको नन्दन काननके द्वारतक पहुँचा आनेका आदेश दिया।

रेणुका नन्दन काननके द्वारपर पहुँच गयीं। कुछेक अग्रसर हो, उन्होंने दूरसे देखा,—"उनके देववेशी, पति नन्दन-काननकी कुसुम-कुञ्जके आगे एक पाषाण-शिलापर ध्यानस्थ हुए बैठे हैं।"

रेणुका उन्हें देखतेही प्रसन्नतासे प्रफुल्लित हो, दौड़ी-दौड़ी जाकर उनके चरणोंपर गिर पड़ीं। जमदग्निकी समाधि टूटी। सज्ञान होकर देखा, उनके चरणोंपर उनकी परम पतिव्रता पत्नी रेणुका पड़ी हैं। जमदग्निने बड़े आदरसे उन्हें उठाया और सप्रेम कुशल-मङ्गल पूछकर अपने समीप निवास दिया।

* *

एक दिन देवर्षि नारद महर्षि जमदग्निके पास नन्दन काननमें आये और विनय भरे स्वरमें कहा—"देवराजने मुझे आज्ञा दी है, कि मैं आपको सप्तलोक स्वर्गके समस्त स्थानोंका दर्शन कराऊँ।"

जमदग्नि स्वयं स्वर्गीय दृश्योंको देखनेके लिये लालायित थे। उन्हें सुकर्मी और कुकर्मियोंका अन्तिम परिणाम प्रत्यक्ष देखना था। अतएव वे उसी क्षण देवी रेणुका-सहित देवर्षिके साथ चल दिये। वहाँ उन्होंने पहले समस्त स्वर्गीय दृश्योंको देखा, एक स्थानपर उन्हें, अपनी पुण्यवती पत्नीके साथ अपूर्व वेशसे सज्जित सम्राट् कार्त्तवीर्य्य और उनके पुत्र अजितकुमार दिव्य कान्ति विकीर्ण करते दिखायी दिये। उससे कुछ दूर देवोपम देवदत्त और विद्या विजया परम सुख-भोग करते देख पड़े। न्यायाधिकरणके पास मधुच्छन्द धूमकेतु और पापिष्ठा विदिभद्रा नरक-कष्ट भोगते देख पड़े। उन सब स्थानोंको देख, अन्तमें उनके मनमें भगवान् विष्णुका विष्णुलोक देखनेकी अभिलाषा हुई। देवर्षि उन्हें वहाँ भी ले गये। भगवान् विष्णुके पार्षदोंने ऋषि-दम्पतिका बड़े उत्साहसे स्वागत किया और वे आदर पूर्वक भगवान् विष्णुके समीप पहुँचा दिये गये। भगवान् विष्णुके दर्शन और उस लोकमें सज्जन समागम होनेसे उन्होंने देवर्षिसे अब यहीं रहनेके लिये इच्छा प्रकट की। नारद उनसे विदा ले, इन्द्रलोक लौट आये एवं भगवान् विष्णुने इस ऋषिदम्पतीके सदा सर्वदा रहनेके लिये वहीं व्यवस्था करदी।

समाप्त।

भारतका सर्वश्रेष्ठ वीर

महाराणा प्रतापसिंह

रंग विरंगे ७ चित्रोंसे सुशोभित।

हिन्दूकुल सूर्य्य, महापराक्रमशाली वीर शिरोमणि स्वतन्त्रता नामक मन्त्रके उपासक प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रतापसिंहको कौन नहीं जानता ? इस ग्रन्थमें उन्हीं महाराणा प्रतापसिंहके शौर्य्य वीर्य्य का पूरा वृतान्त लिखा गया है। यदि आपको भाई भाईकी लड़ाईका नतीजा देखना हो; राजपूत कुल-पुरोहितका राजवंशकी रक्षाके लिये प्राण विसर्जित करनेका रोमांचकारी हाल पढ़ना हो, राणा प्रतापसिंहका वन और पर्वतोंमें रहकर स्वदेश रक्षा करनेका हाल



जानना हो तो इस ग्रन्थको मंगाकर पढ़िये। यह ग्रन्थ प्रत्येक देशाभिमानीको पढ़ना चाहिये। मूल्य १।) रेशमी जिल्द १॥)

यूरोपका सर्वश्रेष्ठ वीर

नैपोलियन बोनापार्ट

ऐसा कौन पढ़ा लिखा मनुष्य होगा जो यूरोपके साक्षात रण-देवता सर्वमान्य महावीर नैपोलियन बोनापार्टका नाम न जानता हो? इसकी



वीरताका दबदबा उस समय सारे यूरोपमें था। इस महान पराक्रमशाली वीरने जर्मनी प्रशिया आस्ट्रिया, रूस, इटाली आदि महान राज्योंको जीत, अपनी अपूर्व प्रतिभाका परिचय दिया था। इसके डरसे यूरोपके अत्याचारी राष्ट्र थर-थर कांपा करते थे। यदि आप इस महान वीरका सम्पूर्ण जीवन वृत्तान्त जानना चाहते हों तो शीघ्रही इस ग्रन्थको मंगाकर पढ़िये। इस ग्रन्थमें नैपोलियन बोनापार्टका पूरा वृत्तान्त बड़ीही रोचक और मधुर भाषामें लिखा गया है साथही ११ मन हरण चित्र लगा ग्रन्थकी शोभा हद दर्जेतक पहुंचा देनेकी चेष्टा की गई है। इसकी उत्तमता इसीसे जानी जा सकती है कि, अल्पही समयमें इसके दो संस्करण बिक चुके हैं। मूल्य ४) रेशमी जिल्द ४॥)

जासूसी उपन्यासोंमे सर्वश्रेष्ठ

विचित्र जाल।

२ रंग बिरंगे चित्रोंसे सुशोभित।

यह एक घटना पूर्ण जासूसी उपन्यास है। इसमें जालसाजोंकी जालसाजी, धूर्तोंकी धूर्तताई, जासूसोंकी चालाकी बड़ी खूबीके साथ दिखाई गई है। इसे पढ़ कभी आप क्रोधसे कांपने लग जावेंगे, कभी खिल-खिलाकर हंस पड़ेंगे कभी रोने लग जावेंगे और कभी ताज्जुबमें पड़ जावेंगे। इस पुस्तकको पढ़कर कोई भी मनुष्य जालसाजोंके चंगुलमें नहीं फंस सकता। पुस्तककी भाषा रोचक और किस्सा बड़ा दिलचस्प है एक बार हाथमें लेकर छोड़नेका मन नहीं करता। मूल्य ॥)



राष्ट्रीय झंकार

इस पुस्तकको यदि "राष्ट्रीय काव्यवाटिका" कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। जिस तरह पुष्पवाटिकाके सुन्दर फूलोंकी सुगन्धी



मनुष्यका चित्त हरा-भरा प्रसन्न और शान्त बना देती है, उसी तरह इस राष्ट्रीय पुष्पवाटिकाके मनोहर फूलोंकी जैसी मातृ वन्दना, नमो हिन्दुस्थान, हिन्दोस्थां हमारा, चलाओ चरखा, वन्देमातरम्, जेल यात्रा आदिकी अपूर्व सुगन्धी भी भारतवासियोंके मुरझाए हुए दिलोंको हरा-भरा और प्रसन्न बना देती है। इसमें के राष्ट्रीय गायन पढ़कर मनुष्यके हृदयमें देशभक्ति जागृत होती है और स्वतन्त्रताका सञ्चार होता है इस पुस्तकका प्रत्येक पद मुर्दा दिलोंमें जान डालनेवाला है यह पुस्तक प्रत्येक भारतवासीको संग्रह करनी चाहिये। मूल्य भी बहुतही कम रखा गया है। याने एक एकसौ पन्नोंके दो भागों का केवल १) रेशमी जिल्द १॥)

नाट्य-ग्रन्थमालाका प्रथम ग्रन्थ

भक्त-चन्द्रहास

यह नाटक पौराणिक, राजनीतिक, धार्मिक और समाजिक घटनाओंसे भरा हुआ है। जिस समय रंगमञ्च पर अभिनीत होता है उससमय जनता चित्रवत हो जाती है। इसकी प्रशंसामें केवल इतनाही लिखना यथेष्ट होगा कि, कलकत्तेकी सुप्रसिद्ध हिन्दी-नाट्य-समिति पांच पांच हजार जनताकी उपस्थितिमें इसे दो बार अभिनीत कर ख्याति प्राप्त कर चुकी है, तथा इसकी प्रशंसा सभी विद्वानोंने मुक्तकंठसे की है। इसके लेखक हैं नाट्य प्रेमियोंके सुपरिचित पाप-परिणाम, सती चिन्ता, कृष्ण-सुदामा आदिके लेखक, नाट्यकलामें निपुण, बाबू जमुनादासजी मेहरा। लेखकने इसकी घटनाओंको सजानेमें चतुर जौहरीका काम किया है, जिसे देखकर वाह वाह करनी पड़ती है। इस नाटककी बहुतही थोड़ी प्रतियां बची हैं शीघ्र मंगाइये नहीं तो दूसरे संस्करणकी बाट जोहनी पड़ेगी मूल्य १) रंगीन १॥) रेशमी जिल्द १॥)



नाट्य-ग्रन्थमाला

सम्राट परीक्षित

तीसरा ग्रन्थ।

५ बहुरंगे तथा एक रंगे चित्रोंसे सुशोभित।



इस नाटकमें सम्राट् परीक्षितके जन्म होनेका कारण और जन्म होनेके समयकी घटना बड़े ही आकर्षक और हृदय विदारक दृश्य, कलियुगका धर्म और पृथ्वीको सताना, राजा परीक्षितका उनकी सहायता कर कलियुगके साथ घोर युद्ध करना, कलियुगका हार मानकर राजाकी आज्ञासे स्वर्ण जुआ तथा वेश्याके गृहमें निवास करना। कलियुगके प्रभाव से राजाकी बुद्धि पलट जाना, शमीक ऋषिके गलेमें मरा सर्प डालना, शृंगी ऋषिका क्रोधित होकर राजाको शाप देना, तक्षक सर्प और धनवन्तर वैद्यका अपूर्व संवाद, तक्षकका कीड़ा बनकर परीक्षितको काटना, राजकुमार जनमेजयका सर्प यज्ञ करना, इन्द्र द्वारा तक्षककी रक्षा होना आदि बातें बड़ी खूबीके साथ लिखी गई हैं। इसके साथही फाटकेबाजीका प्रहसन भी दिया गया है, जिसको देखते देखते दर्शक लोट पोट हो जाते हैं। मूल्य १) रेशमी जिल्द १॥)

पञ्जाबका भीषण हत्याकाण्ड

अर्थात।

पंजाबके मार्शल ला-कालका पूरा इतिहास

इस ग्रन्थमें प्रजापक्षके कांग्रेस कमीशन तथा सरकारी पक्षकी हण्टर कमिटीकी बड़ी खोजके साथ लिखी हुई पूरी रिपोर्टोंका हाल तथा अनेक रोमाञ्च कारिणी गवाहियां दी गई हैं। यह वृटिश जातिकी अन्याय पूर्ण नीतिका एक जीता जागता सच्चा इतिहास है। यदि आप अपने पञ्जाबी भाई, बहिनों और माताओंकी दर्द भरी कहानी अदूरदर्शी जेनरल डायरके कुकर्मोंका हाल, भले आदमियोंको सरे आम बेंत लगाये जाने, पेटके बल रेंगवाया जाना, और भारतीय रमणियोंका अपमान किया जाना आदि रोमाञ्चकारिणी घटनायें जानना चाहते हों तो इसे पढ़िये। यह पुस्तक सरल हिन्दी भाषामें जिसे अनजानसे अनजान आदमी भी आसानीसे पढ़ ले, लिखी गई है। अवश्य मङ्गाकर पढ़िये दाम भी बहुत कम रखा गया है। अर्थात ५५० पृष्ठ तथा २५ चित्रों सहित बड़े पोथेका केवल ३॥) रङ्गीन जिल्द ३) रेशमी जिल्द ३॥)

मोती महल

यदि आपको ऐय्यारी और तिलिस्मी उपन्यासोंके पढ़नेका ज्यादः शौक हो तो और कहीं न भटककर हमारे यहांसे यह "मोती महल" नामक उपन्यास मंगाकर जरूर पढ़िये इसमें लिखी ऐय्यारोंकी ऐय्यारियोंका हाल पढ़कर ताज्जुबमें पड़ जायंगे तथा तिलिस्मका हाल जान कर चकित हो जावेंगे। दाम ६ भागका ३॥) रेशमी जिल्द ४॥)

जादूका महल

ऐय्यारी और जादूगरीका ऐसा दिलचस्प उपन्यास कहीं नहीं छपा। इसमें लिखी ऐय्यारों और जादूगरोंकी चालाकीसे भरी हुई लड़ाइयोंका हाल पढ़नेसे बड़ाही आनन्द मिलता है। यह उपन्यास ऐसा है कि, हाथमें लेकर बिना समाप्त किये छोड़नेकी इच्छा नहीं होती। मूल्य २ भागका १॥)

रहस्य-भेद

यह उपन्यास अङ्गरेज औपन्यासिक मिस्टर जार्ज विलियम रेनाल्डसकी अद्भुत लेखनीका नमूना है। अगर आपको अङ्गरेज लेखकोंके लिखे उपन्यास पढ़नेका शौक हो तो इस उपन्यासको मंगाकर जरूर पढ़िये। यह उपन्यास बड़ाही दिलचस्प और अपने ढङ्गका निराला है दाम ३ भागका १॥)

लक्ष्मीदेवी

यदि आपको सामाजिक उपन्यासोंके पढ़नेका शौक हो तो इसे अवश्य पढ़ें। यह हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्तकी अद्भुत लेखनीका सर्वोत्तम नमूना है। स्त्रियोंको शिक्षा किस प्रकारकी होनी चाहिये और स्त्रियोंको शिक्षा देते समय किन किन बातोंसे सावधान रहना चाहिये। इस उपन्यासमें यही सब बातें बड़ी खूबीके साथ दर्शाई गई हैं। यह उपन्यास अपने दामसे दस गुणा अधिक उपयोगी है। गृहस्थ तथा समाज सुधारकोंको अवश्य पढ़ना चाहिये। दाम ।≈)

मारवाड़ी गीत

इस पुस्तकमें मारवाड़ी बोलीके हर समय तथा हर मोसिममें गाने योग्य अच्छे अच्छे गीत लिखे गये हैं। मारवाड़ी स्त्रिया इस पुस्तकको बहुतही पसन्द् करती हैं। और इसमेंके गीतोंको बहुतही लटक तथा प्रसन्नतासे गाती हैं। विवाह शादीके समयके जैसे गीत इस पुस्तकमें हैं वैसे किसी दूसरी पुस्तकमें नहीं मिलते। इस पुस्तकको पढ़नेसे मनुष्य कितनीही चिन्तामें क्यों न हो एक बार अवश्यही हंस देगा। यह पुस्तक छः भागोंमें समाप्त हुई है। दाम प्रति भाग ।) छः भागोंकी सुन्दर जिल्द्दार पुस्तकका १॥)

भयानक बदला

(एक अद्भुत जासूसी उपन्यास)

यदि आपको जासूसी पुस्तकें पढ़नेका कुछ भी शौक हो तो यह उपन्यास मंगाकर अवश्य पढ़ें। इस उपन्यासमें मराठा समाजका अच्छा फोटो खींचा गया है। इसमें जासूसोंकी चालाकी तथा हुनर देखकर आप चकित होंगे और किस्सेकी गढ़न्त तथा दिलचस्पीकी आप प्रशंसा करेंगे। इस ढङ्गका जासूसी उपन्यास आज तक कोई नहीं छपा। दाम भी सर्व साधारणके सुभीतेके लिये केवल ॥=) रखा गया है। इसे मंगाकर अवश्य पढ़ें।

स्वराज्य दर्शन

यह शतरञ्जकी तरह बड़ाही दिलचस्प और उत्तम खेल है। जो साहब बेकारीकी हालतमें चाहे मन बहलानेके लिये ताश, चौसर, शतरञ्ज आदि बेकार खेलें लेकर अपना समय नष्ट करते हैं उनके लिये हमने यह स्वराज्य दर्शन नामक खेल तैयार किया है। इसके खेलनेसे मनुष्यका दिमाग बढ़ता है। अच्छी अच्छी बातें मनमें पैदा होने लगती हैं और देशके प्रति अनुराग बढ़ता है। हमारी प्रार्थना है कि, आप लोग और खेलोंमें समय नष्ट न कर इसे मङ्गाकर देखिये और इससे अपना मन बहलाइये। यह खेल खूब मोटे कार्ड बोर्ड पर बहुरंगोंमें छपा हुआ है और साथही महात्मा गान्धी, लोकमान्य तिलक, देशबन्धुदास, दादाभाई नौरोजी, मौलाना शौकतअली, महम्मदअली आदि देशपूज्य नेताओंके सुन्दर तीन रङ्गमें छपे हुए चित्र भी दिये गये हैं इस खेलके खेलनेका तरीका सरल भाषामें लिख दिया गया है, जो पढ़तेही हर एक मनुष्य समझ लेगा दाम ।≠) १००एकसौ मङ्गाने पर २५) सैकड़ा तथा १०० से ऊपर मङ्गाने वालोंको ३०) सैकड़ा कमीशन मिलेगा।

लार्ड किचनर

इस ग्रन्थमें यूरोपीय महासमरके प्रधान सेनापति लार्ड किचनरका पूरा जीवन चरित्र लिखा गया है। इस ग्रन्थके पढ़नेसे लार्ड किचनर सम्बन्धी सब घटनाएं पाठकोंकी समझमें आ जायेंगी और पाठक जान जायेंगे, कि लण्डन नगरीके अन्य प्रतिभाशाली मनुष्योंको छोड़कर लार्ड किचनरही क्यों प्रधान सेनापति बनाये गये थे? पाठक! यह लार्ड किचनरकी नीतिकाही फल था कि, ब्रिटिश सेना यहाँ ऐसे प्रबल शत्रुके साथ डटकर युद्ध कर रही थी जो कि अपनी सानी नहीं रखता था। यह ग्रन्थ अवश्य देखिये मूल्य केवल १

वीर-चरितावलीका तीसरा ग्रन्थ

हिन्दी भाषाका अद्वितीय रत्न

भारतके महापुरुष

इस ग्रन्थमें उन ३८ महापुरुषोंका वृत्तान्त लिखा गया है, जिन्होंने अपनी वीरता, गम्भीरता, कार्य्यपटुता, विद्वत्ता, ज्ञानशीलता तथा लोक प्रियतासे सारे संसारको अपनी ओर खींच लिया था। जिन्होंने भारतको प्रकृत भारत बनाकर उसे गौरवके उच्च शिखरपर पहुंचाया था जिनको आज भी विश्वभरके प्राणी भक्तिभावसे स्मरण कर रहे हैं। और जिन महापुरुषोंके पथके पथिक होकर आज भी अनेकों वीर अनेकों विद्वान अनेकों वैज्ञानिक, अनेको ज्ञानी और महात्मा दिखाई दे रहे हैं।



इस ग्रंथके चार खंड किये गये हैं। प्रथम खडमें ईश्वरावतारों दूसरेमें देवांशी महापुरुषों तीसरेमें महान ब्रह्मर्षियों और चौथेमें महान नृपतियोंका वृतान्त लिखा गया है। यह ग्रन्थ प्रत्येक भारतवासीको पढ़ना और मनन करना चाहिये। मूल्य चारों खडोंके ५०० पृष्ठोंके ग्रन्थका केवल ३) रेशमी जिल्द ३॥)

उपन्यास जगतका अमूल्य रत्न।

❀भारती❀

भारती उपन्यास-जगतका शृंगार, घटनाओंका आगार और सामयिक तथा राजनैतिक उलझनोंको प्रत्यक्ष दिखानेवाला वायस्कोप है। भारतीमें पद-पदपर घटनाओंकी जैसी विचित्रता दिखाई देती है, चरित्र-चित्रणका जैसा आदर्श दिखाई देता है, उसी तरह उपदेश भी प्राप्त होता है। यदि रायसाहबका गर्व भरा व्यवहार, दिग्विजयकी देशरक्षक पुकार और भारतीकी सेवाभाव भरी मधुर झंकार सुनना चाहते हों, यदि कपटियोंकी कपट नीति; दुराचारियोंकी स्वार्थ भरी भयानक चालें, अधिकारियोंके मानमद-मर्दन करनेवाले षड्यन्त्रका नमूना देखना चाहते हों अथवा यह जानना चाहते हों, कि नारी जीवनका आदर्श क्या है, तो भारती पढ़िये। इसमें आपको सुन्दर निधि दिखाई देगी। इसलिये कहते हैं कि समस्त काव्योंको छोड़ प्रथम भारती पढ़िये। सुन्दर एंटिक कागजपर छपी हुई अनेक एक रंगे और बहुरंगे चित्रोंसे सुसज्जित पुस्तकका मूल्य ३) मात्र।

पत्र सम्पादनकला

यह ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है समाचारपत्रोंके सम्पादकोंका क्या कर्त्तव्य है, उन्हें किन किन बातोंपर ध्यान देना चाहिये और किन किन पुस्तकोंको किस प्रकारसे पढ़ना चाहिये। अच्छे लेखों तथा अच्छी पुस्तकोंका कैसे लिखना तथा चित्ताकर्षक और मनोरंजन बनाना चाहिये। यह सब बातें इस पुस्तकमें सरल तथा रोचक भाषामें लिखी गई हैं। ऐसे ग्रन्थ प्रत्यक मनुष्यको देखने तथा मनन करने चाहिये मूल्य १)

हेमलता

यह भी ऐय्यारी और तिलिस्मका बहुत बढ़िया उपन्यास है। इसकी लिखावट बड़ीही लच्छेदार है। ज्यों ज्यों पढ़ते जाइये त्यों त्यों कौतूहलके समुद्रमें गोते लगाने पड़ते हैं। पुस्तक पढ़नी शुरू करके बीचमें छोड़ देना मनुष्यकी शक्तिसे बाहर हो जाता है। दाम दो भागों का १॥) रेशमी जिल्द २)

मारवाड़ी राष्ट्रीय गीत

अर्थात गान्धीजीको गीत।

जिस पुस्तकके लिये मारवाड़ी महिलायें सालोंसे लालायित थीं, जिस पुस्तकके लिये स्त्रियोंका पतियोंसे, माताओंका पुत्रोंसे तथा बहिनोंका भ्राताओंसे सख्त तगादा था, जिसके लिये सैकड़ोंही पत्र लगातार हमारे यहां आ रहे थे, वही मनोहर पुस्तक मारवाड़ी राष्ट्रीय गीत, अपनी अपूर्व सज-धजसे छपकर तैय्यार है। इसमें चर्खा, स्वदेशी आदि राष्ट्रीय गीतोंके अलावा सीताजीका चलणा, सुदामाजीको गीत, श्रवण को गीत आदि धार्मिक गाने भी हैं जिन्हें पढ़ और सुन महिलाओंका मन आनन्दसे नाच उठेगा। मूल्य दो भागोंका ॥)

सिन्धबाद जहाजी—इस पुस्तकमें एक सौदागरकी भयानक समुद्र यात्राका बड़ाही रमणीक वृत्तान्त है दाम ।≠)

स्वराज्यकी मांग

सचित्र राजनैतिक ग्रन्थ।

इस ग्रन्थमें स्वराज्यके विषयमें देशके बड़े बड़े नेताओंका मत व्यक्त किया गया है। बड़ी बड़ी दलीलों द्वारा सिद्ध किया गया कि, स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है। और साथही युक्तियों द्वारा बताया गया है कि, हमको स्वराज्य-संग्राम किस प्रकार चलाना चाहिये। यह पुस्तक प्रत्येक देशाभिमानीको पढ़नी चाहिये। इसमें ८ चित्र भी दिये गये हैं मूल्य १॥)

हिन्द नाटक

(लेखक—बाबू जमुनादासजी मेहरा)

यह फड़फड़ाता हुआ राजनैतिक नाटक जिस समय रङ्गमञ्चपर खेला जाता है उस समय जनता मारे खुशीके बित्तो उछल पड़ती है। यह नाटक नाटकीय ज्ञानसे परिपूर्ण श्रीयुक्त बाबू जमुनादासजी मेहराकी अद्भुत लेखनी द्वारा लिखा हुआ है। देश भक्तोंको यह नाटक अवश्य संग्रह करना चाहिये। मूल्य १)

सलिमा बेगम

यह बादशाह शाहजहांकी बेगम बहुतही खूबसूरत थी। बादशाह भी इसे खूब चाहते थे। एकबार उन्हें कुछ शक हो गया इसीसे बादशाह नाराज हो गये। वह बिचारी विष खाकर मर गई देखनेही योग्य पुस्तक है दाम ।=)

सिकन्दर शाह

मेसिडोनियाके जिस वीरने थोड़े ही समयमें अपने प्रबल पराक्रमसे समस्त यूरोपको कम्पायमान कर दिया था, जिसने अपने थोड़ेसे सैनिकोंको साथ लेकर सुदूर ग्रीससे भारतवर्षके पञ्जाब प्रान्त तकके सब स्थानोंपर अधिकार जमा लिया था, जिसने पर्शिया, इजिप्ट, टायरी, आदि अनेकानेक स्थानोंपर अपना प्रभुत्व जमाकर पर्शियाके शाहकी कन्यासे विवाह किया था, जिसके साथ पराक्रमी पञ्जाबाधिपति पुरुका भीषण समर हुआ था। इस ग्रन्थमें उसी वीरका पूरा हाल लिखा गया है। अगर आजसे तेईस सौ वर्ष पूर्वका इतिहास जानना होतो इस ग्रन्थको मंगाकर पढ़िये इस पुस्तकमें १ बहुरङ्गा तथा ३ एक रंगे चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य १॥=) रेशमी जिल्द २)

पृथ्वीराज

भारतके अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराजके शहाबुद्दीन गोरीसे अनेकबार युद्ध, भोलाराय भीमदेवकी कूटनीति, मेवाड़-विजय, सारुण्डका भीषण समर, आबू पर्वतका भयानक युद्ध, दिल्लीके राजा अनंगपालका अद्भुत चरित्र, माधव भाटका छल, पृथाकुमारी तथा समरसिंहका विलक्षण प्रेम, शशिवृता, इच्छनकुमारी, इलावतीका प्रेम, जयचन्द्रका हठ, राजसूय यज्ञसे संयोगिताका गायब हो जाना, कालिंजरका युद्ध, थानेश्वरका भयानक समर, आल्हा ऊदलकी विलक्षण वीरता आदि इतनी घटनायें सप्रमाण लिखी गई हैं कि पढ़कर चकित हो जाना पड़ता है। यह इतिहास बालक वृद्ध औ कन्यायें सबके पढ़ने योग्य है इसमें तीन चित्र भी दिये गये हैं। दाम १)

कुली कहानी—इस पुस्तकमें आसामके चाय बगीचेका पूरा रहस्य लिखा गया है। पैसेके लोभी अरकाट लोग कैसे भोले भाले कुलियोंको फसाकर उनका जीवन बिगाड़ देते हैं यह बात इस पुस्तक के पढ़नेसे भली प्रकार आपको मालूम हो जावेगी दाम ॥)

वीर पत्नी—महाराज जयचन्दकी कन्या संयोगिताके स्वयम्बर और पृथ्वीराज और शाहबुद्दीनकी लड़ाईका दृश्य देखना हो तो इसे पढ़िये दाम ।=)

माधवजीका स्वराज्य—यह बहुतही अच्छा हंसानेवाला शिक्षा प्रद उपन्यास है। इसके पढ़नेसे आप बहुत खुश होंगे और देश के प्रति आपका अनुराग बढ़ेगा दाम ≠)

डबल खून—यह बम्बईके एक डबलखूनका विचित्र मामला है। इसमें जासूसकी कार्रवाई और पेचदार मामलेकी अकबकाहट भरी घटना पढ़कर आप बहुत खुश होंगे और इसका कवर पेज इतना अच्छा है कि आप पुस्तकको देखतेही चूम लेंगे दाम केवल १)

मृत्यु विभीषिका—यह बड़ी विकट कहानी है। इसमें जासूस सर्दार गोविन्दरामकी रोयें खड़े करनेवाली कार्रवाई लिखी गई है। उनकी मुस्तैदी बारीक बुद्धि, और जवांमर्दी देखकर दांतों उंगली दबानी पड़ती है। इसमें एक कुत्तेकी जासूसी भी देखने योग्य है दाम १॥)

जासूसके जबानी—इसमें जासूसने अपनी राम कहानी अपने आप कही है। जासूस सर्दारने सच्चा खुद बुहाना हुआ ताजा मामला इसमें ऐसा बतलाया है कि, आप अचम्भा जायेंगे और खूब बनौखी कहानीका आनन्द पावेंगे दाम केवल १)